



# आदिम-युग और अन्य नाटक

( वैदिक एवं मध्य युग के सात उत्कृष्ट एवं उच्चतम नाट्य-कृतियाँ )

लेखक

श्री उषयदाकर भट्ट

आत्माराम प्रेस सस  
प्रकाशक तथा प्रबन्ध विभक्त  
कश्मीरी गेट  
जिन्सी-६

प्रकाशक  
राजलाल पुरी  
आत्माराम एचड संस  
बरमीरी रोड दिल्ली-६

[ सर्वाधिकार सुरक्षित ]  
तीसरा संस्करण १९२६  
मूल्य चार रुपये

मुद्रक  
जयसकुमार शर्मा  
शिखी प्रिंटिंग प्रेस  
बरोय रोड दिल्ली-६

## तीसरे सरकारण की भूमिका

हर्ष की बात है कि इस नाटक का तीसरा संस्करण हो रहा है। इस संस्करण में मैंने तीन नाटक और जोड़ दिये हैं। नाटिका-री-विश्वामित्र, शशिसेला और सौदामिनी।

तीनों नाटक तीन सामाजिक संस्कृतियों के चित्र हैं। कायदे से ऋषि-धारी विश्वामित्र नाटक कुमार-सम्भव से परसे आना चाहिए या ठाकि वह भी वैदिक-युगीन नाटकों में सम्मिलित हो सकता। यह नाटक भी वैदिक युग की परम्परा में आता है।

विश्वामित्र अपने युगके बड़े विरोधी पुण्य रहे हैं। उन्होंने आर्यों का दुर्जन विनाह लहर में आर्यों और अनाथों का एकीकरण किया। रीति-रिवाज, नियम-संयम, आचार-विचार सब में दो विभिन्न आविर्भावों को मिलाकर विस्तर होने वाले संस्कार को शान्त किया। वहीं वहीं अपने लप और पीष्य से ब्राह्मण, क्षत्रिय की मूल परम्परा कायम की। नर-शक्ति, पशु-शक्ति का विरोध किया। ऋषियों को लोका।

प्रस्तुत नाटक में विश्वामित्र का रूप आत्म के गुण के किसी भी अन्तिकारी से कम नहीं है। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से समाज की मजबूती में एक नवीन चेतना को विकसित किया है और वास्तविक काम की प्रतिष्ठा की है। अचिन्त से उनका संघर्ष कर रूप तक चला। स्वर्ण क्षत्रिय होते हुए उन्होंने लप के द्वारा ब्राह्मण्य प्राप्त किया। इस नाटक में उनका वही अन्तिकारी और युगपुण्य का रूप है।

दूसरा नाटक शशिसेला बौद्धयुग की एक कहानी है। शशिसेला अज्ञानवशी होते हुए भी लक्ष्मण और पावन स्त्री है, किन्तु मानवोचित रागद्वेष से वह मुक्त नहीं है। मिथु कोविदम्बावन क रूप पर मुग्ध होकर वह उन्हें आत्म-समर्पण करना चाहती है। कोविदम्बावन तारकी आर

आत्मनिष्ठ है वह उसकी मार्गना को अस्वीकार कर बैठे हैं। सोचने-मन्दिरी शक्तिसेला उनसे बदला होती है किन्तु बाद में वह वास्तविक आत्म-समर्पण कर देती है, यही इस नाटक की कथा है।

तीसरा नाटक प्रभासतीर्थ पर स्थित भगवान् सोमनाथ के मन्दिर की कथा से सम्बन्ध है। मध्य युग से भी नीचे आकर राजर्षीय शासन-पद्धतियों की कथा इस नाटक में ही गई है। जिसमें मक्ति, प्रेम और पौरुष का सम्मिश्रित चित्र है।

यह सब नाटक वैदिक युग से लेकर मध्य युग तक के विभिन्न वि-उपरिष्ठ करते हैं। इसलिये मैं इन नाटकों को एक ही पुस्तक में देने का खोम संभव नहीं कर पाया। जहाँ इनसे एक ही संग्रह में इन दो-कालों की मूर्तों मिल सकती है वहाँ पाठकों और दर्शकों का मेरी उत्क-लीन शिष्टतन प्रकृति का ज्ञान भी हो सकता है। यह सब नाटक आकर-बाशी के विभिन्न बेम्ती से लक्ष्यतापूर्वक प्रसारित हो चुके हैं। इन-कुल के अनुसार अल्प भारतीय भाषाओं में भी हुए हैं।

मुझ विश्वास है यह नाटक भारतीय संस्कृति और भारतीय आदर्श-को आलोकित करने में सहायक होंगे।

२१ जनवरी १९२९

साह्यपुर

लेख

## मूमिका

भागवत के तीसरे स्कन्ध के बीसवें और इकतीसवें अध्याय में सृष्टि का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त पुराणों, ब्राह्मण ग्रन्थों में भी सृष्टि उत्पत्ति का प्रकरण को मिंगम मिंग रूपों में वर्णन किया गया है। वे गाथाएँ एक दूसरे से मिन्न होती हुई भी इस विषय में एकमत हैं कि स्वर्गभुव मनु और शतरूपा—मनुष्य-सृष्टि के आदिम स्त्री-पुरुष थे। इससे पूष देवताओं, राक्षसों, बच्चों, पिशाचों आदि की सृष्टि बनी। इसमें देवताओं को छोड़कर शेष सब पशु और भावी मनुष्य की भेषी के बीच थे। इनमें तामसी वृत्तियों का पूर्व विकास था।

तमोगुण, रजोगुण, तमोगुण से तीनों गुण सृष्टि के निमाद्य में मूल तत्व हैं। इन तीनों के सम्मिश्रण से ही सृष्टि का निमाद्य हुआ। तन्मय ब्रह्म के रचयिता कपिल ने एक-मात्र अनन्त प्रकृति से ही इन तीन गुणों के सम्मिश्रण द्वारा अनन्त सृष्टि का विकास बताया है। मनुष्य मनुष्य का अतिरिक्त पार्थक्य सृष्टि तामसी है। मनुष्य पशुता के विकास की परम परिस्थिति है। इससे यह अर्थ सैना अनुचित होगा कि मनुष्य का विकास पशुत्व की परम परिस्थिति है। बर्हा कबल इतना ही तात्पर्य है कि विकासोन्मुख पशुत्व से ही मनुष्य का निमाद्य हुआ है, जिसमें धीरे धीरे अदृष्टार के साथ बुद्धि, भृष्टि, क्षमा आदि गुण विकसित हुए। इनके साथ ही आदि मनुष्य में विश्वास, तर्क, विधिनिष्ठा आदि गुण भी प्रदुम्भ त हुए। इन गुणों की विशेषताओं का कारण ही अल्प पशुओं से मनुष्य में भेद हुआ, ऐसा भेद विरहात है। किन्तु ये गुण मनुष्य में इतने धीरे धीरे आये कि उसकी पशुता मनुष्य जाति में कई बरों तक बनी रही। उस काल की सीमा का निधारण करना विचार शक्ति से परे है। फिर भी उन गुणों का विकास हुआ अवश्य।

मनुष्य को जो इस इन्द्रिय' शक्ति से प्राप्त हुई वे आदि काल में बहुत ही स्थूल रूप में रही हगी। उनमें पहली पंच कर्मेन्द्रियाँ तो क्या नियम अन्वय काम करती ही होंगी परन्तु शानेन्द्रियों में अवश्य भीरे बीर विकसित हुआ होगा। उदाहरणार्थ उस विकसित का मूल स्रोत बालक है। जिन बालक को माता पिता द्वारा उन्नत होने का साधन प्राप्त नहीं होता, उनका विकास ध्यान से देखने पर बड़ा कुनरत रूप होता है। बालक सब वस्तुओं को, अवस्था पाकर भी बड़े स्थूल रूप में देखता है। एक तरह से मनुष्य की वास्तविकता मनुष्य जाति की आदिम अवस्था का कुछ आभास दे सकती है। शुद्ध संस्कारहीन निरस सम्ब बालक के विकास में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। किन्तु आदि काल का मानव मूल ध्यास नीचे के साध-साध बालक से एक बात में बड़ा बढ़ा रहा होगा, वह है शिक्षा और शरीर सामर्थ्य। बालक में शिक्षा उन्नत नहीं होती। बड़ी शिक्षा मनुष्य को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती रहती है। शिक्षा तथा प्रार्थि में ही दो गुण हैं, किन्तु मनुष्य को निरन्तर आगे बढ़ते रहने के लिए प्रेरित किया है। किन्तु इससे पूर्व मनुष्य में एक और गुण होना अपेक्षित है, वह है पचाप दर्शन। सृष्टि को वैसा ही, जैसी कि वह है देखने की समता का प्रारम्भ मनुष्य जाति के विकास का आदि प्रात काल आ सकता है। इसके साथ ही अन्धी अवस्था से मिलाकर उसमें उन्नतोंगिता को प्रवृत्त करते रहने की चेत्ता का होना भी आवश्यक है।

परन्तु वह है क्या मनुष्य १ स्वयं बिना किसी की सहायता के ज्ञान, पीने, सोने के अतिरिक्त जीवन के ध्यान कर्मों को समझ है या किसी की सहायता पाकर वह अर्न्त पूरता की आर बड़ा है? इस प्रश्न को मैं ही प्रश्न में समाप्त की चेष्टा करूँगा। बहाँ तक आदिम कर्मों का सम्बन्ध है बहाँ मनुष्य मर्ति की उत्पत्ति में सबसे सहायक एक तीव्र शक्ति या शक्ति भी है। उसे पाई ईश्वर करिये या कुछ। अभी मैं मनुष्य का हाथ पकड़कर उस बलान्तर विभावा, नदी के पास

ले जाकर उसे प्यास शांत करने के लिए पानी पिलाया, और घुमा शांत करने के लिए मांस कंद, मूल, फल खाने की प्रेरणा दी इसके अतिरिक्त उसने पहले ही उस बहुत-सी पालें सिखा दी और वह अपने युग में उदरमन होवे ही समर्थ प्राणी हो गया। परमात्मा और नेत्र, सत्य अक्षय का भेद करने वाला, पुण्य और तपी के सम्बन्ध को जानने वाला भी, किन्तु विद्वान्वादी इसमें नहीं मानता। वह मानता है कि अक्षय युग शांत करने के लिए भूल, पाप, अज्ञे, पत्ते, पर्वत, बराने और खाने के बाद जल के किनारे अचानक पहुँचकर पीने के अनुभव प्राप्त ही मनुष्य ने यह निश्चय किया होगा कि 'प्यास लगने पर पानी पीना चाहिए'। इसी तरह मूल खाने पर पानी पीने, परपर, भूल, अज्ञ, पत्ते आदि के प्रयोग के बाद फल, फूल खाकर क्षुधा मिटाने का अनुभव हुआ होगा। किन्तु इसमें मनुष्य को कितना समय लगा होगा वह निश्चय रूप से बता सकने की आवश्यकता में आपन को न पाकर भी मैं कह सकता हूँ कि इस प्रकार के खाने पीने में मनुष्य को बहुत समय नहीं लगा होगा, क्योंकि प्रकृति के यथार्थ दर्शन तथा स्वयं क्षुधा, तृप्त ने मनुष्य को इस समस्या के हल करने में सहायता दी होगी।

## (१) आदिम-युग

मैंने इस नाटक में के बचन को छोड़कर मनुष्य-सृष्टि का अदि पुण्य स्वार्थमुक्त मनु और शतकला के प्रतीक द्वारा उस समय के जीवन की मूर्त्ति देन की चेष्टा की है। स्वार्थमुक्त मनु और शतकला तथा उनका पुनः-सृष्टि का तब वैदिक एवं पौराणिक पात्र हैं। किन्तु उस पात्रों का पारिभ्रमिक विद्वान्, जहाँ तक मैं निमात्र कर सका हूँ, स्वाभाविक है। इन दोनों के अदिममण्य में अविश्रांत करने का और कारण दिखाई नहीं देता। यदि पुराणों में मलय, पाण्ड, कन्द्यप अथवातों की कथा के द्वारा मनुष्य के पूर्वजा का इतिहास है तो अदि कारण नहीं कि स्वार्थमुक्त मनु और शतकला का अर्थ अतिरिक्त हाँके हुए भी मूलतः वास्तविक न हो।



स्वर्णयुग का अर्थ है अपने आप उदन्न होने वाले का पुत्र। यदि स्वर्णयुग  
 ब्रह्मा को मान लें तो भी मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती।  
 मैंने स्वर्णयुग मनु और शतरूपा की मीतान का बर्णन भीमशङ्कर के  
 आधार पर ही किया है।

प्रायः विद्वान् मानते हैं कि लृष्टि के आदि प्रथम श्रुतियों की संस्कृत  
 से पूर्व एक प्राकृत भाषा थी। उन्हीं से संस्कृत की उत्पत्ति हुई है। उक्त  
 प्राकृत भाषा का नमूना आब्रह्म उपलब्ध नहीं है। फिर भी उक्त समय  
 के कुछ शब्द वेदों में मिलते हैं। जिनके प्रकृति प्रत्यय का ठीक-ठीक ज्ञान  
 नहीं होता। भाषा का निर्माण मनुष्य-सृष्टि के विकास का महत्वपूर्ण अंश  
 है। प्रारम्भ में कृद् शब्द का निम्नलिखित अर्थ होगा उसका बाद  
 भोग कृद् और फिर वागिक। मनुष्य के हृदय में जैसे जैसे भावों का  
 विकास होता गया वैसे-वैसे उन भावों के लिए शब्द गढ़े गये होंगे।  
 जैसे किसी वस्तु से दूर जाने पर मनुष्य मुक्त पड़कर जब पीछे को हट  
 होगा तब उक्त शब्द से 'म' यह अक्षर निकला होगा। तब, मन् शब्द  
 की उत्पत्ति का कारण उसका अर्थ से व्याकुल होकर 'मिथिवाता' है।  
 इसी तरह किसी वस्तु को लाने के भाव को प्रकट करने में 'ल' का प्रयोग  
 होने का कारण 'लाना' का आभिप्राय हुआ होगा। परन्तु जब शब्द इसी  
 प्रकार निर्मित हुए होंगे, ऐसी दृष्टि नहीं की जा सकती। कुछ शब्द  
 जिनसे कुछ विशेष ध्वनि के उच्चारण से कुछ वस्तु सम्बन्ध से, कुछ  
 कर्म-सम्बन्ध से बने होंगे। उनके बाद शब्द की शक्तियों का विकास  
 होता गया होगा। तबम आधिक ज्ञान मनुष्य में वस्तु को देखकर प्राप्त  
 किया है सुनकर नहीं। सुनना पक्ष की बात है, देखना पक्षी। देखना  
 रहन और उनके द्वारा मनन करने के कारण हमारे यहाँ दृश्यशक्तियों का  
 निम्नलिखित हुआ है।

आर्य ऋषि तरह कलकला, वंश को देखकर यह दृष्टि करना करना  
 कठिन है कि वे दोनों नगर प्रारम्भ में बहुत ही साधारण गाव थे। यहाँ  
 न यह महान प, न आब्रह्म जितन महान् शक्ति; फिर भी एक बात

से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्थान का महत्त्व और उपयोगिता के होने के नगर प्रारम्भ से ही अपने में लिये हुए थे नहीं तो अन्य नगरों की अपेक्षा वे ही इतने महत्त्वशाली नगर न होते ? इसी तरह मनुष्य का रूप भी है। मनुष्य को जो इन्द्रियाँ प्राप्त हुईं प्रकृति द्वारा उनके विस्तार में मनुष्य की उपयोगिता क्षिपी थी। आखिर, प्रकृति को ऐसे प्राणी की आवश्यकता हुए जो अपने साथ प्रकृति की उपयोगिता को पहचान सके। मही तो प्रकृति के सौन्दर्य का क्या उपयोग होता प्रकृति के विस्तार का क्या महत्त्व होता ? स्वयं प्रकृति ने मनुष्य का विकास किया है और उसका विकसित रूप समाज, धर्म राजनीति, संसार के आविष्कारों के रूप में हमारे सामने है। जो प्रकृति नहीं कर सकती थी वह मनुष्य ने किया। किन्तु किया उसने प्रकृति के उपकरणों और अपनी बुद्धि से ही। वह जहाँ समर्थ रहा वहाँ उसने 'अहं' द्वारा अपने को ऊँचा उठाया ! जहाँ वह निर्बल रहा वहाँ उसने इश्वर धर्म की कर्मनाएँ कीं। जैसे प्रकृति में सम्पूर्णता नहीं है वैसे ही मनुष्य में भी पूर्णता का अभाव है। वह अभाव ही उसके विकास की सीढ़ी है। वह नहीं सकते बिना दिन वह पूर्य हो अथवा उस दिन वह रहेगा भी ना नहीं। अभाव जहाँ मनुष्य का दुःख है वहाँ वह उसके विकास का प्रयत्न भी है। असमर्थता स मय, अहंकार सामर्थ्य में टेर लगने से श्रेय इच्छा से अम और लोभ उत्पन्न हुए हैं। इच्छा का रूप वैश्विय ही प्रि का वैश्विय है।

इस नाटक के क्लिप्तने में एक बात सहायक सिद्ध हुए है। एक बार, बहुत दिनों की बात है—मन्वानर का समय था, गरमों के दिन, ऊपर 'शीतलिंग पेन' के नीचे बसा रहा था। मेरी आँसु लगे गए। थोड़ी देर बाद जब सोकर उठा तो देखा कि मेरा शरीर एकबारगी निष्क्रिय हो गया है। हाथ उठाता तो ठठठे न थे, पैरों को जैसे किसी ने लपट के पावों से बांध दिया हो।

अबान रुक गए थी। एक तरह से सब कर्मेन्द्रियाँ निस्तम्ब हो —

शार्यमुव का अर्थ है अग्ने आप उरग्न होने वाले का पुत्र। यदि स्वयम्भुव का मान सँ तो भी मुक्त इसमें कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती। मैंने शार्यमुव मनु और शतरूपा की संतान का अर्थन श्रीमद्भागवत के आचार पर ही किया है।

प्रायः विद्वान् मानते हैं कि सृष्टि के आदि प्रथम अक्षरों के संस्कृत सँ पूर्व एक प्रकृत भाषा थी। उसी सँ संस्कृत की उत्पत्ति हुई है। उक्त प्राकृत भाषा का नमूना आबजस उपलब्ध नहीं है। फिर भी उस समय के कुछ शब्द यों में मिलते हैं। जिनके प्रकृति प्रथम का ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता। भाषा का निर्माण मनुष्य-सृष्टि के विहास का महत्त्वपूर्ण अंश है। प्रारम्भ में कद शब्द का निमाण अधिकतर हुआ होगा उसके बाद योग-रुद्रि और फिर योगि। मनुष्य के हृदय में जैसे-जैसे भावों का विकास होता गया जैसे-जैसे उन भावों के लिए शब्द गढ़े गये होंगे। जैसे किसी बलु स डर जाने पर मनुष्य मुक्त फटकर बर पीछे को इस होगा तब उक्त 'ह स 'म' यह अक्षर निकला होगा। यत, मय शब्द की उत्पत्ति का कारण उक्त मय स व्याकुल होकर विधियाना' है। इसी तरह किसी बलु को लैन के भाव को प्रकट करने में 'ल' का प्रयोग होने के कारण 'लेना' का आविष्कार हुआ होगा। परन्तु सब शब्द इसी प्रकार निर्मित हुए होंगे, ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। कुछ शब्द यमि स कुछ विशेष यमि के उच्चारण स कुछ बलु साम्य से, कुछ क-साम्य स बने होंगे। उनके बाद शब्द की शक्तियों का विकास होता गया होगा। सरस अक्षि शब्द मनुष्य स बलु को देखकर प्राप्त किया है मुझकर नहीं। मुनना र्षि की बात है देवना पहले। देवते रहन और उक्त द्वारा मनन करने के कारण हमारे वहाँ दर्शनयात्रों का निमाण हुआ है।

आज जिस तरह कसकसा, बर को देखकर यह कल्पना करना कठिन है कि वे दोनों मय प्रारम्भ में बहुत ही साधारण भाष थे। वहाँ न यह मयन थ, न आबजस जिन म (नू तावन); फिर भी एक बात

से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्थान का महत्व और उपयोगिता ये दोनों बं नगर प्रारम्भ से ही अपने में लिये हुए थे नहीं तो अम्ब नगरों की अग्रगण्यता ही इतने महत्वशाली नगर न होते । इसी तरह मनुष्य का रूप भी है । मनुष्य को जो हानियाँ प्राप्त हुईं प्रकृति द्वारा उनके विकास में मनुष्य की उपयोगिता क्षिणी थी । आखिर, प्रकृति का ऐसे प्राणी की आवश्यकता हुई जो अपने साथ प्रकृति की उपयोगिता को पहचान सके । नहीं तो प्रकृति के सौम्य अथवा उपयोग होता प्रकृति के विस्तार का क्या महत्व होता ! स्वयं प्रकृति ने मनुष्य का विकास किया है और उसका विकसित रूप समाज, धर्म, राजनीति, संसार के आविष्कारों के रूप में हमारे सामने है । जो प्रकृति नहीं कर सकती थी वह मनुष्य ने किया । किन्तु किया उसने प्रकृति के उपकरणों और अपनी बुद्धि से ही । वह जहाँ खरब रहा वहाँ उसने 'अहं' द्वारा अपने को ऊँचा उठाया ! जहाँ वह निर्बल रहा वहाँ उसने ईश्वर, धर्म की अज्ञानता की । जैसे प्रकृति में सम्पूर्णता नहीं है वैसे ही मनुष्य में भी पूर्णता का अभाव है । वह अभाव ही उसके विकास की सीढ़ी है । वह नहीं सकते जिस दिन वह पूर्ण हो जाएगा उत दिन वह रहेगा भी या नहीं । अभाव जहाँ मनुष्य का दुःख है वहाँ वह उसके विकास का प्रयत्न भी है । अस्तमर्त्यता से भय, अहंकार सामर्थ्य में डेढ़ लागने से श्रेय हस्ता से अम और लोम उत्पन्न हुए हैं । हस्ता का रूप-वैशिष्ट्य ही प्रकृति का वैशिष्ट्य है ।

इस नाटक के लिखने में एक बात विशेष लिखी हुई है । एक बार, बहुत दिनों की बात है—मध्याह्न का समय था, गरमी के दिन, ऊपर 'डीसिंग वेन' सेनी से चल रहा था । मेरी अज्ञानता लग गई । थोड़ी देर बाद वह लौकर उगा तो देखा कि मैं शरीर एकबारगी निष्क्रिय हो गया है । हाथ उठाया तो उठते न थे, पैरों को जैसे किसी ने पकड़ के पायों से बांध दिया हो ।

अज्ञान एक गंभीर थी । एक तरह से वह अज्ञानियों निष्क्रिय हो गई

था। मैं उस समय देख रहा था, किन्तु बोल नहीं सकता था। पांच या छह मिनट की उठ खबरवा में मैंने जाना कि यही मृत्यु को दशा है किन्तु उठके बाद मुझ मृत्यु नहीं, जीवन मित्रा और उठ खबरवा में मेरी स्मृति-शक्ति धीरे-धीरे जागृत हुई। एक-एक करके तब कुछ सामन आया। उठ खबरवा का कुछ कुछ मित्रान मैंने आदिम युग के इन प्राणियों से किया है। अंतर बेबल इतना ही है कि इनमें सक्रियता थी, किन्तु बाकी नहीं थी किन्तु उठके मूल साधन य। जैसा कि मन ऊपर कहा है प्रकृति ने मनुष्य को बोलने के लिए बाध्य किया है। उठके इन-तनुओं ने मरण आदिम प्राणियों को तब कुछ सिखाया होगा।

मृत्यु को मैंने इस मादक में छाया का में रखा है, प्रपञ्च नहीं। चित्तन का ही मनुष्य में मूल है। जो कुछ बाहर व्यक्ति देखा है वह प्रायः दशन मस्तिष्क के इन-तनुओं से व्यक्त करता है। एवं प्रसन्नता ही उसे मरण का स ज्ञानने के लिए बाध्य करती है। एक बस्तु से दृती का भेद करता है। वह, वह भेद-बुद्धि विवेचना है। विवेचना दशा से बस्तुओं में होती है। वह विषयना ही मनुष्यता का मूल है। विवेचना बुद्धि से विकृत प्रारम्भ होता है। विवेचना ही पुण्य और स्त्री का चित्तन है। इती चित्तन के आधार पर मानव का विकास होता है। इती लिए पहला दरप एक तरह से पुण्य और स्त्री की विभिन्नता को हीकर जाता है। तबमून, वह तमव चित्तना अर्जुन रहा होगा अब पहली बार पुण्य न स्त्री को और और स्त्री ने पुण्य की और देना होगा। वही तमव के निमाण का प्रथम मरण मुहूर्त करना आदि। जैसे तापकरणपा पशु भी एक नृत्य को दत्त है किन्तु उठके तामन मित्रा अब दशन के और कुछ नहीं होता ? यान-बुद्धियों का विचल भी उनसे लिए और महत्त्व नहीं रगता। किन्तु स्त्री और पुण्य का प्रपञ्च दशन में ता यान-बुद्धि कहे जाती है कायपय प्रायः भेद ही उनके सोचने का कारण बन जाता है।

इसीलिए आदिम स्त्री पुरुष के सामने एक दूसरे का अज्ञानक या जाना कितना महत्वपूर्ण है, इसको केवल कल्पना से ही समझना संभव है। इसीलिए ब्रह्मा स्वार्थमुख मनु और शतरुग की पितृता शक्ति है। जिसके लिए अनेकों बर्ष लगे होंगे। मैंने 'समय की प्रकृता' की रक्षा के लिए ब्रह्मा की कल्पना की है। इसके बिना कश्चित् पार्श्व का निवार भी न हो सकता।

## (२) प्रथम विवाह

प्रथम विवाह भी एक वैदिक कल्पना है। प्रारम्भ में जब आद्य एक भ्रमण-शील जाति थी। न उनमें कोई सामाजिक आचार-विचार थे न बन्धन। कश्चित् उस समय वेदों की श्रुतियों का गावन प्रारम्भ नहीं हुआ था। और यदि उच्चरीय आर्य जाति के सम्बन्ध में अनुसंधान करें तो कहना होगा कि आर्य लोग पहाड़ों से उतरकर इस प्रदेश में आ रहे थे। प्रथम-विवाह उसी समय का एक चित्र है। काद्र वेव—काद्रवेदी का चित्रण संसार के सबसे भाले, निर्दह, सम्बन्ध मनुष्य का चित्र है। वह एक वंशजन उस समय के परम विद्वान् आद्य थे, जिन्होंने समाज में मन्दा की स्थापना की। वेदों के यम-यमी सूक्त में ही इस कल्पना के आधारभूत चित्र माने जा सकते हैं।

## (३) मनु और मानव

जल प्रलय के पश्चात् जब मनुष्य सृष्टि सम्पन्न प्राप्त हो चली थी उसके बहुत दिनों बाद की कथा इस नाटक में है। मनु, वैवस्वत मनु ही हमारी सृष्टि-नाटक की सामाजिक रंगभूमि के प्रधान पात्र हैं। पुराणों में जब तक की सारी सृष्टि को चौदह मन्वन्तरों में बाँटा गया है। हमने का आत्मर्ष यह है कि स्वार्थमुख मनु से लेकर वैवस्वत मनु तक का काल अब तक बीता है। पुराणों में विस्तार से इसका वर्णन है।

मेरा ऐसा विश्वास है कि मनु नाम ऐसे व्यक्ति विशेष का है

अथवा प्रभाव उस युग पर पूर्वात्म से रहता है। जैसे दिन के कहरने से उषा, मध्याह्न और सन्धा छीनों कालों का ज्ञान होता है, वर्ष कहरने से बारह मासा तीन सौ पैंसठ दिनों, छह सौ ऋतुओं के आवागमन का बोध होता है। इसी प्रकार एक मनु के युग का अर्थ है एक प्रकार के ज्ञान प्रसार, विशेष सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व्यवस्था का प्रचलन। उसके साथ रुद्धिर्षा, संस्कार सब बातों को समझ लेना चाहिये। इसीलिए वैश्वत मनु से शात्यक इक्ष्वाकु और बुध के वंश से लेकर आज तक की आय-मवादा रहम-तहन, नीति रीति, आचार विचार सभी हैं। वैश्वत मनु इस युग के प्रथम निमाठा कहे जा सकते हैं। मनु की समाज-व्यवस्था का प्रभाव बसल भारतवर्ष पर ही नहीं पड़ा भारत के बाहर यैसीलोनिबन बेल्जियम, बहूरी, पंती मूनानी, ईरानी तथा प्रशान्त महासागर के द्वीप पुष्पों में बसने वाली अल्प व्यक्तियों पर भी पड़ा है। यज्ञ और अग्नि के प्रथम आविष्कारक मनु का प्रभाव उनके निर्मित समाज विधान अब भी यज्ञ-तज्ञ प्रचलित है और राज्य-निमाण, राजा की उत्पत्ति, उसके अविष्कार से राज्य ही भारत में ही नहीं, अग्नि संकार मर में मनु के निर्दिष्ट मार्ग पर ही हुए हैं।

इस मनु को उत्पन्न हुए कितना समय बीता, यह नहीं कहा जा सकता। आज के ऐतिहासिकों में जहाँ रचये हतने भूत में जाने की क्षमता नहीं है वहाँ पुराणों के पीछे चलन में भी अज्ञान को वे अतमर्ष पाते हैं। यह हमारे देश का सबसे बड़ा दुःख है कि हम अनुष्ठितियों, शास्त्रों में बिल्वे हुए अज्ञान इस महान् व्यक्ति को जरा भी नहीं पहचान पाये, और उनके द्वारा परम्परागत प्रकाश की रोशनी हँदने में अतमर्ष रहे हैं। यह दुःख उस समय का और भी अधिक बढ़ जाता है जब हम पश्चात्प दिन में से देखकर ही अज्ञान व्यक्तियों का मुख्य आकृते या उन्हें 'रिक्कट' कर देते हैं। मनु तो बहुत दूर की बात है हम इतिहास के गणना-अज्ञान में उगमे नाम कर महान् मनुओं का प्रकाश भी स्वीकार नहीं कर पाते।

मनु के अज्ञान इतिहास द्वारा पूर्णतया स्वीकार न किये जान पर भी

मारतीय गगन के बहुत ही दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। जिनके प्रकाश से अथवा तब सम्पूर्ण आर्य संस्कृति आलोकित होती रही है। अतएव मनु के कम्म-सम्बन्ध को सोचने की मैं आवश्यकता भी नहीं समझता। मेरा काम तो चित्रकार की तरह उठ काल का सांस्कृतिक चित्र उपरिष्ठत करना है जिस समय मानव-जाति अज्ञान की रात्रि के अन्ध मुहुर्त्त में अँधेरा-अँधेरा हो रही थी। अपने सामने चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा देखकर न जाने क्या सोच रही थी कि इतने में कुदरे को चीर कर सुदूरपूर्व से ज्ञान की जाली लिये आराम-चिन्तन के प्रकाश के साथ बालरवि मनु का उदय हुआ।

निश्चय ही वह ऋग्वेद की रचना का कास था। मनु, इडा, भद्रा, अग्नि, बशिष्ठ, ऋगु, विश्वामित्र आदि ऋषि तथा ऋषि कुम्हार, मन्त्र-रचन कर रही थीं, या कर चुकी थीं। जहाँ उनके सम्मुख दिन और रात का, शुक्ल और कृष्ण का, वसन्त एवं शरद ऋतु का, नदियों, पहाड़ों, मैदानों, पुरों और पक्षियों का सौन्दर्य उन्हें आत्मावित कर रहा था वहाँ बसुंधों, दानवों का उपद्रव भी उन्हें चैन से नहीं बैठने देता था। इसके लिए उन्हें सदा सतक, सचेष्ट और गोज बसाकर रहना पड़ता था जिससे शत्रु के आक्रमण से वे अपनी रक्षा कर सकें।

उन बिलसे हुए आशों को संगठित करने का मेव इस नाटक के प्रधान पात्र वैवस्वत मनु को है। मनु ने अरमी तीक्ष्ण एवं विद्याल, सुदूरगामी दृष्टि से मानव-जाति के भविष्य को देखा उसके लिए व्यवस्था की। उक्त व्यवस्था से सम्पूर्ण पृथिवी प्रकाशित हो उठा। ऐसे वे वैवस्वत मनु ?

इडा उनकी कन्या थी। बेटों में इडा का अर्थ है—बुद्धि। मनु को प्रेरणा देने वाली यही कन्या थी। उसी बुद्धि ने अतीत्य में अियों की आवश्यकताओं को और पुण्य का में पुरुषों के पुरुषार्थ को पहचाना। जिन प्रकार मंडल मिथ की पानी से पराशित अन्नकारी अँधेरे को भीमन के सौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए योग बल से राजा र



प्रवेश करना पड़ा था। रूपक होते हुए भी कौन कर सकता है कि इत्यादि के वे दोनों रूप प्रकृति के विस्तार थे? रूप प्राप्त हुए अपनी बगल जैसे हैं जैसे ही उन्हें समझना चाहिए।

एक बात और—मनु के पुत्र इक्ष्वाकु से पूर्ववर्ष और बुध के संयोग से इत्यादि के द्वारा अन्नवर्ष आता, जो आज तक भारत में प्रचलित हैं। मनु ने बर्ष-विभाग किये हैं। वे केवल समाज की व्यवस्था आमाने के लिए बर्ष और नीति के विस्तार के लिए। इसीलिए पाठक देखेंगे मनु के दश पुत्रों में आर्य जाति के पुत्र: ७ गटन के समय कुछ पुत्र अक्षय बन गये और कुछ अशुभ बनकर राज्य विस्तार करने लगे।

मनु एक प्रकार से बुद्धिवादी थे। यज्ञ की महत्ता आर्य-जाति को संगठित करने के लिए उन्होंने ठठ समय के आर्यों को सुम्भर्न, निष्य, त्रैमसिक बर्षों के विधान किये। यज्ञबर्षों, यज्ञमानों को यज्ञ के लिए प्रोत्साहित किया। प्रजा के दशाद्य द्वारा राज्य की नींव डाली। ठठ समय निष्य नये होने वाले दस्तुओं के उपबर्षों को रोका आदि आदि।

मनु के सम्बन्ध में एक बात और समझ लेना आवश्यक है, यह कि ऋग्वेद के कुछ सूक्तों के दृष्ट्य मनु हैं। शतग्व्य ब्राह्मण, याज्ञिकीक समाज्य महाभारत पुराण्य आदि सभी ग्रंथों में मनु के सम्बन्ध में यज्ञ तब बहुत बर्षों बिलरी हुई मिलती हैं। मैन प्रकृत किया है कि उन सबको एकत्र करके एक दृष्ट्य से समझकर पाठकों के सामने रखें, किन्तु नाटक लेखक होने के नाते इन महान् बरिष को नाटक का प्रधान पात्र बनाने का मैं सोम संशय नहीं कर सका।

#### (४) कुमार-सम्भव

कविता का विशाल क कुमार सम्भव कालिका के समय की एक लोटी भी घटना है कि कवि का पाठकों व श्रद्धार बगुन करने के कारण शान मिला। इन कारण व इन मगान् कायको पूरा नहीं कर पाये। विद्वानों का विचार है कि अक्षयुक्त के पुत्र कुमारगुप्त के उद्भव

होने के उपरान्त मे कवि ने इस ग्रंथ की रचना की थी और वह काम्य कुमार को ही भेंट किया गया ।

मैंने इसी आधार पर एकदली नाटक की रचना की है । इसमें प्रसंग-बरा, न चाहते हुए भी देवता पात्र बन गये हैं ।

यदि इस नाटक के चरित्रों से मेरे देश की संस्कृति का कुछ भी ज्ञान पाठक एवं दर्शकों को प्राप्त हुआ तो मैं अपने को बृत्त धंसमर्द्दंगा । इसके साथ ही इस नाटक के चरित्रों में जो त्रुटि रह गई है वह मेरी असमता है, पात्र तो एक से एक महान् हैं ।

लेखक

## सूची

१	आदिम-युग	१
२	प्रथम-विवाह	५०
३	बैवस्वत मनु और मानव	६६
४	कुमार-सम्मथ	१४३
५	क्रान्तिकारी पिदबामिथ	१७५
६	घासिससा	१९९
७	मौदामिमी	२२३

# आदिम-युग

पहला दृश्य

(प्रागैतिहासिक काल)

[ पहला दृश्य केवल नामक की भौगोलिक स्थिति दिखाने के लिए ही लिखा गया है। दृश्य बदलते जायेंगे और नेपथ्य से कोई इच्छा वर्णन करता रहेगा ]

पूर्व की ओर हिमालय की तलहटी के तीनों ओर अपार समुद्र खर्रा रहा है। लहरें उदक उदक कर समुद्र और आकाश को एक बना रही हैं। दूर तक नीला जल और नीलाकाश दिखाई दे रहे हैं। ओर ऐसा हीसा पकता है कि आगे जाकर समुद्र और आकाश एकाकार हो उठे हैं। पश्चिम की तरफ क्षिप्रन वाले सूर्य की छापी समुद्र की उच्छाल तरंगों में रोली की बोरियाँ डालकर उन्हें कहीं लाल, कहीं पीला, कहीं बिलकुल सफेद, कहीं नीला बना रही है। मानो सहरों इन्द्र-भनुप किसी में समुद्र में जमा कर रहे हैं। प्रातः काल सूर्योदय के समय पहाड़ों पर कभी कर्प कहीं आग की तरह पीली और लाल हो उठी है। वृक्षों, लताओं से लून लून कर धून श्वेत, कबुट, पीत रंग भर रही है। कभी-कभी दोंहर को, जब सूर्य ऊपर आ जाता है तब तब कुछ नमकन-सा लगता है। बरसात में मूललापार पानी की धारें ऐसी देख पकती हैं मानो समुद्र और आकाश को किसी म मोटी, सफेद मून की रस्सियों में बंध दिया है और हिमालय के ऊपर कद पकन से ऐसा लगता है मानो गव जगत् दिममय हो गया है। रादिनी रात में तो यह पकन, समुद्र, आकाश बिलकुल सफेद हो जाते हैं। मानो सवार मर म किसी म वृष

ही पृथ्वी या पृथ्वी के कण्ड उँडल दिय हों वा स्पष्टिक की फतली बादर बिछा  
 बी हो। कृश पक्ष की रात में आकाश की कुछ तारिकाओं को छोड़कर  
 किसी बिगट तिमिर में बिस्व का भास कर लिया है। 'धृ-धृ' की  
 पनपौर और हृदय-बिहारक ध्वनि में बह का सापन और भी उद्बुद्ध,  
 पवन तथा आगकक हो उठता है। मानो मृत्यु के मुल में जाते हुए  
 बिस्व के सम्मुख को अनन्त अक्षर महानाश-सा मुल पैलाये बदा  
 आ रहा है। उनमें इस समस्त प्रपक्ष को अपने कोसे बनकों में दशा  
 लिया है। उस समय तारे आकाश में आशा की तरह मध्यम प्योति-  
 कक्षा को छोड़ उन विचरता की मानवना देन निकले हों।

पृथ्वी का और गन्धक, लाल और बरदे की तरह जमे पहाड़ों पर  
 खोड़ी छिन्नी भूरी भास उग रही है। वृक्षा में बबल बट, पीपल सामोन,  
 अडन, सालू, चुनार ही उम लके हैं, जो बेदगी तरह स इधर उधर  
 निलम्ब लड़े हैं जिनमें कहीं कहीं कोपलें फुट रही हैं। कहीं कहीं पत्ते भी  
 निकल आए हैं। पीपल में कुरे और कहीं कहीं बेल भी दिलार  
 पड़ते हैं। कहीं कहीं ठंडे और गरम पानी के भागमें भी पहाड़ों में बह  
 रहे हैं। दूर तक लम्बी उल ललहटी में, किनारे समुद्र की लहरों से  
 धृ-धृ करत रहते हैं कहीं बिचित्र ढंग के लपि और मगरों के रंगने  
 के चिह्न भी दिलार दे जाते हैं। कभी को पछी भी इधर उधर बहकते  
 मुनार पड़ते हैं। ये पछी बेलने में कुछ अजीब और महाकाब दिलार  
 पड़ते हैं। कभी-कभी कोर बिशासकाय जलधर जल में निकलकर जमीन  
 पर रेंगता है और थोड़ा-सा आकाश में उड़न का बल करता है  
 फिर इधर उधर उदधि में लमा जाता है। इधर समुद्र में ऊँची लहरों के साथ  
 लाठ-लपर गुट का को अन्तु उद्यमकर फिर पानी की लहर पर तैरन  
 लगता है और लहरों के बल-गल का चीरकर पानी में मग्न हो जाता  
 है। पहाड़ों के लमान पानी के लहरें अब किनारे से आकर उड़गती हैं  
 तब उन गम्भार गजन में, उन प्रन्तर आनमय से तट के प्रायु करि  
 उडन है। पैना मठ दागा है मानो यह लक्ष्य उदधि अपनी आकाश

सुम्नी विद्याल लहरों से आकाश में छेद करने वाले पहाकों को उनके गिहलरों के साथ एक ही लहर में निगल जायगा। और हारकर लौठे हुए तो मानो उसके श्रेय का वेग सदसगुना उग्र हो उठता है।

इसी समय एकएक दिलाई पकता है कि पूर्व की ओर एक पहाक की चोटी से धुआँ निकल रहा है। वह धीरे धीरे बढ़ता जाता है और घारे प्रदेश में छा जाता है। बकी-बकी क्षिपकलियाँ जिनका आकार ६ और १० गज के लगभग है, उस धुएँ से छुटपटने लगती हैं। हाथी बकी शीघ्रता से अंगलों से भागने लगते हैं। उनमें से कुछ शीघ्रता से भागने के कारण मरिचियों में उलझ भी गये हैं। फिर भी बसपूक लताओं और मरिचियों को पीरकर अनिर्दिष्ट विद्याओं में वृत्तों को गिराकर भाग रहे हैं। होते होते धुएँ का वेग इतना उग्र हो उठता है कि एक बार ही अंधेरा-ठा छा जाता है। उस समय विपाक, पीरघर की ध्वनि ही केवल सुनाई पकती है और वेग के साथ वह पहाक फूटने लगता है। भूकम्प होता है। पहाक टकराने और वृक्ष टूटने लगते हैं। मरने बहने बन्द हो जाते हैं और कहीं तबी की तरह बहने भी लगते हैं। कहीं समतल भूमि में लहर-लहर दौलने लगते हैं।

गङ्गा की ध्वनि से उस प्रदेश की मरपकता और भी बढ़ जाती है। भूधर से गन्धक की नदी-भी बहने लगती है, जिसमें बहुत सी क्षिपकलियाँ और हाथी बहते हुए दिखाने पकते हैं। समुद्र तक बढ़कर जाते हुए उस गणक नद का दरम और भी मथानक हो उठता है। कहीं कहीं दीन पकता है कि क्षिपकलियाँ पहाकों के टकराने तथा उनमें दरारें हो जाने के कारण बीच में फँस गये हैं। उन समय धारम निकलने के लिए वे जो बल प्रदर्शन करती हैं उस देखकर तो प्राण्य कर्ष उठते हैं। कोलाहल इतना अधिक बढ़ जाता है कि उससे प्रलय की सम्भावना दीन पकने लगती है।

उसी अंधधर में चलने हुए वा मानवाकृति प्राणी दिखार देते हैं। और दौकते हुए एक दूसरे से टकरा जाते हैं। दोनो कालों पककर एक दूसरे को

देखते हैं पर कुछ दीनता नहीं है। धीरे धीरे प्रकाश हो जाता है। उन्हें मालूम होता है अर्द्ध के आकर उकराय है वहाँ पहाड़ की तराई में एक भ्रमना बह रहा है। अनेकाहन पास भी अधिक है। कुछ फूलों के बूब है। भ्रमने के पास विटपिटाया-मा चमरी मृग का एक जोड़ा बैठा है। दोनों एक दूसरे को देखकर आश्चर्य भय, मिथ्याता से बिभोर हो उठते हैं। मानी सार में आत्म को नरं, अमहीनी, अमंभाय्य बात से दख रहे हैं। इसी समय एक नीलगाय छाती है और भ्रमने के पास आकर बैठ जाती है। चिपककर बैठे हुए लंगूर भी कमी-कमी किलकरिवा मरम लागत हैं। बहुत तेर तक दोनों के एक दूसरे को देखने के बाद पुनः नीलगाय को सामन देखकर उस पकड़ना दीकता है। गाव सहम जाती है और पुनः उम पकड़ लेता है। स्त्री पुनः की ओर कनपियों से देखती हुए चमरी के ऊपर हाथ फेरती है। हाथ फेरने से मृगी के शरीर के बालों में फुगुरी हो उठती है। वह पहल कर बार बिरककर इत जान पर भी स्त्री की ओर देखकर अर्धे बन्द कर लेती है।

पुनः के शरीर पर बड़े-बड़े रोंगट, गीरा रंग, बिल्ले हुए बूँपरवाले तिर के बाल, कम पीका म्याग बड़ी-बड़ी और लाल अर्धे, लम्बी नाक, मूँहों की अगद रंगे फूट रही हैं। पतले होठ, लम्बा मुँह बलिष्ठा बाहु मुग्य दुध्या मठीला शरीर कमी संयम कमी रिबर, कमी बोपमुकः अिनु निभय पुनः को आहृति दिला दती है। नामि स मीन और पुनः स ऊपर तक का भाग पुनः की छातों में रँटा दुध्या है। पुनः की आँखा स्त्री के शरीर पर मोड़ रोंगटे, गोल शरीर, पीठ तक लटवने बेतर्तीव बाल अिनमे गुलारें पनी हैं। माया अयछाहृत् एोम, अर्धे रपल आर मरक, एन-बनी मानों कृच्छर भरे एव अटिक के दो कम्मल हों। भाँ तनी रँरे कुछ मामा निभे कप म गाक सगवी आर उतकी नौक आर का लण्ड मुपी ए । पतन आर आल छोड, लारी कनारवाली चमइती एत रनि ईकता दुध्या-नगा गाल बाहु कमी और पतली उँवभिविर्वा—अिनो मगून पद रहे ए । कसर म पुनः तक पुँवों की एाव

उसी को पतली रस्सी से बन्धि हुए तथा मिश्रा से सने हुए मुच्छक पैर ।

स्त्री पुरुष को गाय पकड़कर लाते देस चमरी मृग की तरफ देखती हुई भी कनसियों से पुरुष को देखती रहती है । उसकी आँसों में मय मिश्रासा, झुर्रहल का भाव भर जाता है । स्त्री को देखकर पुरुष को पहले अभिमान, फिर आश्चर्य, फिर उत्सुकता होती है । वह अपने शरीर को देखकर नारी के अंग को देखता है । स्त्री भी उत्सुकता से अपने अंग को देखकर पुरुष के अंगों से अपना मिलान करती है । पुरुष झटझटकर मुँह से झरने का पानी पीने लगता है और अपना अंग भी पानी के प्रतिबिम्ब में देखता है, फिर स्त्री की ओर देखता है । उत्सुकता से फिर समता करते हुए पानी में अपनी छामा देखता है । स्त्री भी वही क्रिया करता है । फिर पशुओं की ओर देखती है । एकएक पुरुष की ओर बढ़ती है, फिर उभर जाता है तथा पास ही मृग के समीप जाकर उसके शरीर पर हाथ फेरती है । उस अवस्था में भी उसके प्दान नर की ओर ही रहता है । इसी बीच नर नारी के पास आकर लड़ा हो जाता है और प्दान से नारी के अंग देखने लगता है । मग का छोड़ा नर को पास आया जान भागन लगता है । नारी जो पहले मुस्करा रही थी सकुचा जाती है । तथा एक वृक्ष के तने से सटकर लड़ी हो जाती है और नर की ओर देखने लगती है । मृग को बढ़ता देखकर उस पकड़ने के लिए बढ़ती है और आँसों से ओम्ल हो जाती है । थोड़ी देर में झरने से पूर झीले पर दिलाई देती है । नर इसी बीच पहले तो उसे दूँदता है फिर एकएक 'आ' 'आ' की आवाज करता है । स्त्री झीले पर से मुस्कुराती है । नर उभर ही सकेत करता है । एक बड़ा पशु नारी की ओर बढ़ता है । नर उस देखकर हाथ से संकेत और मुँह से 'हूँ हूँ' करता है । नारी नर के संकेत में तनको देखती है । वह कुछ सक्रम्यकर खम्ब-ही रह जाती है । अब पशु नारी के पास आकर मुँह फ. बठा है तब वह हर जाती है । पशु गुसकर झर से नारी को दबोच लेता है । नारी 'हूँ हूँ' करके उसे पीछे दबेकती है, पर नीचे एक दम दलान होने के कारण झिनारे पर



देखते हैं पर कुछ लीनता नहीं है। धीरे धीरे मजबूत हो जाता है। उन्हें मालूम होता है जहाँ वे खाकर उठना चाहते हैं वहाँ पहाड़ की तराई में एक झरना बह रहा है। अथवा झरना पास भी अचिर है। कुछ फूलों के बूब हैं। झरने के पास सिट्टियिया-ना-ना समी मृग का एक जोड़ा बैठा है। दोनों एक दूसरे को देखकर आश्चर्य भय, विचित्रता से विमोह हो उठते हैं। मानो सार में आज कोर नर, अमहीनी, असंभाव्य बात वे देख रहे हैं। इसी समय एक नीलगाय आती है और झरने के पास आकर बैठ जाती है। चिरइनर बैठे हुए लँगूर भी कमी-कमी किलकिली भाव लगते हैं। बहुत दूर तक दोनों के एक दूसरे को देखने के बाद पुरुष नीलगाय को सामन देखकर उस पकड़ना दौड़ता है। गाव सहम आती है और पुरुष उस पकड़ लेता है। स्त्री पुरुष की ओर कल्पितों से देखनी हुई अमरी के ऊपर हाथ फेरती है। हाथ फेरने से मृगी के शरीर के पालों में फुरफुरी हो उठती है। वह पहले कर बार बिरककर इतना जान पर भी स्त्री की ओर देखकर अर्धे बन्द कर लेती है।

पुरुष के शरीर पर बड़े-बड़े रोंगटे, गोरा रंग बिल्वे हुए पूँवरवाले तिर के बाल, कम चौड़ा माथा बड़ी-बड़ी आर आल अर्धे, लम्बी नाक, मूँहों की अगद रेंगे फूट रही हैं। पतले होठ, लम्बा मुँह, बलिष्ठ बाहु मुता हुआ गठीला शरीर, कमी बलम कमी रिपर, कमी श्लेष्मपुत्र किन्तु निमय पुरुष की आकृति दिग्गम दनी है। माथि म मीने और मुँह म ऊपर तक का भाग बूब की लालों म रैना हुआ है। पुरुष की अथवा स्त्री के शरीर पर थोड़े रोंगटे, मोल शरीर, पीठ तक लटकने बेतरतीब बाल अिनमे गुल्लट पनी हैं। माथ अथवा झरना लोरा अर्धे रने और मादक पनी-बड़ी मानी कुत्तर अरे हुए अटिठ के दा कमल हैं। भाँ उनी हर कुछ आली निरि बगल नाक लम्बी आर उनकी कौट आर का लक मुमी दूर। पतल आर आल अथ, लोरी कलारवाली अम दनी दन्त रकि दैना हुआ अंग, याल बाहु लम्बी और पतला अर्धे—अिनमे मगून पद रद हैं। कमर म पुँ १ तक बूबों की दास

उठी को पतली रस्ती से बधि हुए तथा मिट्टी से बने हुए सुभक पैर ।

स्त्री पुरुष को गान पढ़कर लाते देख बमरी मृग की तरफ देखती हुई भी इनस्त्रियों से पुरुष को देखती रहती है । उसकी आँसों में मय, बिहासा, कुनूहा का भाव भर जाता है । स्त्री का देखकर पुरुष को पहले अभिमान, फिर आश्चर्य, फिर उत्सुकता होती है । वह अपने शरीर को देखकर नारी के अंगों को देखता है । स्त्री भी उत्सुकता से अपने अंगों को देखकर पुरुष के अंगों से अपना मिलान करती है । पुरुष मरतकर मुँह से मरन का पानी पीने लगता है और अपना अंग भी पानो के प्रतिविम्ब में देखता है, फिर स्त्री की ओर देखता है । उत्सुकता से फिर समता करते हुए पानी में अपनी छाया देखता है । स्त्री भी वही क्रिया करता है । फिर पशुघ्रा की ओर देखती है । एकएक पुरुष की ओर बढ़ती है, फिर गहर जाती है तथा पास ही मृग के समीप जाकर उसके शरीर पर हाथ फेरती है । उस अवस्था में भी उसके ध्यान नर की ओर ही रहता है । इसी बीच नर नारी के पास आकर लड़ा हो जाता है और ध्यान से नारी के अंग देखने लगता है । मग का बोधा नर को पास आना जान भागने लगता है । नारी को पहले मुस्करा रही थी सकुचा जाती है । तथा एक वृद्ध के तने से सटकर लड़ी हो जाती है और नर की ओर देखने लगती है । मृग को बढ़ता देखकर उस पकड़ने के लिए बढ़ती है और आँसों से धोमल हो जाती है । बोधी देर में मरने से वृद्धी पर दिखाई देती है । नर इसी बीच परसे तो उसे हँदता है फिर एकएक 'आ 'आ की आवाज करता है । स्त्री जैसे पर से मुस्कराती है । नर उसपर ही संकेत करता है । एक बड़ा पशु नारी की ओर बढ़ता है । नर उसे देखकर हाथ से संकेत और मुँह से 'र ' करता है । नारी नर के संकेत में उगभो दलता है । वह कुछ सकरकर स्तम्भ-ही रह जाती है । अब पशु नारी के पास आकर मुँह च करता है तब वह हर जाती है । पशु गुराकर मूट से नारी को हबोच सेता है । नारी 'हँ हँ' करके उसे पीछे टपेसती है, पर नीचे एक दम बलान होने के कारण किनारे पर

बिबट-सी स्त्री होकर नर का और प्रार्थना की दृष्टि से देखती है। पशु वनों से उस दबाकर मिरा दता है। नारी शोष में पशु को पीछे इटाती है पर हटा नहीं पाती। नर पहले तो अट्टहास करके हँसता है, फिर ध्यान से दम्पता है कि नारी सक्षय से भीरे-भीरे बक रही है। और चुप-सी हो मरं है। तब वह पशु की तरफ मारता है। पास जाकर उस से लड़ने लगता है। नारी, जो अब तक धकी हुई आर वनों की खरोंच से मूर्च्छित-सी हो गई थी, बाग प्राप्त करके नर और उस पशु का मुझ देखती है।

अब वह पुरुष को पीछे टकेल देता है तब वह 'हू हू' करके चिल्लाती है और अब पुरुष उस पशु को मिरा देता है तब ताली बजाकर अट्टहास करती है। निरन्तर मुझ होते रहन क कारण तिह पक जाता है और एकवारगी हस्तांग मारकर अग्नि से अभ्रत हो जाता है। नून क लोचन पोंछकर हँसता हुआ पुरुष निमगी की मोक्ति उठता है और पाव ही एक शिला पर बैठ जाता है। नारी दवात्र सी होकर उसक पास जाती है और घाम छोड़कर उमका रुधिर पोंछन लगती है। अब दम्पती है कि रुधिर फिर भी नहीं रुक रहा है तब उस नीचे उतार जाती है और भरने के पास से जाकर पानो से उतरक पाव धोन लगती है तथा एक वृष की छास छोड़कर उमक अग को लगे दती है। पुरुष स्त्री से पहले तो कुद नहीं बोलता फिर सामप्य पा आने पर उमका हाव भरक रता है। स्त्री मंनूनिष्ठ सी होकर पीछे हट जाती है तथा पुरुष की ओर देखती रहती है। पुरुष फिर एकदम अट्टहास करक वृष पर बक जाता है और एक लँगूर को पकड़न लगता है। लँगूर एक वृष से दूसरे वृष पर कुद जाता है। पुरुष भी उसी तरह वृष पर कूदकर लँगूर की पूछ पकड़ उस लीच लगा है और दोनों नीचे आ जाते हैं।

स्त्री अपयुक्त कृतमग तथा उमके नाहन पर मुग्न होकर मुरकवाती है। पुरुष लँगूर की पूछ पकड़ गन ही गन में उम वृष की तरफ उह्वाल गता है। फिर स्त्री की ओर मुकता है। स्त्री भी मृग का छोड़कर पुरुष की ओर बढती है।

दोनों धामने-सामने लगे हो गये हैं। नर में हर्ष है, नारी में ठसु कटा और शालमा। नर नारी के शरीर की ओर देखकर ईसता हुआ उसके अंग लूटा है। नारी एकदम पास हटकर नर की ओर देखने लगती है। नर हथर ठथर देखता हुआ कुछ सोचता है और नारी के पास जाकर उसके शरीर को छूने लगता है। नारी डरी-सी उस ओर देखती है परन्तु शरीर छूने देती है। ऐसा मालूम होता है जैसे कोर अननुभूत रोमांच उभे हो रहा है।

पुरुष—(पहले नारी की उपसर्गियाँ पकड़ता है। फिर उसके बाहु पर हाथ फेरने लगता है तथा पशु द्वारा की गई हाथ की सर्राब को साफ करके हसने लगता है।)

स्त्री—(भेदभरी बुद्धि से पुरुष को ओर देखती हुई उसके छाब चलने लगती है। फिर एकदम हाथ लुझाकर पीछे धाती हुई पाय के सरीर पर हाथ फेरने लगती है।)

पुरुष—(पहले लड़ा होकर देखता है। फिर बहू भी गाय के पास जाता है और स्वयं गाय के शरीर पर हाथ फेरने लगता है। पाय सरीर पर उसके हाथ रखते ही बिबक जाती है।)

स्त्री—(गर्भ तथा भेदभरी बुद्धि से पुरुष को देखती है।)

पुरुष—(पीरे-पीरे कोप में धाकर गाय को पकड़ लेता है। पाय झिझकर चलने लगी है। बहू उसे फिर बबोच लेता है।)

स्त्री—(पुरुष के हाथों से उसे लुझाने लगती है।)

पुरुष—(स्त्री की ओर देखते हुए हतकर गाय को छोड़ देता है।)

इसी समय उस एकदम छिप जाता है। मैत्र गड़गड़ाकर गबने लागते हैं। हवा तेज हो जाती है। लँगूर किलकारियाँ भरकर कूटने लगते हैं। मृगों का जोर जोरकी भरने लगता है। पुरुष प्रयेक गर्जन पर अट्टहास करता है। स्त्री हँसती है। गर्ज आरम्भ हो जाती है। सब पशु पक्षी मागते हुए भगने लगते हैं। पुरुष और स्त्री भी एक दूसरे की तरफ देखते हुए मीग रहे हैं। फिर दोनों पाठ के चयन की क्षाया में लगे

विशुद्ध-सी २-१ होकर नर से और प्राथना का हाथ स देगती है। पशु  
 उमा म उम दबाकर निगा ला दे। नरा मोक्ष में पशु को वीक्ष्य द्यती  
 है पर ह । नरा गनी नर गल तो अष्टक करके दैलता है निर ध्यान  
 म नरा है एक नारी मय स गर कीर बक रही है। और नुर नी हो मर  
 । तब वह पशु का तरफ भयता । पाल जाकर उम स लाने लगता  
 । नरा जो अर तक थका दूर और उमा की स्वरोच स मूर्च्छित-सी  
 हा ग थी बल प्राप्त करके नर और उम पशु का पुत्र दलती है।

जब वह पुरुष को पाछु बल दता है तब वह ह ह करके पिताकी  
 है और तब पुत्र उम पशु का गरा दता है तब ताला बजाकर अष्टाव  
 करती है । तत्र-तर पुत्र हात रदन क करण सिंह पक आता है और  
 एकबारगा लुलागि मारकर अग्नि म आत्म दो जाता है। नून के  
 मरान पालकर दक्षिण कुष्ण पुरुष विख्या की भाति उठता है और पाठ  
 ही एक शिला पर बैठ जाता है। नारा दबाइ नी होकर उठक पास जाती  
 है और पाल तोकर उमका क धर पावन लगता है। उर दगती है कि  
 स्थिर निर मी नहीं रुक रहा है तब उस नीच उतार लाती है और मरने  
 के पाठ ले जाकर पाना स उमक पाव धोन लगती है तथा एक वृष की  
 काल तोकर उसके अंग को लसत हती है। पुरुष रथो स पहल तो कुव  
 नहीं सोलता निर सामप्य वा जान पर उमका हाथ गतक देता है। रथी  
 सकृद्विभ सी होकर वीक्षे दृष्ट जाती है तथा पुरुष की और देखती रहती है।  
 पुरुष फिर एकबम अष्टाव करके वृष पर पक आता है और एक लँगूर  
 को पम्कने लगता है। लँगूर एक वृष से दूसरे वृष पर कूक जाता है।  
 पुरुष मी उठी तरह दूसरे वृष पर कूककर लँगूर की पूँछ पकड उस जीव  
 सेना है और दोनों नीचे धा जाते हैं।

स्त्री मममुक्त कृतक्या तथा उसके साहस पर मुग्ध होकर मुस्कराती  
 है। पुरुष लँगूर की पूँछ पकड लेख ही लस म उसे वृष की तरफ उक्ता  
 देता है। फिर स्त्री की और मुक्ता है। स्त्री मी मृग को छोकर पुरुष की  
 ओर बढ़ती है।

दोनों आम्ने-आम्ने लड़े हो गये हैं। नर में हर्ष है, नारी में उल्लु-  
 क्ला और लासला। नर नारी के शरीर की ओर देखकर हैसता हुआ  
 उसके अंग हुआ है। नारी एकदम पीछे हटकर नर की ओर देखने लगती  
 है। नर हथर-उथर देखता हुआ कुछ सोचता है और नारी के पास  
 जाकर उसके शरीर को छूने लगता है। नारी डरी-धी उध ओर देखती  
 है परन्तु शरीर छूने देती है। ऐसा मासूम होता है जैसे कोई अननुभूत  
 रोमांच उसे हो रहा है।

पुरुष—(पहले नारी की उमल्लिधी पकड़ता है। फिर उसके हाथ पर  
 हाथ फेरने लगता है तथा पसु द्वारा की गई हाथ की खरौंच को माफ  
 करके हसने लगता है।)

स्त्री—(बेबनरी कृष्टि से पुरुष की ओर देखती हुई उसके साथ  
 चलने लगती है। फिर एकदम हाथ छुड़ाकर पीछे घाती हुई गाय के  
 शरीर पर हाथ फेरने लगती है।)

पुरुष—(पहले कड़ा होकर देखता है। फिर वह भी गाय के पास  
 जाता है और स्वयं गाय के शरीर पर हाथ फेरने लगता है। गाय  
 शरीर पर उसके हाथ रखते ही बिचक जाती है।)

स्त्री—(गर्भ तथा बेबनरी कृष्टि से पुरुष की देखती है।)

पुरुष—(बीरे-बीरे श्लेष में घाकर गाय को पकड़ लेता है। गाय  
 छिटककर घमग हो जाती है। वह उसे फिर दबोच लेता है।)

स्त्री—(पुरुष के हाथों से उसे छुड़ाने लगती है।)

पुरुष—(स्त्री की ओर देखते हुए हसकर गाय को छोड़ देता है।)

इसी समय स्वयं एकदम क्षिप जाता है। मेघ गड़गड़ाकर गर्जने  
 लगते हैं। हवा ठेक हो जाती है। लँगूर किलकारियों भरकर कूदने लगते  
 हैं। मृगों का जोड़ा चौकड़ा भरने लगता है। पुरुष प्रत्येक गजन पर  
 आइहास करता है। स्त्री हैसती है। वर्षा आरम्भ हो जाती है। सब पशु  
 पक्षी भागते हुए भगने लगते हैं। पुरुष और स्त्री भी एक दूसरे की  
 तरफ दिग्गते हुए भीग रहे हैं। फिर दोनों पास के वृक्ष की छाया में

१२१-मी १८० होकर न १ घोर प्राथना का दृष्टि से देवता है। वयु  
 का म उन १२५५५५ गिरा १ १। नरा मोध म वयु को वीर्य इयती  
 है पर १। नही गती। न १८० तो अइ १५५ करक देवता है फिर ध्यान  
 म १ १११ १ १५ नारी म १५५ म तीर पीर थक रही १। और पुग मी हो गर  
 १। तब बंद वयु का तरफ भयता १ १५५ आकर उल स सड़ने लगता  
 १। नारा को अब तक धरती १ १५५ पत्रा की प्रतीक स मूर्च्छित-को  
 १। गर थी भाण प्राप्त करक नर और उल वयु का मुठ देवता है।  
 अब बंद पुष्य को पाइ १५५ १५५ १ १५५ तब बंद हू ह करके विप्राती  
 १ और तब पुष्य उल वयु का मारा यता १ तब तासा बजाकर अष्टदाश  
 करता १। १५५-१५५ गुठ दात रदा क १५५५ सिद्ध थक जाता है और  
 एकवारमी बुद्धिग मारकर आम्बि म ओमल हो जाता है। गून क  
 लवान पाहुकर दफिना हुआ पुष्य पित्रयी की भाति उगता है और पाठ  
 ही एक शिला पर बैठ जाता है। नारा वबाद मी होकर उतक पाठ जाती  
 १ और पाम तोड़कर उमका क भर पा ५५५ लगता है। ५५५ दलती है कि  
 स्थिर फिर भी नहीं रुक रहा है तब उस नीच उतार जाती है और भरने  
 के पाम ले आकर पाना स उलक पाब जोम सगती है तथा एक वृक्ष की  
 छास तोड़कर उसके अंग को लय दती है। पुष्य स्त्री स परसे छ कुछ  
 नहीं सोलना फिर साम्प्य वा जान पर उसका हाथ भरक देता है। स्त्री  
 संकृषित ली होकर वीर्ये डट जाती है तथा पुष्य की ओर देखती रहती है।  
 पुष्य फिर एकदम अष्टदाश करक वृष पर बंद जाता है और एक सैंगूर  
 को पकड़ने लगता है। सगूर एक वृक्ष स वृक्षे वृक्ष पर कूद जाता है।  
 पुष्य मी ठली तरह वृक्षे वृक्ष पर कूदकर सैंगूर की पूँछ पकड़ उस जीव  
 लेता है और दोनों नीचे आ जाते हैं।  
 स्त्री भयमुक्त कृष्णता तथा उसके साहस पर मुग्ध होकर सुरभराती  
 है। पुष्य सैंगूर की पूँछ पकड़ लेस ही लेस में उस वृक्ष की तरफ उड़ान  
 देता है। फिर स्त्री की ओर मुकता है। स्त्री मी मृग को छोड़कर पुष्य की  
 ओर बढ़ती है।

दोनों सामने-सामने खड़े हो गये हैं। नर में हर्ष है, नारी में उत्सुकता और साजसा। नर नारी के शरीर की ओर देखकर ईसठा हुआ उसके अंग झूटा है। नारी एकदम पीछे हटकर नर की ओर देखने लगती है। नर इधर-उधर देखता हुआ कुछ सांचठा है और नारी के पास जाकर उसके शरीर को छूने लगता है। नारी डरी-सी उस ओर देखती है परन्तु शरीर छूने देती है। ऐसा मालूम होता है जैसे कोई अननुभूत रोमांच उसे हा रहा है।

पुरुष—(पहले नारी की उपलियां पकड़ता है। फिर उसके बाहु पर हाथ फेरने लगता है तथा पशु द्वारा की गई हाथ की कार्रवाही को साफ करके हस्तने लगता है।)

स्त्री—(मेढभरी दृष्टि से पुरुष की ओर देखती हुई उसके साथ चलन लगती है। फिर एकदम हाथ झुकाकर पीछे घाती हुई गाय के शरीर पर हाथ फेरने लगती है।)

पुरुष—(पहले झुका होकर देखता है। फिर वह भी गाय के पास जाता है और स्वयं गाय के शरीर पर हाथ फेरने लगता है। गाय शरीर पर उसके हाथ रखते ही बिचक जाती है।)

स्त्री—(एवं तथा मेढभरी दृष्टि से पुरुष को देखती है।)

पुरुष—(धीरे-धीरे बोध में आकर गाय को पकड़ लेता है। नाथ छिटककर प्रलय हो जाती है। वह उसे फिर खोज लेता है।)

स्त्री—(पुरुष के हाथों से उस छुड़ाने लगती है।)

पुरुष—(स्त्री की ओर देखते हुए हसकर गाय को छोड़ देता है।)

इसी समय सूर्य एकदम छिप जाता है। मैथ गड़गड़ाकर गवने लगते हैं। हवा तेज हो जाती है। सैंगूर किन्वारियां भरकर दूदन लगते हैं। मृगों का जोड़ा जोड़की मरने लगता है। पुरुष प्रायः गर्जन पर अहसास करता है। स्त्री ईसती है। बर्ग आरम्भ हो जाती है। सब पशु पक्षी भागते हुए भगने लगते हैं। पुरुष और स्त्री भी एक दूसरे की तरफ निरंतर हुए मीग रहे हैं। फिर दोनों पास के वृष का साय में लड़े



पुरुष—(पुरुषकर) क्यों ?

स्त्री—मन्त्र होता है मत जा । नया है घर, क्या करूँ ?

पुरुष—इच्छा ।

स्त्री—इच्छा ? हाँ इच्छा है तू मत जा । तूने घर तब कहाँ स  
कहाँ स ।

पुरुष—छीगा ।

स्त्री—कहाँ स सोना ?

पुरुष—ब्रह्मा से ब्रह्मा बना है—हमस बना, हमारा जैसा वह मुझ  
मिलाता है ।

स्त्री—मैं भी सीगूँगा । कहाँ है करी है वह कमन है ?

पुरुष—सीगूँगी कहो ।

स्त्री—सीगूँगा, क्यों नहीं । बोल्हो सीगूँगा ठीक है ।

पुरुष—तू स्त्री है ।

स्त्री—(उत्तलुक्ता से) स्त्री स्त्री क्या ?

पुरुष—तू नारी है ।

स्त्री—यह पहली क्या क्या ?

पुरुष—स्त्री, नारी ।

स्त्री—स्त्री, नारी, और तू भी नारी है ?

पुरुष—नहीं पुरुष नर ।

स्त्री—(आश्चर्य से) पुरुष, नर, क्यों ?

पुरुष—ब्रह्मा न कहा है । नर नारी हैं, पुरुष स्त्री हैं ।

स्त्री—नर-नारी पुरुष-स्त्री । क्यों क्यों ऐसा क्यों । उठने उठने  
मुझे बेल्ला ?

पुरुष—वह कभी-कभी आकर बताता है ।

स्त्री—कब आया था ?

पुरुष—अब तू (बीह की धोर संकेत करता है) अब तू यों हो जाती  
है (घाँसे बन्द करके सोने का तादूप करता है) तब आया था ।

स्त्री—वह मुझे क्या हो गया था ?

पुरुष—हाँ यह थी । वह 'निद्रा' कहाती है । तब वह आया था ।

स्त्री—(सोचकर) अब निद्रा हो य" थी उस आया था । वह नर है ।

पुरुष—क्या जानें । पूछूँगा ।

पुरुष—मैं जाता हूँ ।

स्त्री—(घबराकर) नू जाता है, तो क्या कहीं क्या होता है न जा ।  
मैं भूल गई ।

पुरुष—इच्छा ।

स्त्री—हाँ हाँ । इच्छा होती है न जा ।

पुरुष—नहीं, मैं जाऊँगा । ब्रह्मा मे कहा है—नू पुरुष है । कुछ  
करने जा ।

स्त्री—(हैरानी से) करन, क्या करम ?

पुरुष—वह तो मैं भूल गया पर जाना होगा ।

स्त्री—(घामे बड़कर) ठहर । (बाहर निकल जाता है) । स्त्री पबरा  
कर) मुझे कैसा होता है ! (जसी समय मातस धारीचारी ब्रह्मा का  
प्रवेश एक छाया-सी बोल बड़ती है) यह मुझे क्या हो गया है, यह मुझ  
क्या हुआ ? यह जसा गया लोकर ? यह मुझ कैसा होता है !

ब्रह्मा—पबराइट, मय ।

स्त्री—पबराइट, मय उसने कहा था । (इधर-उधर देखकर) नू  
कीन है ! कुछ भी नहीं दीप्तपकता । हाँ मैं यह यह हूँ । पबराइट हो गए  
है । यह एसा क्यों हो गया ?

ब्रह्मा—यह स्वभाव है ।

स्त्री—(इधर-उधर देखकर) स्वभाव ? स्वभाव क्या होता है, यह  
कीन बोलता है ?

ब्रह्मा—ऐसी आशय्या में इत प्रकार होता है ।

स्त्री—ऐसा होना स्वभाव है । अच्छा, मैं पाहती हूँ वह न जाता ।  
वह कब आबगा, कब आबेगा ?

बह्या - ( कोई जवाब नहीं मिलता )

स्त्री—तू काम दे दिना कुछ भी नहीं देता।

बह्या—( कोई उत्तर नहीं मिलता बोड़ी बैर बाह ) नारी ?

स्त्री—( जम्बुक होकर ) क्या कहा, नारा। तमने कहा या नारी !

मैं मारी हूँ।

बह्या—तू नारी दे, स्त्री।

स्त्री—झोर बह केन दे।

बह्या—नर, पुरुष।

स्त्री—टीक नर पुरुष। पर बह गया क्या, धाया क्या नहीं ?

धाया क्या नहीं ?

बह्या—बह पुरुष दे धार न स्त्री ह। न यह सब दल रही ह।

स्त्री—दल तो रही है।

बह्या—यह सब क्या है ?

स्त्री—( चारों ओर देखकर ) दल ता रही हूँ पर जानती नहीं।

यह क्या है ? यह सामन क्या दे पतला-पतला। बहुत बड़ा। मैं पारती हूँ जानूँ, बह सब क्या है ? मेरी इच्छा है। मैं सोचती हूँ तमसे पूछूँ, तू उतस क्या कह दिया ? बह क्या करने गया है ?

बह्या—करना ही स्वभाव है।

स्त्री—क्या यह सब स्वभाव है ?

बह्या—हाँ यह तू जो सामने रख रही है बह क्या है, बह समुद्र है।

तूने देखा ?

स्त्री—हाँ सोचती हूँ यह क्या है पर यह तो बल है। ऊपर सगिरता है झोर बहाँ इच्छा हो जाता है, बह केभी बात है। इतने जल का क्या होगा तू बसा सकता है ? जो उस दिन, उस दिन मैं झोर बह, बह सब क्या हो गया या तू बसा सकता है ? हमारी देह को कुछ हो रहा या।

बह्या—यह क्या थी। तुम दोनों सही ठंड स किट्टर रहे थे। बह भी प्रकृति का स्वभाव है।

स्त्री—फिर कहा स्वभाव । यह स्वभाव मत कह, मुझे कैसा मासूम होता है । क्या कहूँ ! मूल गई ।

ब्रह्मा—बुरा ! जो मन को भला न लगे उस जगह 'बुरा' करना चाहिए ।

स्त्री—ठीक ही, बही तो । पर यह तूने क्या कहा 'प्रकृति' ?

ब्रह्मा—हाँ, प्रकृति । यह समुद्र, वायु, पहाड़ हिम वृक्ष, लता, पत्ते, पास सब प्रकृति का ही रूप है ।

स्त्री—हाँ ही यह सब प्रकृति है । ठीक है सब प्रकृति है । हम भी प्रकृति हैं । वह भी प्रकृति है । मुझे क्या हो गया । यह समुद्र वायु, पहाड़, हिम, वृक्ष, लता, पत्ते, पास से अधिक मुझे वह क्यों अच्छा लगता है । तू क्या सकता है ? ( इतने में मृग घाकर स्त्री के शरीर को चाटने लगता है ) यह अच्छा लगता है । ( हाथ फेरकर प्रसन्न होती हुई ) कितना सुन्दर, बहुत सुन्दर है । ओ कितना अच्छा है । कुछ बहुत अच्छा, कुछ बहुत बुरा, ऐसा क्यों है तू क्या सकता है ?

ब्रह्मा—यह संसार है । वहाँ सभी तरह की वस्तुएँ हैं । कौन बुरा अच्छा है कौन बुरा ? यह देखने, जानने वाली की शक्ति पर निर्भर है जो पत्थर किसी के हाथकर थोड़ा पहेँना सकता है बही गुना बनाने के काम भी तो आता है । जिस बल में आदमी डूब जाता है बही सम्पूर्ण प्रकृति को जीवन देता है । जिस धूल क प्रकाश से दुग्धारी टेर मुलस जाती है बही न हो तो संसार अन्धकारमय हो जाय और प्रकृति तथा मनुष्य का जीवन अनात्म हो जाय ।

स्त्री—असम्भव बिल्कुल नया शब्द है । 'जीवन' यह क्या है ! इतना शब्द !

ब्रह्मा—पास बढ़ती है ।

स्त्री—हाँ पिछले दिनों में इसका पाम की पाम बढ़ गई है ।

ब्रह्मा—तूने देखा होगा यह वृक्ष भी बढ़ रहा है ।

रानी—हाँ।

बहू—क्या नू कुछ समय पूर्व इतनी ही बड़ी थी जितनी अब ?

रानी—(अपने दादीर की घोर बेगवण) बड़ी है।

बहू—तो कबना जीवन ६ परन्तु तेरे घोर बूझों क जीवन म अन्तर है। कुछ लता बड़त ६ किन्तु मनुष्य का जीवन इतक अतिरिक्त कुछ और भी है। यह इच्छा करता है, किसी को बुरा मममता है पृथा करता है चाहता है भय स बनन का यत्न करता है मुल्य पाकर प्रसन्न होता है, मुल्य पाकर रो बता है, बल यही उसका जीवन है। तेरा भी जीवन है और उस नर का भी जो अभी पाहर गया है। म्मा का भी जीवन है।

रानी—(सोचती हुई) बड़ जोपन है यह जीवन है।

बहू—तू जीवन का महत्व समझ। यही मैं तुम्हें बताने आया हूँ।

रानी—जीवन का महत्व क्या है ?

बहू—जानन जीवन को बनाए रखना, उनको बढ़ाना।

रानी—उसको बढ़ाना बड़ तू क्या कर रहा है ? बड़ बढ़ाया किस तरह का सकता है ? असम्भव।

बहू—बड़ तुम्हें अभी स्पष्ट होगा। देख उधर सामन (देखती है नर कम्पे पर नीलगाम के बच्चे की लारे बला धा रहा है। उसके तिर लटक रहा है और बालक नारी के सामने पटक बेता है। रानी घाबराव मय अलुप्यता से उत्तकी तरक देखती है।)

रानी—बड़ क्या है यह तो कही नीलगाम है म ? नहीं यह बड़ नहीं है। अरे ! इस हो क्या गया ? बड़ तो उससे छोटा है, बहुत छोटा।

पुबब—पहाड़ स गिर पका इसे कुछ हो गया है। उधर। (बौझकर दोनों हाथों में बल लाता है और उसके म हू में डालता है। फिर भी उसे बेवटा नहीं होती। नारी उसके तिर हिलती है। मुह कोलती है। बुर हिलाती है।) इसे क्या हो गया ?

रानी—इस बड़ हो गया जो पहल कभी नहीं हुआ था। यह क्या

दे ? (बोनों के चेहरे पर मय और झोक के बिह्व छा जाते हैं।)

बह्या—यह मृत्यु है।

बोनों—मृत्यु।

बह्या—हाँ, यह मृत्यु है।

पुरुष—अच्छा तू है।

स्त्री—मृत्यु (जसी जेप्टा में) यह तो बहुत बुरी है।

पुरुष—बहुत बुरी है। अच्छा बह्या, तू बता सकता है क्या मेरी

भी वही दशा होगी ?

बह्या—हाँ एक दिन सबकी वही दशा होगी।

स्त्री—हैं हूँ, ऐसा क्यों कहता है, क्या मेरी भी ऐसी दशा होगी ?

बह्या—हाँ सबकी। परन्तु इसका उपाय है। जैसे जीवन से मृत्यु

होती है वैसे ही जीवन से जीवन की उत्पत्ति होती है।

बोनों—'उत्पत्ति' क्या शब्द है। उत्पत्ति क्या ?

बह्या—तू ने एक गाम को पहलें देखा था ?

बोनों—नहीं, पर ऐसी ही एक हमारे पास खेती थी।

बह्या—बस, यह उसी गाम की सन्तान है।

बोनों—सन्तान, (आश्चर्य से) एक और गर्म बात ! सन्तान क्या ?

बह्या—'बढ़ना'। दो स तीसरे की उत्पत्ति सन्तान कहलाती है।

स्त्री—(अस्मृता से) तू क्या पहली-सी कह रहा है ?

पुरुष—'पहली' यह कैसा शब्द है। यह तूने कहाँ से सुना ?

स्त्री—यह मैंने अपने 'आप' कहा है। न मालूम मेरे मुँह से कैसे

निकल गया। बह्या, बताओ यह सन्तान कैसी होगी। मैं चाहती हूँ ऐसी

गाय उत्पन्न कर सकूँ जिसके साथ सदा मिला करूँ।

बह्या—ऐसा नहीं हो सकता। तू अपने जैसी स्त्री पुरुष ही उत्पन्न

कर सकती है नीलगाय जैसी नहीं। अतः न की (सामने की घोर संकेत

करके) सन्तान अतः न ही होगी नीलगाय की सन्तान नीलगाय।

स्त्री—मैं सन्तान चाहती हूँ। जब वह बाहर जाता जाता है, जब यह

मुझ पर नाथ करता है पत्थर लानकर मारना चाहता है तब जो मेरी रक्षा कर सके ऐसी सम्पत्ति मैं चाहती हूँ। मन्ना मुझ उपाय बता।

पुरुष—मैं भी 'उत्तराधि' करना चाहता हूँ (एकको घोर संकेत करता हुआ) यदि इतनी पहलें मलु हूँ तो मैं एक नारी के साथ रहना चाहेगा जो बाहर से पकड़कर आन पर मेरी सेवा कर सके। मुझ जस रिता सके। जैसा सिद्ध से युद्ध करने पर एक बार हमना किया था। मैं युद्ध चाहता हूँ। तू बड़ीदना भागना मारना काटना चाहता हूँ और चाहता हूँ मैं किसी से भी न हारूँ। जब मैं एक जाऊ तब (एकको घोर संकेत करके) ऐसी नारी चाहता हूँ। मैं भी उत्तराधि करना चाहता हूँ। मन्ना तू मुझ को उपाय बता।

स्त्री—शौकना, भागना मैं नहीं चाहती। मैं एक जगह बैठी रहना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ नरस प्रेम करने को मेरी सम्पत्ति करे। मुझे सिद्ध से बचावे।

पुरुष—'प्रेम' नया शब्द है। तू प्रेमा क्यों चाहती है। मैं तुम्हें दय नहीं सकता। तैरे करने के अनुसार नहीं चल सकता। मैं स्वतंत्र हूँ। मन्ना मैं ऐसी स्त्री नहीं चाहता जो मुझ पर शासन करे। मैं चाहूँ तो अभी परकर मारकर तुझ समाप्त कर दूँ। (शोक से बात पीतने जगता है। स्त्री डर जाती है)

स्त्री—(अल-सी) पर मैं प्रेमा कहाँ चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ पर प्रेमा नहीं। मन्ना बता मैं क्या चाहती हूँ!

ब्रह्मा—प्रेम का शासन। क्रमलता का शासन। दैत्यो, लको मठ। श्रेय मत् करो। जीवन संभल बढ़ना पटना, इच्छा करना, पुखा करना ही नहीं है। वह शिव अश्विन का भी है। सुन्दरता, कुकुरता का भी है। कटुता मधुरता का भी है। उस मुत्ती बनाना भी जीवन का एक लक्ष्य है। वह अनेक अकेलें नहीं हो सकता। स्त्री और पुरुष दोनों के संयुक्त शासन का नाम संसार है। पुरुष बाहर की प्रत्येक वस्तु का शासक है। पशु, पक्षी, लता पत्थे, वृक्ष, पृथ्वी, पहाड़, समुद्र का शासक है। स्त्री पुरुष

के हृदय की शासक है। नारी का जीवन सौन्दर्य, दया, त्याग, कस्यथा, प्रेम है। उसके द्वारा वह पुरुष पर शासन करती है। उत्पत्ति उस जीवन को आगे बढ़ाने वाली बख्त है। वही 'उत्पत्ति' तुम दोनों को जाननी है।

स्त्री—(प्रसन्नता से उच्चलकर) ब्रह्मा, तू बका खतुर है। तूने मेरी बात कह ही। वही बात मैं कहना चाहती थी।

पुरुष—मैं स्वतंत्र हूँ। पर मुझे इस गाव की मृत्यु से मय हो गया है। मैं इस मृत्यु से कैसे छुटकारा पा सकता हूँ। इसका उपाय बता। ओ मृत्यु बकी भयंकर है। इसमें न तो कोई बात कर सकता है न सुन ही सकता है।

स्त्री—ब्रह्मा, मैं उत्पत्ति चाहती हूँ। मुझे मृत्यु से मय लगता है। तू बता सकता है यह मृत्यु है क्या ?

पुरुष—गामक, तू इतना भी नहीं जानती। मृत्यु कुछ भी नहीं, बस, मृत्यु है। यह जाने पर तो जाने की तरह। साधो इसकी रक्षा करो। यह फिर उठ सकता है। क्यों ब्रह्मा ?

ब्रह्मा—नहीं, अब यह नहीं उठ सकता। इसका शरीर में बोलने, सुननेवाली शक्ति, वह बख्त नहीं रही। एक दिन तुम दोनों भी इसी तरह शक्तिहीन पड़े रहोगे।

पुरुष—(मय की तरफ ध्यान से देखता रहता है) पर यह क्या, यह युगम्ब कौसी है ?

स्त्री - हाँ, युगम्ब (नाक बबखती है जैसे भायना चाहती हो)। यह इसी की युगम्ब है। ओ इस दूर कर, से जा। मैं मृत्यु से बचने का प्रयत्न करूँगी। क्या मरने पर मेरे शरीर से भी इसी प्रकार की युगम्ब उठेगी ? (मय होता है।)

पुरुष—ब्रह्मा, क्या मेरे शरीर से भी युगम्ब उठेगी ? (झपटता है।)

ब्रह्मा—इसका शरीर उठाने लगा है। इसका जीवन समाप्त होगया है। तुम लोग जीवन की रक्षा के लिए उस स्थिर रखने के लिए ही उत्पन्न हुए हो। साधो, मैं तुम्हें उत्पत्ति का उपाय बताऊँ। (बक के



तुम इस श्व को ले जाकर दूर चँड झाड़ो ।

स्त्री—(घातघर्ष से) क्या कहा जाव । एक और मया शब्द । मैं टर गई । मैं जीवन चाहती हूँ । क्या महा जीवित नहीं रह सकती । (नर बाप का हाव उठाकर ले जाता है) प्रज्ञा । मैं जीवन चाहती हूँ । मैं क्यों न जी सकूँगी, मुझ कौन मरेगा ? क्या कोई पहाक स न सिरे तब भी मर जायगा ? मैं जीवन चाहती हूँ प्रज्ञा ।

ब्रह्मा—मैंने तुम से पहले ही कहा है कि कोर भी प्राणी छटा जीवित नहीं रह सकता । परन्तु जीवन का क्रम बराबर बनाये रला जा सकता है । स्त्री में वह शक्ति है जिसके द्वारा यह जीवन को स्थिर रल सकती है । जब वह अपने ऐसी घनेक तन्तान चाहे वह पुष्य से या स्त्री उत्पन्न कर लेगी है तभी उसके जीवन का ध्येय पूरा हो जाता है ।

स्त्री—परन्तु इस शरीर से एक और प्राणी कैसे हो सकेगा । प्रनभव ।

ब्रह्मा—हाँ, शरीर से ही शरीर की उत्पत्ति होती है ।

स्त्री—(घातघर्ष से) कैसे ।

ब्रह्मा—इन्हे नारी भय की कोई बात नहीं । तुम जानती हो मैं क्या हूँ । मैंने ही तुम सेना को उत्पन्न किया है । तहसों बप तन करने के बाद मुझ में इतनी शक्ति हुई है कि मैं तुम सेना को उत्पन्न कर सका । मैं चाहता हूँ तुम दोनों मिलकर उठार उत्पन्न कर लको जिससे पुष्य धार स्त्री के नाश का क्रम न टूटे ।

स्त्री—परन्तु इस उत्पत्ति से मुझे क्या लाभ होगा । मैं नहीं चाहती कि ऐसा पुष्य हो जो मुझ पर शोच करता रहे और मुझ सेना स्त्री को जिसे बहकाकर बह ले जाये । नहीं प्रज्ञा, मैं उत्पत्ति नहीं चाहती ।

ब्रह्मा—ऐसा नहीं हो सकता । जब तुम दोनों निर्बल हो जाओगे तब तुम्हारी तन्तान तुम्हारी सेवा करेगी । पुष्य तुम्हारे सिध मोहन साधेगा, क्या तुम्हारी सहायता करेगी । इसके अतिरिक्त धार को स्थिर रलने के सिध यह आवश्यक है कि तुम दोनों मिलकर नवा जीवन उत्पन्न करो ।

स्त्री—दोनों मिलकर यह कैसे हो सकता है ? नहीं मैं अन्तान नहीं चाहती ।

(पुरुष का प्रवेश)

पुरुष—( बह्या को बातें करते देखकर ) फिर बही, हर समय बही 'उत्पत्ति' 'उत्पत्ति' ( श्लेष में आकर बह्या से ) मैं उत्पत्ति नहीं चाहता । उध दिन मी तुने कहा था, उत्पत्ति कर । (स्त्री से) ब्रेण, उत्पत्ति का नाम न लेना । (मारने जवठता है मारी पीछे हटती है ।)

स्त्री—(डरकर) क्या कर रहा है ? क्या कर रहा है ?

बह्या—(शौच स्वर में) ठहरो, क्या करते हो ?

पुरुष—(श्लेष से) तू मुझे दिखाई नहीं देता, नहीं तो (श्लेष से मुट्टी लाने बह्या के स्वर की ओर देखता है ।)

बह्या—(मदह्रास करके) मार देते क्या ? हा हा हा हा । हा हा हा हा ।

पुरुष—( श्लेष में भरा हुआ घसके हुंलने से मितमिसाकर ) हैं हैं यह क्या ? तू ( फिर श्लेष से) क्यों इसे ? क्या फर्क ?

बह्या—मैं 'बहकाता' हूँ इसे ? नहीं, मैं नहीं बहकाता, मैं साधन हूँ ।

स्त्री—'बहकाता' एक नया शब्द है । साधन कैसा ?

पुरुष—साधन, किस बात का साधन ?

बह्या—तुम दोनों को मिश्राने का ? तुम दोनों एक हो जाओ एक दूसरे से प्रेम करो तो ।

स्त्री—ठहर, ठहर, 'प्रेम' क्या ?

पुरुष—हाँ, यह तो नई बात है ।

बह्या—यदि तुम मिलकर रहो तो कोई भी तुमको डरा नहीं सकता । तुम संसार पर बिजय पा सकते हो ।

स्त्री (आश्चर्य से) अथात् ...

पुरुष—(श्लेष से) अथात् ?

बह्या—तुम जो चाहो कर सकते हो । तुम्हारी रक्तन क लामने यह

सिंह, टिगडनी, हाथी सब दूरे जायेंगे ।

बुध — (बोध से) पर-तु उत्तम मुझे क्या ? मेरा क्या साम है ? नहीं मैं ऐसे ही रहना चाहता हूँ । मुझ पर ही रहने दो । मैं इस जगह को नहीं चाहता । मैं किसी को नहीं चाहता । मैं किसी से नहीं डरता ।

ब्रह्मा — (धीरे धीरे से) तुमने वह गाय देनी तुम्हारी भी नहीं रखा होगी । उन समय तुम क्या करोगे ?

बुध — (पसी पसी से) कुछ नहीं, घर जाऊँगा ।

श्री — (जिह्वारे के डंग से) नहीं ऐसा न कह ऐसा न कह । हमें कोई उपाय सोचना पड़िए । धा इम मिलकर कोई उपाय सोचें । (टाक पकड़ती है) ब्रह्मा, हमें ठीक-ठीक बता । (नर की घोर देखती हुई) न जाने तुम्हें देखकर मुझे कैसा होता है ?

(इसी समय दोनों देखते हैं कि वह जूनाग एकदम बदला जा रहा है वहाँ बहुत से दूध बिन्दु पड़े हैं । नीली पीली धारें हुआ चलने लगी है । बहुत से बसु-वली वहाँ न जाने कहां से पा रहे हैं । बोंबे के बोंबे एक दूसरे से प्यार करने लगे हैं । जैसे सब कुछ बदल गया है । ज्वर लीके सभी जगह एक तरह की मस्तो-सी छा गई है । दोनों के शरीर में सिहरन होने लगी है । इतने जली घोर पशुओं के होते हुए भी न कोई किसी को मारता है न कोई किसी से कुछ कहता है । सब कुछ मलों बदल रहा है ।

बोध धिक्का तो भावों कहीं भी नहीं है । दोनों धारण से वह दुःख देखते रहते हैं । यह सब उनके लिए बिल्कुल नया है । ऐसा कभी न देखा था । अन्ध में नारी नर के शरीर पर हाथ रख देती है, नर भी नारी के शरीर पर हाथ रखता है, फिर देखते हैं धरनों की एक लम्बी कतार सीढ़ी जली धा रही है । बड़े सुन्दर, वे धाकर एक-दूसरे को प्यार करते हैं चुम्बते हैं बाटते हैं ।

बुध — (धारण से) यह क्या है धरे, क्या हो गया ? (श्री की घोर हँसकर) यह क्या हो रहा है । इतना सुन्दर ।

स्त्री—सुन्दर, सबमुख सुन्दर। ( फूल सूँफती हुई ) यह फूल, कितना मीठा !

पुरुष—‘सुगन्धित’ कहो।

स्त्री—हा, सुगन्धित। बड़ा सुन्दर। बड़ा सुगन्धित बह भरना किसमा । क्या कहीं ? आहा, ऐसा कमी न देखा था !

पुरुष—सबमुख। सबमुख।

(पुरुष प्रसन्नता से उठकर कूदने लगता है। कुत्ताबि मारता है। स्त्री उसको बैलकर पड़ते भीरे-भीरे मुह फाड़कर हवा खाती हुई झुमती है। फूल तोड़कर सूँफती है। पुरुष को उसे सुपाती है किन्तु पुरुष कुत्ताबि मयास्ता पड़ता है। घन्ट में उसे पकड़कर फूल लंपाती है। पुरुष जब पुरुष को सुगन्धित से प्रसन्न होता है। फिर हा हा हा हा करके छलाशों का काम बहालकर कूदने लगता है। स्त्री को श्राव से लेने के कारण उसकी पति भीनी हो जाती है। धीरे से दोनों मन्द गति से कूदने लगते हैं। मार्गों जगहें प्रसन्नता प्रकट करने का धीरे कोई साधन नहीं है। फिर बैठ जाते हैं। इसी समय हरिण हरिणी के जोड़ के साथ उनका एक बच्चा कूदता वहाँ पा जाता है।)

स्त्री—अरे ! यह क्या ? देखा तुने ?

पुरुष—(पत्ता हुआ) रहने दे मैं नहा बैलना चाहता। आ कूदो।

स्त्री—नहीं बैठ। देख, वह छोटे हरिण की उत्पत्ति शरीर से शरीर की है।

पुरुष—आश्चर्य !

स्त्री—न जाने यह क्या हो रहा है ! मेरे हृदय में भी जैसे कुछ हो रहा है। एक गुलगुली सी हो रही है। मेरे शरीर में कुछ हो रहा है।

पुरुष—मैं तो आनन्द में येसुप हुआ था रहा हूँ। ( दोनों एक-दूसरे के पास सरककर सरककर बैठ जाते हैं। ) यह तुने उठ मिलाहरी को देखा ?

स्त्री—(जती भाव से) हाँ, बेल तो रही है।



एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखे बैठे हैं और पच्चो का चीन्चर्य देख रहे हैं।)

स्त्री—(पुस्व की ओर ध्यान से देखकर) क्या देख रहा है!

पुस्व—(स्त्री का मुस झपकी ओर फेरकर) देख रहा हूँ क्या जीवन यहाँ से प्रारम्भ होता है!

## तीसरा दृश्य

(बहुत समय बाद)

[पहाड़ का बही भाग। अिसालाख के पत्थर काटकर कुछ ठीक कर दिये गये हैं। उसके प्राये का भाग पहले की अपेक्षा कुछ साफ सुधरा बीच पड़ता है। चौकी दूर पर हरिण का जोड़ा झींके बग्न किये रोमग्न कर रहा है। हरिखी का मुंह हरिण की पर्वन पर लटकता है। उसके पास ही एक छोटा-सा बच्चा घास बिछाकर उस पर लिटा दिया गया है। जो पड़ा-पड़ा घासमान की ओर देख रहा है। सब ओर सुनसान है। इतने में एक ओर से गुराने की आवाज सुनाई पड़ती है। हरिखी सिर उठाकर उस ओर झींके झड़कर देखने लगती है। हरिख उठकर कड़ा हो जाता है। बच्चा बते हो पड़ा है। कोसालस का उस पर केवल इतना प्रभाव पड़ा है कि बरा मुंह बनाकर रोने की शिष्या करता है और एकाम क्षीण स्वर निकाल भी देता है। इसी बीच एक तिहू खुपके से झरठकर हरिखी को बबोध लेता है। हरिख भाव जाता है। बूस पर लठे पधी बहूबहाने लगते हैं और ओर-ओर से कोए बोसने लगते हैं मानों जगहें भी भय हो रहा है। 'बीं बीं' 'काय काय' की उप्रता बढ़ती जाती है। एक ओर से सूजी लौकी के बने हुए बर्तन में पिछले दृश्य में दिखाई गई रबो पानी लिये बन्धी-बन्धी बत्ती धा रही है। उसका नामकरण हो गया है—धतकपा। तिहू को भूवी को बधाए हुए देखकर पानी का बर्तन वहीं रखकर चिन्ताती है और बच्चे की ओर झपटती है फिर रुक जाती है। फिर प्राये बढ़ती है। तिहू उस

बाल — (हेलना रहता है) ।

बाली—र तब त व म एक पुत्र को था रर है ।

पुत्र — (उसी काव में) हाँ वर त व रर है ।

बाली—(नर के पीर में निरुहर) वही वरन का गुण है । प्र र ।

। - म । । मुन एम व रर रर है । (बावव विमोर होकर नर के गगर वर हाव खेराती है । नर बने ही ध्याव में काव रहता है । वर एकाक वीरों एव पुनरे को देवने लगने है धानि गवावे देवने रहने है । वीरों उकर वरु हाँ काी है । वर भी एक पुनरे को देवने रहने है । एवम धापहार दा काता है)

बाली—एक धापव व र । वर वरी वन नि ममा धावे व वर । वना व री में ।

पुत्र—(उसी वर में) हाँ ।

बाली—बायो वम टाव । वरे ।

पुत्र—हाँ ।

बाली—वरा नर वार नारी व जीवन की वरा म । ररा है ।

पुत्र—उगी ही जीवन है ।

बाली—वरा उगनि ही जीवन है ।

पुत्र—हाँ उगनि ही जीवन है ।

बाली—नर वीर वामन का नरुव सररा ररा है ।

पुत्र—मैं भी त व पुत्र भूव गया है । वरुव, विम र वृषा व ररा है ।

बाली—जीवन । जीवन की मुष्टि ।

बाली—हाँ ।

(वीरे-वीरे प्रकाश होता है । देवने है मताधों वृत्तों में वृत्तों के गच्छे सररने लगे हैं । कुछ वृत्तों में वन भी निकल धाय है । वीरों बाली इतने प्रकाश है मनी मया संसार गई धावों से वेर रहे हों । वीरों के मत्तों पर धार्मिक प्रकाश की धामा दिररने लगे हैं । वीरों

एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखे बैठे हैं और पृथ्वी का सौन्दर्य देख रहे हैं।)

स्त्री—(पुरुष को घोर ध्यान से देखकर) क्या देख रहा है ?

पुरुष—(स्त्री का मुख धपनी घोर फेरकर) देख रहा हूँ, क्या जीवन यहाँ से प्रारम्भ होता है ?

## तीसरा दृश्य

(बहुत समय बाद)

[पहाड़ का बही भाग। गिनासख को पत्थर काटकर कुछ ठीक कर दिये गये हैं। उसके प्राये का भाग पहुँचे की प्रपेक्षा कुछ साफ सुधरा बीच पड़ता है। बौड़ी दूर पर हरिण का जोड़ा धीमे बग्न किये रोमन्ध कर रहा है। हरिणी का मँह हरिल की गर्दन पर लठका है। उसके पास ही एक छोटा-सा बग्घा घास बिछाकर उस पर लिटा दिया गया है। जो पड़ा-पड़ा घासमान की घोर देख रहा है। सब घोर मुनसान है। इतने में एक घोर से गुरगिने की घाबाज सुनाई पड़ती है। हरिणी सिर उठकर उस घोर धीमे फाड़कर देखने लगती है। हरिण उठकर अड़ा ही जाता है। बग्घा जैसे ही पड़ा है। कोलाहल का उस पर केवल इतना प्रभाव पड़ा है कि बरा मुँह बनाकर रोने की चेष्टा करता है और एकाध क्षीण स्वर निकाल भी देता है। इसी बीच एक सिंह चुपके से भ्रमरकर हरिणी को बबोध लेता है। हरिण भाग जाता है। बृज पर बैठे पक्षी बहुबहाने लगते हैं और जोर-जोर से कोए बोलने लगते हैं मानों उन्हें भी भय हो रहा है। 'बों बों', 'काय काय' की उग्रता बढ़ती जाती है। एक घोर से सुधी लौकी के बने हुए वर्तन में पिछले दृश्य में बिछाई गई स्त्री पानी नियम अस्वी-अस्वी जाती घा रही है। उसका नामकरल हो गया है—घतबपा। सिंह को मुयी को बबाए हुए देखकर पानी का वर्तन बही रखकर बिभ्रमाती है और बग्घे घोर भ्रमरती है फिर एक जाती है। फिर प्राये बढ़ती है।



रानी का घार देखकर वही पीरे पीरे गलीया है फिर बहाइया है। मुनी का ब्रह्म से बहाइया लड़ा हो जाता है। घोर झार झार से बहाइये लगता है। बहवा रोव लगता है। रानी बहवा को लहरम उगाकर घानी ल बिरहा गिनी है। बहु धपटा करती है हाथ उठाकर छि लिफ को भला लारे पर लिह करवात मुनी व व वर होनी ब्रह्म ब्रह्माइर बंडे जाता है। घोर त्रिहार से लेल-गा करमे लगता है। बायो रानी व बौधवार का उल पर कोई प्रमाव नगी बह रहा है। फिर लहरम मुनी की मद् से बहाये घलीटना हृषा घोभात हो जाता है। रानी बहवा को उनी आप से अर्हा बहवा घान वर परल लो रहा बा निगाहर अनु मर करके बिरहाये लगता है। अनु एक हाव में व वर का लखाना लीहा तिर घाना है। इन समय मन घान के करके बहन है आ लहड़ो के टहड़ो को घोरी घोरी लीहों में बघ हृष है। बाव बीत का घार लहरमे हृष, आ बोव म घान से बाव हिय वय है। रानी का भी घरी वेव है। ]

रबारंभुव मनु—(बह्य वर लीहा रने हृष घाना हृषा) क्या दे शन म्ना, क्या बात है ?

घनवरा—(ओ घभी लक बुद्ध-दुद्ध भवभीत घोर घोहाइर है) क्या घव भी नही देगा ?

रवा० मनु—(भूमि पर बजित की घार बड़ी घोर खंती हुई देखकर निबर भाव से) दगा लो रहा है। मिद गा कगभिर। ( , हैनकर) मगी को ल गया ?

घनवरा—उलके पर म रचना था। ( घांतों में घानू धरकर गुमन गुना कपी नही। मे बुद्ध भी व वर मगी ( रवान घाते ही ) ब रलझे ( व मे का) उठा ल जाता लर । गुम मुनते मही रा।

रवा० मनु—मैं बूर था। गोसाइल मुनकर ही लो बल पदा। घन मगी थी। लर कर्हो है।

घनवरा—(उली भाव से) मैं क्या जानूँ ?

रवा० मनु—व ठीक नही है। मैं दिन भर गाउ में ब्रह्म करूँ घार



हमी को घोर देलकर बरन पीरे बीरे लगाया है फिर बरानुना है।  
 मुगी को बरन से बरानर लगाया है। आया है। घोर आर कोर तो बरानुने  
 लगाया है। बराना रोन लगाया है। हमी बरन को एकरम उडाकर लगी  
 ल बिगडा रोनी है। बरन बराना करनी है। हाथ उडाकर दि निर हो बराना  
 गरे बर निरु बरानर बराने से वेर बर होनी बरने बरानर बीड आया है।  
 घोर निरार से लन-ला करने लगाया है। माना हमी के कोरार का  
 उर बर काई बरानर बराने करु रगा है। फिर एकरम मुगी का बरन से  
 बरानय घनीगा हुवा घोभन हो आया है। हमी बरन को उमी भाग से  
 जरी बराना घाम बर बरन लो रगा। बागिदारर बन मन करके बिगडाने  
 लगाया है। मन एक हाथ से ब बर का लरान-ला लीहा दिवे घाना है।  
 हम तबय बन घाम के करु बरन है आ लरगी के ररगों को दोरी  
 दोरी लीरों से बरने हुए ह। बाग बीर का घार लरगने हुए आ बीर  
 से घाम से बरान दिवे लरे है। हमी का भी घरी बैर है। ]

ब्रह्मर्षि बरन—(बरन पर लीहा रन हुए घाना हुवा) बरन रगा  
 रगा, बरन बरन र।  
 घानरगा—(ओ घभी लरु हुए हुए बरभीर घीर घोरापुर है) बरन  
 घय भी नरी रगा।

ब्रह्म० बरन—(बनि पर रबिद को बरान बरी घीर बंभी हुई  
 देगवर निरर भाव से) रगा रगा है। निरु य बर निरु। (लायन  
 देगवर) मगी को ल गगा।

लनरगा—उमरु रगे से ररना ल। (घानो म घानु घरकर)  
 तुमन मुना बरा नरी। मै मुगु भी न बर लडा (घ्यान घाने ही) परि  
 हमरो (ब री घी) उडा ल आता लर। तुम मुनी नरी री।  
 बरा मनु—म बुर या। बरानर ल मुनर री लर मन रगा। घरु री  
 मगी भी लर बरु री।

घानरगा—(उमी भाव से) मै बरा आ ल।  
 ब्रह्म० बरु—पर ठीक नरी दे। मै दिन गर रान मे काम कर घार

वे सब घूमते रहें। यह तो अच्छा नहीं है, शतरूपा।

शतरूपा—(कुछ भी नहीं बोलती)।

स्वा० मनु—यह ठीक नहीं है। इनको उद्योग करना चाहिए। अरे, तुम अभी तक बरी दुर्भ हो। इतने की क्या बात है? जो होगया सो ठीक है।

— शतरूपा—डरूँ क्यों न। यह प्यारी मुगी आज मार डाली गई। सिंह उसको उठाकर ले गया। क्या यह डर की बात नहीं है? मेरा मन कर्षित रहा है। मनु, मैं देखती हूँ, आज सिंह उसे ले गया, कल को यदि मेरे बच्चों को उठाकर ले गया तब मैं क्या करूँगी ?

स्वा० मनु—क्या करना है यह मैं नहीं जानता पर तुम इतना भय क्यों करती हो ? अब वैसा होगा उस दंष्ट्रा बासगा।

शतरूपा—नहीं मनु, यों न चलेगा। हम इस तरह ठीक नहीं रह सकते। तुम कर्म प्रवर्धन प्रवर्धन करो। मेरा मन न आगे बेसा हो रहा है। मैं तो कुछ किया है यह इसलिए नहीं कि उन्हें कोई मार डालें, उठा ले जाय। तुम्हें कुछ करना होगा मनु ?

स्वा० मनु—(जो किसी चिन्ता में एक घोर को ध्यान से देख रहा है) हैं।

शतरूपा—(मनु के कन्ध पर हाथ रखकर) बोलो, तुम इसका प्रवर्धन करोगे ?

स्वा० मनु—(उत्ती ध्यान में) हाँ मैं उस सिंह को मार डालूँगा। (शतरूपा की घोर बेचकर) मैं उसे मार डालूँगा त्रिभे।

शतरूपा—(सोचती हुई) तुम क्या सोच रहे हो यह मनु, तुम क्या सोचा करते हो ? मैं देखती हूँ तुम कभी-कभी कुछ उदास हो जाते हो। कभी अपने आप हैंस भी जागते हो। न उठी तरह बोलते हो। तुम्हें क्या हो गया ?

स्वा० मनु—मैं सोचता हूँ यह क्या हो रहा है ? क्या होता था रहा है ? मैं पहले स बहुत जान गया हूँ। न माहूम इस संसार में क्यों बहुत

हमने । हमने जो मन्त्र उच्चारित करने पर यह अच्युत ब्रह्म  
 प्रकाश हो गया है । हमने जो मन्त्र उच्चारित करने पर हमारे मुख  
 पर प्रकाश हुआ है ।

गणेश—तुम लोग हमें मन्त्र उच्चारित करने में मदद करो।  
 मैं भी मन्त्र उच्चारित करने में मदद करने के लिए आया हूँ।  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)

गणेश—तब हमने जो मन्त्र उच्चारित किया है, उसे  
 तुम सब लोग भी उच्चारित करो। (तब वे सब लोग मिलकर  
 मन्त्र उच्चारित करने लगे।)  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)

गणेश—(तोचकर) तुम लोग जो मन्त्र उच्चारित कर रहे  
 हैं, उसे मैं भी उच्चारित कर रहा हूँ। (तब वे सब लोग  
 मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)

गणेश—(तोचकर) तुम लोग जो मन्त्र उच्चारित कर रहे  
 हैं, उसे मैं भी उच्चारित कर रहा हूँ। (तब वे सब लोग  
 मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)  
 (तब वे सब लोग मिलकर मन्त्र उच्चारित करने लगे।)

मैं यह सब क्यों कर रहा हूँ ? इन सब जो जीवन मिला है उसका पीछे क्या इतना कम्पन है। भूख, प्यास नींद न जाने क्या क्या ! यह सब क्या है ? उस दिन तुम नहीं पा करने पर नहान गए था या न जाने कहाँ ? मैंने देखा एक खमरी गाय बोमार-मी झाकर उस सामने क हच के नीचे पड़ी है। बहुत खुशी है, मुँह स कग निकल रहा है। आँसु बन्द हैं और एक बूखी गाय ने झाकर उसको मू पा, उसने अपना सिर रगका। एक और गाय था। उस आठ दलकर सिर रगकन वाली गाय न उससे लड़ना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ तक कि बोना लड़ने-लड़ते लोह-लुहान हो गई। यही दलकर मैंने सोचा कि जहाँ बहुत हात है वहाँ लड़ाक होती है। उन्हें किम बात का कमा थी, फिर ना गायें आपस म लड़ मरीं। तब स मझे चिन्ता है और मैं मानता हूँ कि कहा एक दिन हम भी ऐसा न देखना पड़े ?

सतकपा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। य नून इ और हम पुत्रि मान्। हम बोलत हैं बं बोल नहीं सकत। हमने अब स पालना सीखा है तब स ऐसा लगता है माना कोह बात हम कहन को नहीं रही है। हृदय में जो बात उठता है यह धुर्य की तरह बाहर निकल आता है। कोन बात ही नहीं है। केपल एक ही बात है और वह है प्रेम। न जान क्यों बरी मझे बहुत आस्था लगता है। कमी कमा मर हृदय म आँसु-मी उठती है। मैं अपमं को सीमाल नहीं पाती। उस समय मुक तुम्हारी पाद आती है। इन बच्चों की पाद आती है। उस मुगी की (जो प्रब सिद्ध द्वारा मार डाली गई है) पाद आती है। उस गाय की पाद आता है। मैं उन्हें दोह-दोहकर खूम लैती हूँ। और ( एक मन्व्य का प्रवेश। परचर का एक छाँडा कप्ये पर रस हुए जोप ले भीहँ लगी हुई। ऊपर सरीर पर नून को घाल छोड़े हुए। कटि भाग में घाल लपेटे हुए। धरीर में जोर के बाए धरीर बरिद ले सता हुआ। घाते ही आँगन में छाँडा जोर से पटककर पड़ा हो जाता है। बोनो हौरान-से उसकी ओर देखते रह जाते ह। )

जान दे। जिनना में लायता ह उनना मऊ तब छपिऊ छपिऊ ज्यन पकटा दे। मैं लोबता हू इत। जान का बरा हांगा। यह क्या हमारे मुग क लिए होगा।

शातकथा—गुम अप्य इतना मायते हो। मैं तो बुद्ध भी नहीं सोचती। मैं तो सोच भी नहीं पाती (मोह में लिये बकबे को प्यार से बोल कर) मैं इस छो दगनी रहती हूँ। पध-नों को देगलो रहती हूँ। मुझ देगा दलना-देखते रहना मसा सगता है। मैं पारती हूँ छब गूब ईमें, गूब पूमें। प्यार करे एक दूसरे को। प्यार हमो तरह छ होला रहे। गुम लायता छोफ हो। उस मगी की मुभ काह आ रही है। (घाँते पोंछ जाती है)।

स्वा० मनु—नहीं शतरूपा यह सब ऐसा हो नहीं रहेगा। मैं दलता हूँ वे बालक बड़े हो गये ह। आत्म में लज रह दे। एक गुग को मार रहे हैं। बहुत बड़ गप दे। इन्दे जेठ कोइ रोऊनेवासा नहीं दे। लज रह दे। कमी-कमी देखता हूँ हम बूदे हो गप दे। हमारे हाथ पेरा में पल नहीं रहा है। हमारी तब शक्ति चौख हो गर दे। लकी हमे ठग्न नहीं दखो। बासु हमे पुरी लगती है। गर्मी हमे लतातो है। पपा के पानी में हम भीग रहे हैं। परगु ये लजक लज रहे दे। मरीपकी क लिए। कहीं छ बहुत-सी शिखा आ गर दे। बब, ठगरी क पीछे लजार्द हो रही है। मेरे पुछ पासक, ओ उन समय गूब बड़े हो गये हैं, मरे पड़े हैं। यह देना बीपन है। बब, मैं नहीं लोबता रहता हूँ।

शातकथा—(लोचकर) गुम जेगा लोपते हो देता नहीं हो लजगा। मेरे बच्चे आपस में लड़ेंगे, मैं तो इसकी बहुरना भी नहीं कर छच्छी। बे कसो लड़ेंगे, उन्हें किस बात की कमी है। वे कमी लज नहीं लजते। हमें जो बह बीपन मिशा है, बह ऐसी बातें सोचने के लिए नहीं है। हम अभी बहुत दिन तक जियेंगे।

स्वा० मनु—कदाचित, कदाचित ऐसा न हो, पर मुझे जेते बह छब होला बील पकटा है। सेठ निराठे-निराठे में बब पक ला ज्यता हूँ तब मौलौ काकाण के पीछे जयबी-ठगरी बासु में मुझे देला सगता है मामा

मैं यह सब क्यों कर रहा हूँ ? हर्ने यह जो जीवन मिला है उसके पीछे क्या इतना भ्रम है । भूल, प्यास, नींद न जाने क्या-क्या ! यह सब क्या है ? उस दिन शुभ नहीं थी, मरने पर नहाने गई थी या न जाने क्यों ? मैंने देखा एक बम्सी गाय बीमार-सी आकर उस सामने के कुच के नीचे पड़ी है । बहुत दुखी है, मुँह से मूत्रग निकल रहा है । अल्ले बन्द है और एक वृद्धी गाय ने आकर उसके सूँघा, उसने अपना सिर रगड़ा । एक और गाय आई । उस आठ देखकर सिर रगड़ने वाली गाय ने उससे हाकना प्रारम्भ कर दिया । यहाँ तक कि दोनों हाकते-हाकते लोह-सुहान हो गई । वही देखकर मैंने सोचा कि जहाँ बहुत होते हैं वहाँ लड़ाई होती है । उन्हें किस बात की कमी थी, फिर भी गावें आपस में लड़ मरीं । तब से मुझे चिन्ता है और मैं सोचता हूँ कि क्या एक दिन हमें भी ऐसा न देखना पड़े ?

असह्य—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । वे मूर्ख हैं और हम बुद्धिमान् । हम बोलते हैं वे बोल नहीं सकते । हमने जब से बोलना सीखा है तब से ऐसा सगता है मानों कोद पाठ हमें करने को नहीं रही है । हृदय में जो बात उठती है वह धुँएँ की तरह बाहर निकल आती है । कोई बात ही नहीं है । कपल एक ही बात है और वह है प्रेम । न जाने क्यों वही मझे बहुत अप्पदा लागता है । कमी कमी मेरे हृदय में घाँधी-सी उठती है । मैं अपने को संभाल नहीं पाती । उस समय मुझे दुश्चारी याद आती है । इन बच्चों की याद आती है । उस मृगी की (जो धन सिंह द्वारा मार डाली गई है) याद आती है । उस गाय की याद आती है । मैं उन्हें दौड़-दौड़कर भूम लेती हूँ । और ( एक बनव्य का प्रवेश । पत्थर का एक खाँडा कन्धे पर रख हुए जोर से नीचे लगी हुईं । ऊपर सरीर पर मूत्र को जाल घोंड़े हुए । कटि-भाग में घाल लपेटे हुए । शरीर में जोर के साथ शरीर खिच ले घना हुआ । घाँसे ही घाँस में खाँडा जोर से पटककर खाँडा हो जाता है । दोनों हीरान-से उसकी घोर देखते रह जाते हैं । )



उत्तमवार—तो मैं आन लड़क का समझता हूँ। मैं अधिक  
तदन नहीं कर सकता। बहुत हो गए। (घोष से हृषिका है।)

उत्तरवा—(घावे बड़बड़) क्या हुआ पुत्र क्या हुआ? प्रियजन  
कहाँ है? उस पुत्र कहीं लोक आय? खर, तेर शरीर में धर के ये पन्ने  
केस? इ यह पाठ। यह क्या बात है उलानाद?

स्वा० मनु—(उर्वला के आश से) लड़क पड़े हाथ। मैं बहुत दिनों से  
बही था हेल रहा हूँ। इहाँलिए मैं गन गान, निराले, अनाज कारने  
साप, करत पकड़ जाता हूँ। इन लड़का का बुद्ध लभता ही नहीं।

उत्तमवार—(जो सभी तक हृषि रहा था)। गतात्री आर ओर  
नियम बनाइये। मैं इन तरह नहीं रह सकता। घाव उमन नहीं समया  
पर हाथ बाल्य आर मुझ से कुछ करने पर उलान हो गया। मैं बहुत  
रोका आर आदा कि यह मेरी समया न हुए। जब मैंन समय को मारा  
तब उलाना क्या अधिकार था। उन पर यह अपना अधिकार किस तरह  
कर सकता है?

उत्तरवा—प्रियजन हैं कहीं? यह क्या है। तुम्हें उत पर बोध न  
करना चाहिए वेदा।

उत्तमवार—क्या होने से क्या? क्या उस वृत्त की बन्धु पर अधिकार  
करना चाहिए था। मैं अब इस पर म न रह सकूँगा। वा तो वही पहाँ  
रहेगा या फिर मैं। (प्रियजन का भी उलाने से प्रवेय)।

प्रियजन—तुम बहिर पर मे मेरे साथ नहीं रह सकते हो मैं तुम्हारे  
साथ कब रहना चाहता हूँ? तुमन मेरा कुछ भी ध्यान नहीं किया। मैंने  
निश्चय किया है, मैं तुम्हारी तुरंत तुरंत मगया को प्रदक्ष न करूँगा।

स्वा० मनु—देखो मैं मगया तुम्हारी ह न प्रियजन की। यह तो  
मनुष्य की एक बस्तु है जिस पर लड़का समान अधिकार है। लड़का पाप है।

उत्तरवा—पाप, यह नका शब्द है। यह पाप केस हो सकता है मनु।

उत्तमवार—पाप, पुत्र में नहीं ध्यतता। मैं तो एक बात जानता  
जीवन। जीवम जिस तरह से प्रसन्न हो, मन की इच्छा जिस तरह परी

हो, वही करना चाहिए।

सतकथा—बाप, पुण्य अनोखे शब्द हैं। तुमने वह 'पुण्य' शब्द कहीं से जाना ?

उत्तमपाद—कहीं से भी नहीं। जैसे ही मुँह से निकल गया। मैं तो इतना जानता हूँ कि हम मनुष्य हैं। हमारा प्रकृति की प्रत्येक बस्तु पर अधिकार है।

प्रियव्रत—ठीक है जैसे तुम्हारा अधिकार है, जैसे ही वृद्धों का भी है। इस अधिकार का निर्वाण कैसे हो फिर ?

उत्तमपाद—मुझ से। बल-प्रदर्शन द्वारा। जो बली होगा वही जीतेगा। तमी का अधिकार रह सकता है।

सतकथा—यह तो ठीक है। वह सिंह बलवान या इलीस्त्रिए हरिबी को पकड़कर ले गया। यदि मैं उससे बलवान होती तो उसे मारकर मगा सकती थी। उससे अपनी प्यारी मृगी को छीन सकती थी। परंतु वह बड़ा अश्ला मालूम होता है कि तुम लोग आपस में लड़ो। मैं डरती हूँ। तुम सड़ो मत। मेरे पास जो कुल्ल है तुम से तो पर लड़ो मत। और भी तो मृगया है जो एक तो नहीं जिसके लिए तुम्हें लड़ने की आवश्यकता हो।

उत्तमपाद—यह नहीं हो सकता मों। यदि थकी बात हो तो हमारा बली होगा अर्थ है। हम पुरा हैं। पुरुष का काम बली होना है। बल द्वारा सब पर शासन करना है। जो शासन नहीं कर सकते वे निबल हैं। उन्हें चाहिए कि बली की प्राप्ति स्वीकार करें।

स्वा० मनु—आपस में लड़ना, मारना ही तो बल प्रदर्शन नहीं है। वृद्धों की सहायता करना भी बल का काम है। मैंन मरमे, मारमे, मुझ करने के लिए तुमको नहीं उत्सन्न किया है। जीवन का लक्ष्य जीवन को बढ़ाना है मारना नहीं। आग से आग पैदा होती है, हृदय से हृदय और पशु से पशु। तुम लड़कर जीवन को नहीं बढ़ा सकते।

उत्तमपाद—यह ठीक है। हम अब उत्सन्न हुए हैं तब हम

अपने साग आबरूपता लेकर ही उतारन हुए हैं—भूग, प्यास, नींद, इत्यादि। यदि इनमें किसी प्रकार का बिध्न होगा तो मनुष्य ठमसो प्रान्त करन के लिए प्रयत्न करेगा। जो बस्तु उत मग में बिध्न हन म गड़ी होगी उत हबाकर नन कर मसना होगा। उनी का नाम मुड है। जेत जीवन का स्वभाव इत्यादि उनी प्रकार मुड भी जीवन का स्वभाव है।

रवा मन—रगनु जीवन से मग भी है। मुझे मुड की आबरूपकता नहीं हुर। अपने मन ओतपर धनाक उतमन करता है। मुझारे मुझारे मगरे का मुझारा हन मी का पट कसता है। मुझे तो कही भी मुड की आबरूपकता नहीं हुर। मुड का मी वैसाविक गति बहना है। यह मनुष्य का नहीं पशुओं का काम है।

उत्तानपाद—गितासी, मुम ककेने हो। यदि इमी गेठ के ओर अविधारी हो गये अथवा मुझारे मरन के बाद उनी गेठ के सम्भान के अनुसार विभाग होंगे, उत समय ओ वस्तु मुझारे लिए बहुत सी बही सम्भान के निबाह के लिए ओझे हो आयगी। फिर निबाह के लिए बदन बुद्ध तो करना ही होगा। या तो किसी की भूमि लेकर दबानी होगी या फिर भूगों मना होगा। उत अबरुपा में जीवन को रिवर रगन के लिए एक ही बात है—मुड।

विषयक—मैं ऐला जीवन नहीं चाहता। मैं मुड से पृथा करता हूँ। मैंने बड़े मगरे होने के कारण मुयगा पर अविधार करना चाह तो मुम बुद्ध करमे पर उताक हो गये। इसी से मैंने कहा, मैं मुझारी मृगवा को न करूँगा। मुम समझते हो बुद्ध ही जीवन है, पर बात ऐसी नहीं है। यदि इती प्रकार मुड होता रहे वा लंघार में एक भी मनुष्य अविधित न रहेगा। सन एक वृत्ते को मार हलेंगे।

उत्तानपाद—पार हलेंगे तो मार हलें। इसीलिए मैं करता हूँ सध बसवान बना।

अवस्था—मुम लोग न जाने इतनी बातें क्यों सं सीक मये हो। क्या

सुखि का यही अर्थ है कि लोग आपस में सक् मरें ! नहीं, जीवन का वह उद्देश्य कदापि नहीं है। क्या ने ऐसा कमी नहीं क्या। जैसे मैं और मनु परस्पर प्रेम से रहते हैं वैसे ही तुम भी प्रेम से रह सकते हो। एक दूसरे की मूक, प्यास, नींद का ध्यान रखो। दूसरे को सुली रखने का ध्यान रखो तो दूसरा तुम्हें सुली रखेगा। अपनी जान बेकर तुम्हें सुली रखेगा। मैं कह नहीं पाती, मनु की आवश्यकता तनिक भी सुराब होते ही किसी बेचैन हो जाती है। ऐसा लगता है क्या करूं ? यदि मैं मनु के लिए प्राण बेकर भी ठहूं तुम्हो रख सकूं तो उतमें मुझे तनिक भी संश्लेष न होगा। तुम्हें नहीं मालूम मैंने तुम्हारे लिए कितना कष्ट सहा है। स्वयं कर्म बार हफ्ता न होते मी, शरीर स्वस्थ न होते मी सर्दी में अपनी झाल उतारकर तुम्हें गर्म रखने का प्रयत्न किया है। गर्मी में धूप से बचाकर छाया में रखा है। स्वयं न खाकर तुम्हें खिलाया है। परन्तु मुझे इसमें आनन्द मिलता रहा है। मैं तो इसको ही जीवन समझती हूँ।

सतावपाह—तो मेरा तुम्हारा निर्वाह नहीं हो सकता। मैं इसे कायरता, मीठता समझता हूँ। मैं चाहता हूँ बलवान बन्दू। सब पर शासन करू। मैं जाता हूँ, जैसे मरीचि गया है वैसे ही मैं भी अपना नया स्थान बनाऊँगा और देखूँगा कि इस जीवन में मैं क्या कर सकता हूँ ? अच्छा मों, जाता हूँ। (एकदम जाड़ा उठाकर चला जाता है।)

शतक्या—पला गया। (बौड़ती हुई) बेरा, मुन तो। घरे मुन (पुत्र बढ़ता चला जाता है। यहाँ तक कि वह धींकों से घोभन हो जाता है। शतक्या पुकारकर बरु जाती है। फिर लोटकर गिर पड़ती है। मनु उसके पास जाकर उसे उठाते हैं। वह धींकों फड़कर बठि ली घोर हैपती रहती है। फिर एकदम रोने लपती है। मनु समझते हैं। पर वह रोती ही जाती है।)

स्वा मन—तुम स्वयं रोती हो शतक्या, जो पला गया तो पला

अपने साथ आवश्यकता लेकर ही उतारन हुए हैं—भूख, प्यास, नींद, इच्छा। यदि इनमें किसी प्रकार का विघ्न होगा तो मनुष्य उतारो प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करेगा। जो वस्तु उतार मार्ग में विघ्न रूप से लक्ष्मी होगी, उसे दबाकर नष्ट कर डालना होगा। उता का नाम मुद्द है। जैसे जीवन का स्वभाव इच्छा है उन्हीं प्रकार मुद्द भी जीवन का स्वभाव है।

स्वा० मनु—रखनु जीवन तो मेरा भी है। मुझे मुद्द की आवश्यकता नहीं हुई। अपने पैत जोतकर अपना उतारन करता हूँ। तुम्हारा तुम्हारे भाई का, तुम्हारी इत सी का पर पालता हूँ। मुझे तो कहीं भी मुद्द की आवश्यकता नहीं हुई। मुद्द को मैं वैशानिक पृथि कहता हूँ। वह मनुष्य का नहीं पशुओं का काम है।

उत्साहवाद—मिस्त्रीजी तुम झकेले हो। यदि इसी पैत के और अधिकारी हो गये अर्थात् तुम्हारे मरने के बाद उही पैत के उत्साह के अनुसार विभाग होंगे उत समय जो वस्तु तुम्हारे लिए बहुत ही बड़ी उत्साह के निर्वाह के लिए छोड़ी हो जायगी। फिर निवार के लिए कुद्द-न कुद्द तो करमा ही होगा। या तो किसी की भूमि लेकर दखानी होगी या फिर भूतों मरना होगा। उत अवस्था में जीवन को दिबर रखने के लिए एक ही बात है—मुद्द।

वियहृत—मैं ऐसा जीवन नहीं चाहता। मैं मुद्द से पृथा करता हूँ। मैंने बड़े मार होने के कारण मृगया पर अधिकार करना चाहा तो तुम मुद्द करने पर उतारू हो गये। इसी से मैंने कहा, मैं तुम्हारी मृगया को न छूँगा। तुम समझते हो मुद्द ही जीवन है, पर बात ऐसी नहीं है। यदि इसी प्रकार मुद्द होता रहे तो संसार में एक भी मनुष्य जीवित न रहेगा। तब एक दूसरे को मार डालेंगे।

उत्साहवाद—भार डालेंगे तो मार डालें। इसीलिए मैं कहता हूँ सदा बसवान बनो।

वातव्या—तुम लोग न जाने इतनी बातें कहाँ से सीख गये हो। क्या

सृष्टि का वही अर्थ है कि लोग आपस में झड़ मरें ? नहीं, जीवन का यह उद्देश्य कदापि नहीं है। मरणा ने ऐसा कमी नहीं कहा। जैसे मैं और मनु परस्पर प्रेम से रहते हैं वैसे ही तुम भी प्रेम से रह सकते हो। एक दूसरे की भूल, प्यास, नींद का ध्यान रखो। दूसरे को सुली रखने का ध्यान रखो तो दूसरा तुम्हें सुली रखेगा। अपनी जान देकर तुम्हें सुली रखेगा। मैं क्या नहीं पाती, मनु की आवश्यकता तनिक भी कुराब होते ही किसी केनैन हो जाती है। ऐसा लगता है क्या नहीं ? यदि मैं मनु के लिए प्राण देकर भी उन्हें सुली रख सकूँ तो उसमें मुझे तनिक भी सन्तोष न होगा। तुम्हें नहीं मालूम मैंने तुम्हारे लिए किसना कुछ सहा है। स्वयं कई बार इच्छा न होते भी, शरीर स्वरय न होते भी सर्षी में अपनी क्षाता उतारकर तुम्हें गर्म रखने का प्रयत्न किया है। गर्मी में भूष से बचाकर ढाया में रखा है। स्वयं न खाकर तुम्हें खिलाया है। परन्तु मुझे इतमें आनन्द मिलता रहा है। मैं तो इसको ही जीवन समझती हूँ।

सतानसार—तो मेरा तुम्हारा निर्बाह नहीं हो सकता। मैं इसे काबरता, मीठता समझता हूँ। मैं चाहता हूँ बसवान बनूँ। सब पर शासन करूँ। मैं जाता हूँ, जैसे मीथि गया है वैसे ही मैं भी अपना गया स्थान बनाऊँगा और देखूँगा कि इस जीवन में मैं क्या कर सकता हूँ ? अन्धका मी, जाता हूँ। (एकदम जाड़ा पठकर बसा जाता है।)

घतक्या—बसा गया। (बीड़ती हुई) बेडा, सुन तो। अरे सुन (पुत्र बढ़ता बसा जाता है। यहाँ तक कि वह घाँवों से घीभल हो जाता है। घतक्या, पुकारकर बरु जाती है। फिर मीठकर गिर पड़ती है। मनु उसके पास आकर उसे उठाते हैं। वह घाँवों फाड़कर पति की घोर बेसती रहती है। फिर एकदम रोने लगती है। मनु समझते हैं। पर वह रोती ही जाती है।)

स्वा मनु—तुम व्यर्थ रोती हो शतरुपा, जो बसा गया तो

गया। जब वह स्वयं तुम्हारे पाठ नहीं रहना चाहता तो स्वयं की जिम्मा से भाग।

रातलया—तो क्या मैंने सखि इसीलिए उग्रमन की थी कि सम्मान विता का अनादर करके माता की अश्रुता करके, बड़े भार्गव का तिरस्कार करके ब्रह्मा आय एक ब्रह्मा गया मैंने समझ जाने हो और तो है। परन्तु यह भी एक-एक करके सब न जाने कहाँ चले जाते हैं। हाथ मनु, मैं क्या करूँ ? (रोती है)

प्रियवत—माता भवराश्री मठ, हम सब तुम्हारी सेवा करेंगे। यह मेरा छोटा भाई जो है।

रातलया—बेच तुम नहीं जानते मेरा हृदय केसा हो रहा है। मनु, मैं सभी पृथ्वी को एक-सा प्यार करती हूँ। मुझे बका बह हो रहा है। मनु मैं क्या करूँ ? क्या सखि तनी निश्चय है, क्या उरगति का पही अर्थ है। हाथ ब्रह्मा मे मुझे प्येला दिया।

स्वा० मनु—तुमने काँटों को फूल समझा है इसलिये तुम्हें यह पद हो रहा है, जो अन्न हम खाते हैं उसका कुछ अंश शरीर का रस बनता है, अन्न बनता है यहाँ तक कि शरीर का परम रूप बल बन जाता है, परन्तु उसके साथ ही कुछ माग पैठा होता है जिसे हम बाहर निकाल कर फेंक देते हैं। इसी तरह जो बुरा है वह अपने आप निकल गया।

प्रत्यक्षा—मनु, मुझे तुम्हारी बातों से कोई संतोष नहीं होता। मैं देखती हूँ मेरा सारा जीवन अर्थ हो रहा है।

स्वा० मनु—स्वयं, अर्थ होनें संसार में कुछ भी नहीं है जो हमारे लिये, जीवन के लिये उपयोगी है वह अर्थ। परन्तु देखना यह है, क्या इससे ही हमें इतने बड़े जीवन को नाप लेना चाहिए। यह तो एक हाथ से समुद्र को नाप लेने के बराबर है।

रातलया—मैं कुछ भी नहीं जानती मनु। मैं इस महान् और विशाल समुद्र से बड़े अपने हृदय में अन्धता, प्रेम लेकर आई हूँ। मैं इससे अपनी समूर्ण तन्तान को भिगो देना चाहती थी पर देखती हूँ मेरा

प्रयत्न निष्फल होता जा रहा है। निपल हो रहा है मनु।

स्वा० मनु—मैं मी बही देख रहा हूँ कि ब्रह्मा क्या बताया हुआ उपाय निर्भीक है। ठकमें प्रयास नहीं है, प्रेम नहीं है, सहायनृति नहीं है, श्रम है। सम्यक् निष्कल।

दातव्या—उत्तानपाद बला गया, मनु उछे लौटघो। मैं उसके किना ओचित नहीं रह सकती। हाव, मैं कैसे जीवित रहूँगी। ( देखती है प्रियवत उद्विग्न चित्त होकर जाने की तैयारी कर रहा है। )

स्वा० मनु—कहाँ चले प्रियवत।

दातव्या—कहाँ जा रहे हो मनु।

प्रियवत—जा रहा हूँ माता जी। क्यों आऊँगा कुछ नहीं मालूम। तुम्हारी बात सुनकर सोच रहा हूँ जीवन कुछ भी नहीं है। मैं तो खान करना चाहता हूँ। मैं खानना चाहता हूँ ब्रह्मा कौन है। क्यों बार-बार वह आकर तुम्हें कुछ करने को कह जाता है। मैं प्रयत्न म बैठकर सोचना चाहता हूँ। मैं इस सम्यक् चित्र को खानना चाहता हूँ। यह ब्रह्मायह किसने बनाया, यह संसार किसने बनाया, क्यों बनाया। मुझे क्यों बनाया। यह जीवन क्या है। मरण क्या है। यह सोचम जाता कौन है। मैं क्या हूँ। मे कोई इच्छा नहीं है। मैं इच्छा होते ही उस इच्छा से निष्कल यूँगा। उस दिन हरिश्च श्री मृत्यु क्यों हुई। क्यों न मैं मृत्यु को जीत लूँ। और इस जीवन से क्या लाभ है। यही जानने के लिए मरे स्वास छुटकर रहे हैं। पिता। मैं खानना चाहता हूँ, मुक्त ब्रह्मा हीजिये।

दातव्या—बेटा, क्या तुम्हें इस तरह हम लोगों को निराश्वर छोड़ कर जाना चाहिये।

[ भाकूली के साथ बचि का प्रवेश ]

भाकूली—(घाते ही) माताजी, मैं जाना चाहती हूँ, मुझे ब्रह्मा हीजिये। मैं इनके साथ रहना चाहती हूँ। न जाने क्यों ये मुक्त बहुत अच्छे लगते हैं। मैं इनके साथ रहना चाहता हूँ। ( बचि के कले में



हाथ बांधकर ) तुम मुझे बहुत धिप लागते हो । तुम्हारा नाम क्या है ?  
 बधि—बधि ! आओ हम दोनों पहले न बच ।

आकृती—बधि, कितना सुन्दर नाम है । मेरी मी यरी इच्छा है मैं  
 कि मैं बधि के साथ रहूँ । तुम मुझे मारोग तो नहीं । (घोले मटककर)  
 हाँ, देखो मुझे मारना मत ।

स्वा० मनु—तुम कितक सक्के हो बधि ?

बधि—मरीचि का पुत्र हूँ मैं । मैं बहुत दिनों से भूम रहा हूँ ।  
 एकल निर्जन में भूमते भूमते मेरा जी ठकठा गया । बस आशानक  
 तुम्हारी यह कन्या मुझे उत नदी के किनारे मिला गर् । मुझ पर बहुत  
 सुन्दर लगी । मैंने कहा तुम मेरे साथ रहो । हम लोग नदी, समुद्र,  
 झरनों के किनारे घूमेंगे । पत्तों की गुग्गुलु जब हमारे जीवन को प्रमत्त  
 कर देगी तब हम दोनों प्रसन्नता बिखेरते हुए । तम्बा की लाली में जब  
 हम दोनों का हृदय नाच उठेगा तब हम

स्वा० मनु—घोड़ो, तुम बहुत बोलते जा रहे हो । ठहरो ! पहले  
 यह बताओ तुम इतकी ठीक-ठीक रक्षा कर सकोगे ?

बधि—इतने दिनों एकल-बास करके करते मेरा जी उब गया ।  
 कोई बोलन वाला नहीं मिला । इसलिए पाहता हूँ तूब बोलूँ । जी  
 मरकर बोलूँ । बोलता रहूँ । आज तुम मुझे मिले हो तो क्या बोलूँ मी  
 न ! मैं तुम्हारी कन्या को बहुत अच्छी तरह रक्षूँगा । इतनी अच्छी  
 तरह कितने ठीक तरह से मैं स्वयं रक्षूँगा ! हाँ तो मैं क्या कर रहा  
 या आकृती, मैं कर रहा था—तम्बा की लाली में जब हमारा हृदय  
 नाच उठेगा तब हम प्रसन्नता के प्रकाश स उठे और भी छाल बना  
 देंगे ! कोकिला के स्वर में स्वर मिलाकर जब मेरी प्रिया आकृती गायगी  
 तब हृदय के आनन्द से उठका अभिवेक करूँगा ! प्रातःकाल उगा के  
 पूर्ण दिशा से निकलते ही अह न के हृदय के नीचे बैठकर हम लोग गायेंगे !  
 उध स्वर-लाहरी स प्रथिनों का स्वर मिलाकर उध प्रदेश को गुग्गुलुमान कर  
 देगा, यही मैंने इसे बताया है । मरीचि की लताम होने के कारण मैं पाप नहीं

जानता । परन्तु पाप-पुण्य कुछ भी नहीं मानना चाहता । पाप-पुण्य संसारी के लिए है मेरे लिए—

आकूती—( उसके मुँह पर हाथ रखकर ) बहुत मत बोलो मित्र, देखो माँ आश्चर्य से तुम्हो देख रही हैं ।

बन्धि—ठहरो, एक बात कह लेने दो । मनु मैं एक बात करना चाहता हूँ । तुम बुरा मत मानना । हम लोग मानस-सन्तान हैं मरीचि की मानस-सन्तान । आकूती को लेकर मैं कितना सुखी हुआ हूँ । कदाचित् तुम्हें बताने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ । देव, गन्धर्व, किन्नर, विशाच, मूत, प्रेत, राक्षस, देवता सभी तो मुझे आदर की दृष्टि से देखते हैं । वे मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते । एक बार भूमते-भूमते ऐसा हुआ कि एक नागकन्या ने मुझसे प्रणाम करने को कहा । प्रणाम करना मैं क्या जानूँ मैं तो मरीचि की मानस-सन्तान हूँ न ! मैं उन दिनों तप कर रहा था । योग के आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, समाधि, ध्यान और उषी तरह का था वह मेरा तप । मैं उस समय प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष कुछ भी नहीं जानता था । मैंने उसका तिरस्कार किया । उसने नागों, राक्षसों, किन्नरों गन्धर्वों की सहायता से मुझ पर आक्रमण करना चाहा, परन्तु मरीचि की मानस-सन्तान होने के कारण वे मेरा कुछ भी न बिगाड़ सके । उसके

अवस्था—ठहरो, क्या तु इस बातवृत्त बन्धि के साथ रहना चाहती है ?

आकूती—हाँ । (प्यार से) माँ, मुझ इसकी बातें बहुत अच्छी लगती हैं ।

प्रियव्रत—(बन्धि से) तुम इतने ठपली होकर दिनों के घर में पकना चाहते हो । तप क्यों नहीं करते ?

बन्धि—(बन्धि से) आप लोग मुझे बोलने नहीं देना चाहते, तो मैं आपकी बात का उत्तर क्या हूँ ? मैं जाता हूँ । आओ मिले आकूती, बनें ।

आकूती—मैं जाती हूँ माँ । जाती हूँ मित्र ! (बन्धि के गले में हाथ बालकर जाती जाती है)

मतबधा—इतना बोलने वाला यदि, मैं तो आश्चर्य में रह गई।  
(तो बकर) उत्तानवाद गया आकूती गई।

प्रियव्रत—मैं भी जाता हूँ। मैं निश्चिंत उद्विग्न हो रहा हूँ। मैं,  
आजा हा। पिता आका रो।

मतबधा—हाँ, तब लोग चले जाओ। सुधि इरीषिय दे कि वेदा  
होते ही तब लोग अपना मार्ग प्रहस्य कर। मनु, तुम सुधि क विषयता  
हो क्या कोई ऐसा नियम नहीं बना सकते कि इनमें से सब अपने माता  
पिता के पास रह लेंगे। क्या हम इसी तरह अपने रहेंगे? असा स पूछा।  
कोई उपाय करो। हो क्या देवहूती और पुकूती रह कर। कदाचित् मे  
भी किसी दिन अपना मार्ग प्रहस्य करेंगी। क्या कोई भी दुस्कार करना  
नहीं मुनेगा।

एवा० मनु—ब्रह्मा ने अभी मुझे कुछ नहीं बताया। परन्तु देवता  
हैं परम्य एक संमष्ट है उत्पत्ति एक क्य है, बन्धन है। इतने पर भी  
क्या किसी को पुनकर उन्तान उत्पन्न करेगी ही। पुण्य उस अपनी बना  
कर उन्तान बदाप्ता। कदाचित् परी विषयता की इच्छा है कि रोओ  
और उठी मार्ग पर चलते आओ। तुम भी आओ, वेदा। आओ लप  
करो और सुधि के इस प्रबंध में न पचना, आओ।

प्रियव्रत—ओ आका (प्रलाम करके बला जाता है)  
एवा मनु—(विषयता नें मन्म होकर) कुछ तमक में नहीं आता  
न जाने यह कैसा संसार है। मैं भी क्यों न चला जाऊँ? क्या मुझे  
इच्छा नहीं होती कि मैं जानूँ कि यह संसार क्या है? न जाने मेरे ऊपर  
ब्रह्मा ने यह भार क्यों डाल दिया है? न जाने ब्रह्मा कौन है? क्या इस  
संमष्ट को मैं पार कर सकूँगा? नहीं शक्यता, तुम मेरी कोई नहीं हो।  
न जाने उठ दिन हम लोग किस तरह मिल गये। इतना क्य बड़ गया।  
मैं नहीं जानता जब जबि मानव-सन्तान है तब फिर इस प्रकार की उत्पत्ति  
की क्या आश्चर्यकता है? मैं यह नियम तोड़ देना चाहता हूँ। कोई कोष  
रहा हो तो करे। मैं ब्रह्मा का कौन हूँ। मन्म मेरा कोई नहीं है। मैं भी

छोड़ूँगा, तब कहूँगा। शतकम्पा, जब से हम मेरी कोई नहीं हो। मैं भी थाता हूँ।

शतकम्पा—(खबरदार) मनु, यह हम क्या करते हो? क्या मुझे झकेली, निःसहाय छोड़ आओगे? नहीं, ऐसा न करो। मैं तुम्हारीसे या कहूँगी। मैं तुम्हारे पैरों पकड़ी हूँ। (एकदम धीमे-विह्वल होकर मनु के पैरों पर गिर जाती है)

स्वा० मनु—(शतकम्पा को पैरों में पकड़ा बैठकर) धरे शतकम्पा! तुम यह क्या कर रही हो? उठो। (उठते हैं)

शतकम्पा—मुझे जबलाम्ब हो मनु। जो पहले गये उन्हें जाने दो, पर तुम मत आओ। ठेलो (छोडती हुई) इस जीवन में मेरा कोई नहीं है। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती।

स्वा० मनु—मैं किसी को नहीं चाहता। मैं तुम्हें भी नहीं चाहता। मैं मरना भी नहीं चाहता। मरना ने मुझे बहाकर नरक में डाल दिया है। मैं स्वतन्त्र था। (मंह खेरकर दूसरी ओर देखने लगता है)

शतकम्पा—(एक बिना की ओर देखती हुई) नहीं नहीं, मुझे कुछ दिलारं पक रहा है। मुझ एक गया संसार बीज पकता है।

स्वा० मनु—(आश्चर्य और अतुच्छता से उब घोर लड़कर) क्या शक्ति पकता है?

शतकम्पा—उत्पन्न पकता है, जैसे मैं और तुम प्रकृति के, संसार के एक कुछ हैं। पुरुष और स्त्री ही जीवन है। संसार में और कहीं भी कुछ नहीं है। कहीं भी कुछ नहीं है मनु। जैसे दो पैरों से गति होती है, दो हाथों से धर्म होता है। दो कानों से निरूपयपूर्ण देला या शकता है। तब अगाह दो ही तो हैं। इन्ही प्रकार हम-तुम दो ही तो संसार में हैं। हमें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जो पहले गये, उन्हें जान दो। अभी हम और सम्मान उत्पन्न करेंगे। इच्छामुठार सम्मान उत्पन्न करेंगे। जो हमारी आत्मा में रहेंगे।

स्वा० मनु—वह तुम्हारा धर्म है। जो सम्मान होगी, इच्छा भी

तो उसका साथ ही होगी। वह कब चाहेगा कि स्वच्छन्दता छोड़कर वह मेरी और तुम्हारी सेवा करे।

शातकपा—परन्तु (तोचकर)

स्वा मनु—परन्तु क्या ?

शातकपा—मैं तोच रही थी। एक बात मुझे याद आनी थी। उद्यो, मैं उसे अच्छी तरह तोच लूँ। (ध्यान करती है) हाँ, याद आया। देखो, अब तुमने अपनी इच्छा से सन्तान उत्पन्न की। इतलिय सन्तान में तुम्हारे-जैसी स्वच्छन्दता लाने के लिए बन में काम का भाव उत्पन्न हुआ। अब मैं अपनी इच्छा की सन्तान उत्पन्न करूँगी। मुझे दीन्य पकड़ा है, जैसा मैंने अभी कहा, मैं मारी हूँ। मैं कोमलता करवा, रक्षा, महाशक्ति आकाशकारिता के साथ-साथी सन्तान उत्पन्न करूँगी। उत्तानवाद की प्रकृति में काम से नहीं बहुत दिनों से देख रही हूँ। मुझ वह बहुत उद्यत और स्वच्छन्द लगा है। उसने मेरी कई बार आशय की है। शिपकत को भी मैं सदा से देखती आ रही हूँ कि वह बहुत हीच पुत्र है और उसमें तथा से कुछ तोचते रहने का स्वभाव है। उस दिन मेरे ही करने से वह उत्तानवाद के साथ बाहर गया था कि लक्ष्मी हो गई।

स्वा मनु—मुझे तुम्हारी ये बातें विस्तृत धर्म दीन पकती हैं। मैं अब यह तोच भी नहीं सकता।

कतकपा—आकृती में आशय कुछ मेरी जाना है। वह हीचि कया है इतलिय वह खि-जैसे बातें करने वाले आदमी के साथ बली गई। मैं भी तो इसी तरह तुम्हें देखकर, तुम्हारे बला को देखकर तुम पर मुग्ध हो गई थी। अब मुझे विश्वास है, मेरी ये दोनों लक्ष्मीं देखकृती और प्रकृती आकाशकारिणी कयाएँ होंगी। तुम उद्योग मत बनो मनु ! मैं तुम्हें जीवन का आखिरी क्य खिलाऊँगी।

स्वा मनु—(उत्ती भाव से) यदि शि उत्पन्न करता ही जीवन है तो मैं जीवन से उन्नत गया हूँ। मैं तुमसे उन्नत गया हूँ। तर्क, वितक, लक्ष्य, पृथा, रीति और होय का नाम संसार है। मैं संसार से पृथा करता हूँ। (बहु कर जाता है।)

प्रतक्ष्या—नहीं नहीं, तुम मेरी ओर देखो। इधर देखो मनु! जीवन न तो एक बितक ही है न लम्बा, पृथा, रंया और दय ही। यह बहुत सुन्दर है। मैं देखती हूँ जैसे मैं एक-कुछ हूँ। मुझे मे कुतुमों की सुरमि है, मद की मदकता, बेमम का उत्साह, मोक्ष का तुल, हरय का आनन्द। हम और तुम दोनों ही तो जीवन हैं। हम दोनों में प्रियम्त, उद्यानपाद, आसूयो, देवहृती और हर छोटी-सी कन्या प्रसूती की जीवन राम दिया है। हमने कितनी महान् बस्तु इन लोगों को दी है, सार को ही है। क्या तुम यह नहीं देख पाते ?

स्वा० मनु—मैं तप, ध्यान द्वारा इस विश्व को जानना चाहता हूँ। जिसने इस संसार को बनाया, उसको जानना चाहता हूँ। मैं उत्पत्ति को सात मारकर शक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझे बड़ी सज्जा अनुभव होती है, जब मैं देखता हूँ कि छोटा-सा प्रियम्त संसार त्यागकर सन्नासी हो गया है और मैं उत्तम पिता संसार के बन्धन में पड़ा हूँ।

प्रतक्ष्या—इसमें लम्बा की कोई बात नहीं है। तुम्हें ज्ञान ने जो काम सौंपा है, उसी कर्तव्य का तुम पालन कर रहे हो। यह जो-हीन काम तो नहीं है। परन्तु मैं तो बितना सोचती हूँ, मुझे शांत होता है जैसे मैं ही इश्वर हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही जीवन हूँ, मैं ही मोक्ष हूँ। तुम मेरी ओर देखो। जीवन का नाम आनन्द है। हम लोगों को कित्त बस्तु की कमी है। कौन सी बस्तु अप्राप्य है। तुम मेरी ओर देखो। (हाथ पकड़ कर अपनी ओर मोड़ना चाहती है)

स्वा० मनु—(पसी भाव से) नहीं, मैं तुम्हारी ओर अब न देखूंगा, मुझे तुमसे पृथा है। तुम में आक्यस्य है। न जाने क्यों पहली बार मैं ही तुमने मुझे अपनी ओर लौटना प्रारम्भ कर दिया। मैं अब तनी मात्र से पृथा करता हूँ। तुम स्थियों में एक मद है जिसका अन्त अठस है। तुम में तुमाबनापन है, जो सहज ही अपनी ओर लींचता है। तुम्हारे शरीर स सुगन्धि उठ रही है। वह मुझे बरबस तुम्हारी ओर आकृष्ट कर रही है। इतने पर भी अपने को रोककर, अपने हृदय को बचाकर, अपने

तो उसके साथ ही दाग। य वह चाहेगा कि स्वच्छन्दता का फल पर  
मैं। जोर तुम्हारी सवा कर

सततपा—परन्तु (तोषकर)

सा० बल—परन्तु क्या ?

सततपा—मैं तोच रही था। एक पाठ मुझ बाह आर थी। ठहरो,  
मैं उस झण्टी तरह तोच लूँ। (ध्यान करती है) हाँ, बाह आया।  
दया अब तुमझ अपनी इच्छा से सन्तान उत्पन्न की। इसलिए सन्तान  
म तुम्हारे जैसी स्वच्छन्दता, तो करन के लिए बन मैं ध्याने का मास  
उत्पन्न हुआ। अब मैं अपनी इच्छा की सन्तान उत्पन्न करूँगी। मुझे  
दीन पकता है, जेवा मैंने अभी कहा, मैं मारी हूँ। मैं क्रोमसता, कस्या,  
रधा, लदानुभूति, आकाशकारिता के मावनाको सन्तान उत्पन्न करूँगी।  
उत्पानबाह की प्रकृति मैं आज स मरी बहुत दिनों से देख रही हूँ। मुझे  
बह बहुत उद्वेग और स्वल्प लगा है। उसने मेरी कई बार आनख की  
है। शिवनत को भी मैं सदा से देखती आ रही हूँ कि वह बहुत लीन्य पुत्र  
है और उसमें सग स कुछ लोचते रहने का स्वभाव है। उस दिन मेरे ही  
करने स वह उत्पानबाह के साथ बाहर गया था कि लकड़ें हो गईं।

सा मनु—मुझ तुम्हारी ये बातें विस्तृत रूप से देख पकती हैं।  
मैं अब वह तोच भी नहीं सकता।

सततपा—आकृति मैं आचर्य कुछ मेरी छाया है। वह लीन्य कम्पा  
है इसलिए वह खि-जेस बातें करने वाले आदमी के साथ चली गई। मैं  
भी तो इसी तरह तुम्हें देखकर, तुम्हारे बल को देखकर तुम पर मुग्ध हो  
गया थी। अब मुझे विश्वास है, मेरी ये सोचों सन्तानें देवहृती और प्रकृती  
आकाशकारिणी कम्पाएँ होंगी। तुम अहिन मत् बनो मनु। मैं तुम्हें  
जीवन का वास्तविक रूप दिखाऊँगी।

सा मनु—(उसी भाव से) यदि धि उत्पन्न करना ही जीवन है  
तो मैं जीवन स उच गया हूँ। मैं तुमसे ऊच गया हूँ। एक, विदर्क, लालज,  
पुषा, हर्षा और होप का नाम संसार है। मैं संसार से पुषा करता हूँ।  
(संक्षु कोर जाता है।)

बतक्या—नहीं नहीं, तुम मेरी ओर देखो। इधर देखो मनु। जीवन न तो तर्क-वितर्क ही है न कल्या, पृथा, इवा और इय ही। यह बहुत सुन्दर है। मैं देखती हूँ जैसे मैं तब-कुछ हूँ। मुझ में कुसुमों की सुरभि है, मध की भावकता, वैभव का उल्लास, मोघ का सुन्द, हृदय का आनन्द। हम और तुम दोनों ही तो जीवन हैं। हम दोनों ने प्रियवत्, उद्यानपाद, आकृष्टी, देवहृती और इत छोटी-सी कन्या प्रसूती को जीवन दान दिया है। इयने कितनी महाम् बस्तु इन लोगों को ही है, सार को ही है। क्या तुम यह नहीं देख पाते ?

स्वा० मनु—मैं तब, ध्यान द्वारा इस विश्व को जानना चाहता हूँ। जिसने इस संसार को बनाया, उसको जानना चाहता हूँ। मैं उस्पति को सात बारकर शक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझे बड़ी शय्या अनुभव होती है, जब मैं देखता हूँ कि छोटा-सा प्रियवत् संसार स्वायत्त सम्पाती हो गया है और मैं उतक्य पिता संसार के बन्धन में पड़ा हूँ।

बतक्या—इसमें कल्या की कोई बात नहीं है। तुम्हें क्या ने जो काम सौंपा है, ठीकी कर्तव्य का तुम पालन कर रहे हो। यह कोई हीन कार्य तो नहीं है। परन्तु मैं तो कितना सोचती हूँ, मुझे ज्ञात होता है जैसे मैं ही रंजर हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही जीवन हूँ, मैं ही मोघ हूँ। तुम मेरी ओर देखो। जीवन का नाम आनन्द है। हम लोगों को किस बस्तु की कमी है। कौन सी बस्तु अप्राप्य है। तुम मेरी ओर देखो ! (हाथ बकड़ कर अपनी ओर मोड़ना चाहती है)

स्वा० मनु—(जती जाव से) नहीं, मैं तुम्हारी ओर अब न दम्बूंगा, मुझे तुमसे पृथा है। तुम में आकर्षण है। न जाने क्यों पहली बार मैं ही तुम्हने मुझे अपनी ओर लीनना प्रारम्भ कर दिया। मैं अब ली मात्र से पृथा करता हूँ। तुम स्थियों में एक मद्र है जिसका अन्त अतल है। तुम में तुमाबन्धन है, जो तहज ही अपनी ओर लीबता है। तुम्हारे शरीर से सुवन्धि उठ रही है। यह मुझे बरबस तुम्हारी ओर आकृष्ट कर रही है। इतने पर भी अपने को रोककर, अपने इरप को दबाकर, अपने



को मारकर मैं करता हूँ कि मुझे जाने दो। प्रह्ला ने मुझे बका बोला  
रिवा है।

सतब्रजा—नहीं मनु एता न करो। मैं करी की न रहूँगी। मैं मर  
जाऊँगी। (रोते-रोते मनु के पैरों पर बिर पड़ती है। मनु उसे पैरों से  
टूकराकर जाने जाते हैं। देवहूती और प्रभुतो रोने लगती हैं।)

देवहूती—माँ, मिताजी क्यों खले गए ?

सतब्रजा—क्या जानूँ बेटी क्यों खले गए। खले गए इतना ही  
जानती हूँ। मोड़े ही दिनों म न जाने क्या से क्या हो गया ? ( विद्यती  
बात माँ करके ) छोड़ कुछ समय पूर्व मैं कितनी प्रसन्न थी ! स्वतन्त्र,  
न किसी की बाध थी म मोह था। मनु, तुम्हारे पीछे मैंने उत्तनपाद  
प्रियव्रत को छोड़ा। क्यों न मैं भी सब-कुछ छोड़कर खली जाऊँ !  
( कन्याओं की ओर देखाकर ) इन निरपराध कन्याओं को छोड़कर ! नहीं,  
नह मुझसे न हो सकेगा। (सोचों को पठाकर ध्यान से मुँह झुलती है।)

### घोषा वृक्ष

[ समुद्र के तट पर मनु बैठे हैं। बाकी बड़ी हुई है। तिर के बात  
छपे हो गए हैं। सामने अपार समुद्र लहरा रहा है पीछे विशाल पर्वत-  
श्रेणी है। मनु बैठे सोच रहे हैं। ]

मनु—( सोचते हुए ) यह समुद्र कितना महान, अपार, अपार है

और से पर्वत, अपने शिखर से आकाश को चीरने वाले, शिखर वृक्ष, इन  
सबकी अपनी परिधि है, सीमा है और वे आकाश—काले, नीले, मटमैले  
पीले सुर्जे का एक समुद्र लाल लाल जीवन की तरह बदलने वाले रंग  
निरंगे। वे सब अपनी-अपनी सीमा सिने हैं। ऊँचाई में लम्बाई में,  
चौड़ाई में इन सबको एक सीमा है परन्तु मनुष्य इनका सीमा भी  
नहीं, लघु-लघुपर किन्तु उसके आशय संसार की सब वस्तुओं से नहीं।  
समुद्र से भी महान्, आकाश से भी अधिक व्यापक, वृक्षों से भी अधिक

स्वियर, हृद ! उच्चानपाद इस सार को अपने बश में करना चाहता है, जो शिला के छोटे-से आभास को भी नहीं सह सकता। वह पर्वतों पर अपना साम्राज्य चाहता है। जो वृक्ष की शाखा को भी नहीं सह सकता वह आकाश में उड़ जाना चाहता है। ऐसा है वह जीवन ! कितनी आशा, कितनी उमंग है इसमें। मैंने शतरूमा को स्वागत किया। प्रियवन्त, उच्चानपाद आकृष्टी, देवहूती को खींचकर आया हूँ, पर न जाने क्यों मुझे दीस पकता है जैसे कोई मैंने पाप किया है। मैंने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया। मैं एक आश्चर्य-सा क्यों अनुभव कर रहा हूँ। क्यों तप करते भीत गए। देखता हूँ उसका कोई प्रभाव मुझ पर नहीं पड़ रहा। क्या मनुष्य सप्तसुष सबसे बड़ा है। इस आकाश से, इस समुद्र से, इन मूषरों से किनकी छाती पर असंख्यों वृक्ष हैं। असंख्यों शिला-स्तम्भ हैं अपार अक्षराणि जिनके हृदय से मिरा करती है, बालामुग्नी हैं, वे मूक हैं, निस्तम्भ हैं, शान्त हैं ! पर मनुष्य कितना आशान्त ! इतना तप करने के बाद भी मुझे सम्योप नहीं नहीं मिला रहा है ? (उच्चानपाद का एक स्त्री के साथ प्रवेश।)

उच्चानपाद—( शिला मनु को बंध्य देखकर ) अरे तुम हो ! निकम्मे शिला, तुमने इतना विशाल जीवन प्राप्त करके क्या पाया ! इधर देखो, मैंने पर्वतों पर अपार साम्राज्य स्वीर किया है। पत्थरों सिंहों से युद्ध करके पराशारी कर दिया है। इन्द्र से युद्ध करके उसकी सेना को मैंने भीत लिया है ! मैं कितना म्दान् हूँ। हाथियों से युद्ध करके उन्हें अपने पदों के बाहन बनाया है और तुम स्त्री की तरह कामल, विभित की तरह निःसहाय यहाँ क्या कर रहे हो ? माता क्यों हैं, प्रियवन्त क्यों बला गया ! मुझे देखो ( सामने घाती हुई एक मनुष्य की छाया देखकर ) यह कौन है मगर की तरह रेंगकर चलने वाला। हाथी की छाया की तरह मल्ल ( उधर ही देखकर ) तुम कौन हो ?

कर्म—( अपनी बुन में घूमते हुए उच्चानपाद के बुकारने का कुछ भी ध्यान न करके ) मनु उच्चानपाद ! शिला पुत्र, किन्तु जो विरोधी तत्व !

मनु—तुम कौन हो ? एक विद्याल छाया की तरह !

कर्दम—( हँसते हुए ) कर्दम ! कर्दम है मेरा नाम मनु ! यह तुम्हारा पुत्र उत्तानपाद है न ! ( दूसरी ओर देखते हुए ) समुद्र को पार करके की इच्छा वाली सीढ़ी की तरह यह उत्तानपाद !

उत्तानपाद—मूर्ख, तुम्हें ज्ञात नहीं है, मैं इस पृथ्वी का शासक हूँ । मैंने पर्वतों को रादकर, तिहों को पछाड़कर हाथियों को कुचलकर एक-एक शासन स्थापित किया है ।

कर्दम—( जपेला से ) मनु, तुमने इतना अभिमानी पुत्र क्यों उत्पन्न किया ! यह शासक स्वर्ग को निगलना चाहता है । क्या मनुष्यी समुद्र को पी सकती है ? मनुष्य संसार को स्थिर रखने के लिए उत्पन्न किया गया है मनु !

मनु—कर्दम, तुम कौन हो । तुम्हें बताओ, मेरा ब्रिच इतना अशक्ति क्यों है ?

उत्तानपाद—मिठा, तुम्हें जीवन को जीवन नहीं समझा । इतीक्षिय, दुखी हो । तुम्हें मैं आज बहुत आनन्द है । मैं उम्माह, बल का एक प्रतीक हूँ । इच्छा होती है इस समुद्र विस्म को मुझी में दबाकर पीस जाऊँ । उठ दिन अस्थानक शत हुआ, इन्द्र देवताओं का एक राजा ( तानने के पर्वत-अधर की ओर संकेत करके ) तरोवर में विशार कर रहा है । मैं वहाँ पहुँच गया । मुझ के लिए उसे पुकार और हयकर उठकी सबसे सुन्दरी अप्सरा को मैं अपने साथ ले आया हूँ । यही मेरा जीवन है । तप, स्नान कोई भी पदार्थ नहीं है । कर्दम, मैं जाऊँ तो अभी तुम्हें स्मर लकटा हूँ । आओ, चर्से मिले ! ( इती का हाथ पकड़कर जाता जाता है )

कर्दम—मारने से जीवन देने का काम बड़ा है । मनु, तुमने विद्याता की इच्छा के विरुद्ध कार्य किया है, इतीक्षिय तुम्हें शक्ति नहीं मिल रही है । तुमने प्रकृति के विधान को तोड़ा है ।

मनु—विद्याता का विरुद्ध क्या इती में है कि उत्तानपाद-जैसी संतान

उत्पन्न की जान ?

कर्म्म—इन भूषणों पर जो ये वृक्ष उगे हैं यह क्या ये सब ही उत्पन्न  
देव हैं। कुछ कटिहार, कुछ अश्लेषे सुगन्धि वाले। कुछ से क्षाम होता  
है, कुछ से हानि। उत्पन्नपाद को देखकर मैं भी यही विचार हुआ कि  
मनु ने इस प्रकार की सन्तान क्यों उत्पन्न की, परन्तु अब विचार बदल  
गया। मैं देखता हूँ, अश्लेषे-बुरे का नाम संसार है। यदि एक तरफ  
उत्पन्नपाद है तो दूसरी ओर अश्लेष मी तो है। शतकृपा आनृती भी तो  
हैं। मनुष्य स्वतन्त्र प्राणी है, कर्म का पक्ष वह मोगेगा। तुम क्यों विन्ता  
करते हो ? मनु, तुम विघाता के बरक पुत्र हो। तुम्हें विघाता ने सृष्टि  
उत्पन्न करने के लिए ही बनाया है। तुमने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया  
इसीलिए तुम अग्रान्त हो, भ्रान्त हो। तुमने शतकृपा को स्वागकर तप के  
द्वारा शान्ति प्राप्त करनी चाही इसीलिए तुम्हें तप करने पर भी शान्ति  
नहीं मिल रही है। कर्त्तव्य संसार में बड़ा है, तप से मी, शक्ति से मी।

मनु—तुम ठीक कहते हो। मैंने शतकृपा को स्वागकर भूल की।  
मैं अब उसका प्रायश्चित्त करूँगा। जाया हूँ कर्म्म, मैं जाया हूँ। अरे,  
उत्पन्न क्यों नहीं जाता ?

कर्म्म—हाँ जाओ और कर्त्तव्य का पालन करो। विघाता ने जो  
काम तुम्हें सौगा है, उसे पूरा करो। इसी से तुम्हारा जीवन चार्मक  
होगा।

मनु—( जाता हुआ लौटकर ) विघाता ने मुझे ही यह काम सौगा  
दे, मैं नहीं मानता। तुम्हें मी यह काम सौगा होगा, तुम तो मानस  
सन्तान हो।

कर्म्म—( लौटकर ) मुझे, नहीं मनु, मुझसे यह काम नहीं हो  
सकता। मैं तो मरिचि की मामल-सन्तान हूँ निर्हन्त्र, निस्पृह।

मनु—तुम अक्षय कहते हो। तुम्हें मी बही मार दिया गया है।

कर्म्म—अक्षय, मैं अक्षय क्या जानूँ। अक्षय क्या होता है, यह मैं  
आज तक न जान पाया।

मनु—तुम भी तो कर्म का पालन नहीं कर रहे कर्म !

कर्म—मानस-सन्तान उत्पत्ति नहीं कर सकती । हम तो विषादा के विफल प्रयत्न हैं मनु !

मनु—कवि ?

कर्म—कवि भी नहीं । मानस पुत्र तो कल्पना है, क्रिया नहीं । इसके लिए तो गुर्मी उत्पन्न हो मनु !

मनु—मैंने ठेका नहीं लिया है ऐता करने का । ब्रह्मा जाने धीरे उठका काम । मैं फिर तब करूँगा (एक युवती का प्रवेश) तुम कौन हो ? नहीं क्या करने आरंभ हो ?

युवती—वह कवि, कवि न जाने कहीं चला गया मुझे छोड़कर । मैं तब से उठे हुई रही हूँ । वह क्यों चला गया ? क्या सकते हो ?

मनु—( ध्यान से देखकर ) कौन ? आकृती ?

युवती—( मन की धीरे ध्यान से ) तुम कौन मनु ?

कर्म—कवि । स्वर्भ है मानस-सन्तान ।

मनु—हाँ मैं मनु हूँ ।

आकृती—( चौंकर पिता से लिपट जाती है ) मनु, तुम्हें क्या हो गया ? ( आश्चर्य से देखकर ) तुम्हारे सब बाल लपेट हो गये । तुम्हें क्या हो गया पिता ।

मनु—( उत्ती भाव से ) समय के प्रभाव से सब होता है । मैं न जाने कितना आ रहा हूँ । कवि क्यों चला गया ?

आकृती—जाने कहीं चला गया मुझे छोड़कर । एक घण्टा उठकर चला गया । कुछ दिनों से न जाने उसे क्या हो रहा था । जैसे मेरा कन्धन विभक्त पड़ गया था । उठते बैठते ध्यान में मग्न रहता था । मैंने बहुत-बहुत कहा कि मुझसे पहले की तरह बातें करे । इसे, मेरा आश्रित करे, परन्तु जाने उसे क्या हो गया । तब से उठे हुई रही हूँ । नर इतना निर्दय है वह मैं न जानती थी ।

कर्म—तुना मनु ? नर इतना निर्दय है ।

मनु—वह नारी का स्वाय है जो उसे निदम कहता है।

कर्दम—कैसे ? ( लकड़ो हंके घतवपा का प्रवेश )

घतवपा—नारी का स्वार्थ ? नारी में क्या स्वार्थ है मनु, तुमने मुझे छोड़कर क्या पाया, मैं तुम्हारे मार्ग में कब बाधा बनी, मैंने तुम्हें क्या नहीं दिया ?

मनु—तुम आ गई ?

आकूती—माँ, ( लिपट जाती है ) माँ, धरे तुम बूढ़ी हो गई ! तुम्हारा रूप बिगड़ गया है। शरीर में भुर्रियाँ पक गई हैं फिर भी न जाने तुम धीरे पिता मनु मुझे क्यों अश्लेषे लगते हैं। कभी-कभी तो रुचि से भी अधिक प्यारे। माँ, रुचि मुझे छोड़कर चला गया, न जाने कैसा निर्दय है वह ?

मनु—माया है, दृस है, भ्रम है। जोर किसी का नहीं।

घतवपा—हो सकता है।

कर्दम—मैं जाता हूँ। मेरा मन ऊब रहा है। ऐसी बातें तुम्हें अश्ली नहीं लगती।

घतवपा—मैं न नर को बुरा कहती हूँ, न नारी को। न नर स्वार्थी है, न नारी। दोनों संसार के दो खम्भ हैं। नर यदि दय है, दिन है, मिथसे संसार को आलोक मिलता है तो नारी चन्द्रमा है, रात है जो मनुष्य को अंधकार में प्रकाश का मार्ग दिखाती है। वह अंधकार भी है तो सब पापों को भुला देने के लिए। प्रायश्चित्त की निद्रा में सब-कुछ को शान्त के लिए। तुम्हें नारी से प्यारा है, परन्तु उठने प्यारा नरा सीम्नी। उसके पास प्यार है, स्नेह का समुद्र है, करुणा है, दया है, म्बना है, ममता है बितस वह मनुष्य को भिगो देना चाहती है उसे सुन्धी बनाना चाहती है। रुचि आकूती को छोड़कर चला गया, परन्तु आकूती उसके लिए भुली है। रुचि क्यों नहीं दुली दुआ। इसीलिए कि उसके हृदय में वास्तविक प्रेम नहीं है। परन्तु वह अचला नहीं रह सकता। उस धिर आना पङ्गा। उसका निबाह नारी के बिना नहीं हो सकेगा। यदि संसार में

रहना है चलना है, सोचना है, लो दो वेरों से ही चलना चा सकता है, दोहा चा सकता है। इतना ही हमें दो वेर मिले हैं, दो हाथ मिले हैं, दो आँसू मिली हैं, दो कान मिले हैं। कोई आँसूला संसार में कुछ नहीं है।

मन—शतकथा, तुम इतनी उदात्ति करके बुली नहीं हुई, इती का मुझे आश्चर्य है।

शतकथा—मुझे कोई दुःख नहीं है। तुम मुझे छोड़कर बसे भाए, परन्तु मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती।

कर्नम—ऐसी बातें लो मैंने कभी नहीं सुनी थी।

प्राकृती—न जाने मैं, तुम मेरे हृदय की बातें ही कर रही हो ?

शतकथा—उत्थानगर इतना उदर उदर, अमिमानी यहाँ से लौटकर पास लौटकर मेरे पास आया। वह हाथियों से लड़ते-लड़ते लहू-लुहान हो गया था। मूर्खता की आबरवा में उठने मुझे बाद किया। उठकी पत्नियों उठे मेरे पास लौ आईं। मैंने उठकी सेवा की। उठकी बार किया। वह ठीक हो गया। मेरे पास प्रेम के सिवा और है ही क्या, नारी के पास बही है मनु ? अब तुम बूढ़े हो गये हो। उठ का लगेद हो गये हैं। तुम्हारा शरीर शिथिल हो गया है। अतो मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। तुम लय कर लुके। लो कुछ होगा, वह पीके नहीं हट सकता। मुझे इसका कोई दुःख नहीं है। मैं ही लड़ि हूँ मनु। मैं ही लष्टि का लय !

मनु—( प्रभावित-ता होकर ) विचित्र बात है। उत्थानगर-जैसा लड़का लौटकर तुम्हारे पास आया ?

शतकथा—शष्टि का वह रूप मैं आज ही देख सका हूँ। शतकथा, तुम क्या हो ?

मनु—कर्नम, क्या तुम्हें इतमें कोई नई बात समझी है ?

कर्नम—उठ-कुल नया है। नारी की उपयोगिता को मैं बहुत बड़ा मानता हूँ।

सतक्या—प्रियव्रत धर खीटकर आ गया है। उसने प्रसूती के साथ रहना स्वीकार किया है।

मनु—(आश्चर्य से उलझकर) प्रियव्रत भी आ गया ?

सतक्या—उत्तानपाद के तीन सौ पुत्र हुए हैं। उसने एक पहाड़ के ऊपर अपना स्थान बनाया है।

मनु—सब नया सुनाई दे रहा है। (उठते हैं पर जैसे उठा नहीं जाता फिर बैठ जाते हैं) पैरों को न जाने क्या हो गया ? चलते हुए झंझिरा सा जाता है धाँधों के सामने।

सतक्या—(मनु के पैरों को मसलती हुई) तुम्हारी आबस्या ही देखी है। (कम्पाएँ सेवा करती हैं थोड़ी देर के बाद) कहे हो जाओ। (हाथ पकड़कर खड़ा करती हैं)

मनु—नहीं, अब मैं न चल सकूँगा। मुझे उस दिन वाली हरिणी की मुच आ रही है। वह उठका मरवा ! (एकदम लड़कड़ाकर गिर जाते हैं। कर्मम आसूती सतक्या उन्हें संभालती हैं। उनका उपचार करती हैं। कोई मूँह में जल डालता है कोई हाथ-पैर धोता है, किन्तु मनु धीरे-धीरे प्राण त्याग देते हैं। सब आश्चर्य भोके से मन को देखते रहते हैं। प्रियव्रत उत्तानपाद और बहुत से व्यक्ति आकर देखते हैं।)

सब—पिता को यह क्या हुआ मों ?

सतक्या—मनुष्य का यह अन्तिम रूप है बेटा। आदिम-युग के प्राणी का यह अन्तिम रूप।

सतक्या—यह मृत्यु है, उस दिन एक हरिणी की मृत्यु देखी, आज मनु की। ब्रह्म ने कहा था यह मृत्यु है। मैं उस दिन मृत्यु को ठीक-ठीक नहीं समझ सकी थी। आज देखती हूँ मृत्यु आश्चर्यक है। यही एक मनु है जो मनुष्य को आइंकार से दूर रखता है, फिर भी मैं नहीं धनती यह क्या है ? (मनु को धरती पर विर जाता है। सब सतक्या को उठाते हैं)

प्रियव्रत—(ध्यानमग्न) मैंने इतना तप किया किन्तु मैं इतको



न जान सका ।

जलालपाद—वह तो एक बड़ा भय है जिसका आभा-सीला कुछ दिखाई नहीं देता । घनेक प्राक्षिपी का नाश करते हुए मुझ ठन्डी मृत्यु में इतना प्रभावित नहीं किया किना कि आज रिता भी इत मृत्यु में । आज मेरा संवृष्ट अभिमान टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है ।

कर्म—यह भयंकर होते हुए भी आश्चर्य है । जैसे हरे-मरे वृष का लुप्त हो टूट हो जाना स्वाभाविक है, उसी प्रकार मृत्यु भी अनिवार्य है ।

प्रियव्रत—किन्तु सृष्टि की यह बात तो बहुत बुरी है । सृष्टि के साथ विनाश की यह पूँज लगाकर विधाता ने बड़ी मूल की है ।

कर्म—'मूल' तुम इसे मूल कहते हो । यह मूल नहीं है । यह न हो तो तब नरक बन जाय । तलाश, उत्खन, मार-काट का अन्त ही न हो ।

सब—कैसे कैसे ? यह तो निश्चित बात है ।

कर्म—तुमों मृत्यु न होने पर सभी षष्ठी जीवित रहेंगे । और आज नहीं सहस्र वर्ष बाद वह सृष्टि प्राक्षिपी से मर जायगी, रहने को स्थान, करने को भोजन, पीने को जल, पानने को वस्त्र सभी वस्तुओं का अभाव बढ़ता जायगा । सदा जीवित रहने के कारण सब प्रकार के स्नेह का भी अभाव हो जायगा । उठ समय सृष्टि का क्या रूप होगा इतकी कल्पना कर सकते हो ?

जलजना—किन्तु मैं स्नेह का सदा ही मनु के प्रति एक-ठा रहता ।

कर्म—संभव है । मनु ने अपने जीवन का जो अनुभव तुम्हें दिया है उसके लाम उठाओ । प्राणी का जीवन के प्रति प्रसन्न में जो संचित विवेक है, वही मनुष्य की निधि है । उसे लेकर जागे बढ़ो, चलते चलते । मनुष्य का अनुभव मनुष्य के संस्कार का आसोक है उसी प्रकाश से अपना मार्ग बनाओ । वही मनु का आदेश है ।

सतवपा—कर्म, तुमने हमारी झौंझें खोला दी। तुम क्या हो।

पञ्चमपाद—हम लोग मनु के बताये मार्ग पर चलेंगे। पिता के आदेश का पालन करेंगे। संसार में मुक्त है, हम मुक्त लौटेंगे।

प्रियव्रत—सृष्टि अमृत है। हम अमृत प्राप्त करेंगे।

सतवपा—इस सोने के पात्र से सत्य का मुक्त टका हुआ है, उसको लोहो। तुमको सत्य, धर्म का ज्ञान होगा।

सब—आदि पिता मनु की जय। स्वर्गभुव मनु की जय।

[ जय घोष में पछा बिरता है ]

# प्रथम-विवाह

(प्रारम्भिक धार्मिक-संस्कृति का चित्र)

## पात्र-परिचय

काइबेय	परिवार-पति
काइबेबी	अन-नाबिका
स्वेष्ट काइ	काइ परिवार
मध्यम काइ	" "
कनिष्ठ काइ	" "
मध्यमा काइ	" "
डया काइ	सुवती
द्वितीय पञ्चजन	सुवती
बह पञ्चजन	पञ्चजन-परिवार
बसुण पञ्चजन	" "
	पञ्चजन-परिवार-पति

[स्नान—द्विपालय की उत्तरपक्ष, देवराज की लकड़ी घीर भोजपत्र से छाया हुआ एक कुडीर। बीच में बुझी निकलने का एक छोटा-सा मार्ग। कुडीर के बाहर घाय बल रही है। उसके चारों घोर भोजपत्र के घातन बने हैं। कटीर के बाहर का भाग समतल है। जिस समय की हम कथा लिख रहे हैं उससे पूर्व मगध जाति भूमती-किरती थी। कभी एक स्नान पर घीर कमी बूबरे स्नान पर। दोनों परिवारों के रूप में पञ्चुओं के साथ कमी-कमी ये ही-एक मास के लिए ठहर भी जाते थे। इस समय तक कम्ब-मूल के साथ ये लोग बसुओं को मारकर जाना भी लीज बने थे। पहले-महल बुझों की छाका तत्पश्चात् पत्थर घाबि के परघु, खाँडे बमाने लने थे। भोजपत्र घीर बमड़े का परिचाल ही प्रथम

क्य तै व्यवहार में आता था क्योंकि मनुष्यों के रोप बीरे-पीरे कम होते जा रहे थे । वे एक तरह से इन्द्रियों की बृत्तिको समझने लगे थे । स्त्री पुरुष के नर तथा सर्पों के कारण उन्होंने बरत्र बारण करना स्वीकार कर लिया था । तात्पर्य यह कि नया रहने में अज्ञान-जैसी भावना का समर्थ उदय हो गया था । राय-श्रेय नाम की दोनों भावनाओं में परस्पर उद्भावना-राग का प्रामाण्य बढ़ और द्वेष-श्रेय की भावना पशुओं को मारने और उनसे घटने को बचाने में थी । कभी-कभी पुरुषों में परिवार की जन-नायिका के कारण संघर्ष हो जाता था । यही नहीं नायिका भी अपनी शक्ति से विरक्त होकर कभी एक को और कभी दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखने लगती थी । इससे पुरुषों में जहाँ स्त्री का प्रेम पाने की शीघ्रता उत्पन्न हो रही थी वहाँ दूसरे के प्रति ईर्ष्या भी घटकर आगता था । फिर भी उस समय तक मनुष्य जाति अपने हृदय के भावों को छिपाने भूट ढोलने तथा घल करन की प्रवृत्ति नहीं जानती थी । उस समय स्वामाधिक प्रति से मनुष्य का विकास हो रहा था । इन्द्रियाँ प्रकृत व्यास नीर की तरह उत्पन्न होने पर क्षुब्ध होती थी । एक बात और मनुष्य प्राणि जाल से मुरा-सौम, मैरेय मनुष्यर प्रादि न जाने कितने-कितने मर पीरे का शरीर हो रहा था । उस समय भी इसका काशी प्रचार था । छद्म की सुरा उस समय बनाई जाती थी ज्ञाना सुरा भी उस समय की गतने मनुष्य जाति को बढ़ाने उत्तेजित करने में अधिक सहायता की शक्यता उसके विकास में अबाधित इतनी क्षीणता न आती । हमारा ध्यान इससे इतना ही है कि पर ने जसकी इन्द्रियों की उत्तेजित किया । पुरुषों के शरीर पीरे और बढ़े । मांसपेशियाँ जमरी हुईं स्ति हुए शरीर गठोर और सुन्दर, कमर में बमड़ा या भीत्रपत्र का परिवार, घन शरीर गुला गुला । त्रियाँ भी बसे ही परिपान में किन्तु शर्म का उत्तरीय जिसमें भीतर की तरफ नेहों के बाल और बाहर की तरफ बमड़ा । लवण—संख्या सुर्यास्त से कुछ गुण । जन—पूढ़ काश्देय कन्धे पर पी की बहिष्ता की बोड़े समय पुगे जन में

उत्पन्न हुई है लावे या रखा है। उसके पीछे जन-नामिका काटवेयी लकड़ी का घड़ुर लिये जाती या रखी है। उसके पीछे ज्यकी ठौरह साल की लकड़ी है, उसके तिर पर भी कन्ध काट है। काटवेयी बड़िया को घाग के पास लाकर काटा कर बैठे हैं। काटवेयी लकड़ी नीर लकड़ी कन्ध उठाकर कुटीर के एक कोने में रख बेतो हैं। काटवेयी कन्ध काटों को एक-एक करके घाय में डालती है। लकड़ी बमड़े को मध्यक उठ कर बाहर जाती जाती है। कुछ घाय के पास बड़िया के शरीर पर हाथ फेरता हुआ—]

काटवेय—तूने सुना, काटवेयी ?

काटवेयी—क्या ?

काटवेय—स्पेष्ट काट कर रहा था, हम क्षम नहीं रहेंगे।

काटवेयी—क्यों ?

काटवेय—इच्छिन्न कि घूमते रहना व्यय है। एक जगह रहने से ठीक होगा। कृषि करेंगे। सब-कुछ विगका जा रहा है, काटवेयी, हम लोग सदा से घूमते रहे हैं। कित्त दिन घूमना छोड़ देने उत दिन घूमना न जाने कैसा होगा। मैं बार-बार करता हूँ, क्षम आगे बढ़ो, मुझसे तो क्षम एक जगह रहा नहीं आता, दिन भर बार-बार बड़ी बैलाते रहना, बड़ी सरित्, बड़ी पर्वत, बड़ी भूमि, बड़ी सब-कुछ।

काटवेयी—(बमड़े का परिचाल घींती हुई। पहले नौक्यार लकड़ी से छेद करती है फिर बमड़े का जोष पिरोती है।) यह तो जुग है, काटवेय ! रोज नया दिन आता है, नई राति आती है नया राति उगता है सब नया-नया। फिर हम क्यों एक ही स्थान पर रहे ?

काटवेय—मध्यम काट भी नहीं करता है, और इच्छि भी नहीं उठा क्या चाहती है, और मध्यमा काटा ?

काटवेयी—न जाने, पूछा तो जेमे नहीं है। पर उनके चाहने से क्या होता है जन-नामिका तो मैं हूँ न जो मैं पाहुंगी, वह होगा। काटवेय, जो तू पाहेगा, बड़ी होगा।

कादंबेय—(बुप रहता है)

कादंबेयी—(सीना बन्द करके) जानती हूँ, कादंबेयी ! मुझे दिखाई देता है, जैसे हम अब तक रहते आए हैं, जैसे अब नहीं चलेगा। यदि द्वितीय कादंबेय सिंह से सड़ते न मारा गया होता, तो आज ये क्या इतना सिर उठाते ! वे ठठे मगनते भी छा बहुत थे। खेप्ट तो उसके लिए अब भी कमी-कमी रो उठता है, यही हाल और दोनों का भी है। मरु विचार है, विचार ही नहीं निरूप्य है कि पुत्र सब मध्यम कादंबेय की सन्तान हैं, और उपा और मरुमा तेरी सन्तान हैं। पर मैं तो सबकी हूँ न ? ( फिर बीती है )

कादंबेय—हाँ, छो तो है ही, ( हँसता है कादंबेयी बन्द निकालकर कादंबेयी को बेती है और घाय भी जाती है। कादंबेय पास ही कौने में रसें बर्त-कादंबेय से बचक में मरु निकालकर पीता है। ) नू भी पिपेयी ? से। ( देता है )

कादंबेयी—(बीती हुई एकदम घटकर) देन्वू, मैरेव हुआ।

कादंबेय—मैरेय मुझ मुझ बचकी लागती है। शरीर में नर शक्ति आ जाती है। पैता लगता है, मैं इस समय हो-यो किहों से सड़ सकता हूँ। पर जाने क्यों, मैरे सिर के कण श्वेत होते जा रहे हैं, बाड़ी भी।

कादंबेयी—फिर भी नू मुझे बचका लागता है सभी मुझ बचके लागते हैं। कमी-कमी उपा और मरुमा काद्रा को देलकर लागता है जैसे ये मैरी होती हुई भी मेरे लिए बनिष्ट हैं।

कादंबेय—क्यों ? ये भी तो ठरी तरह सुन्दर हैं।

कादंबेयी—बस, यही, यही तो है, भितसे मैं कमी-कमी उन पर श्रेष कर बैठती हूँ।

कादंबेय—किन्तु शोध करने से क्या ये सुन्दर न लगेंगी ? उनका बसुरकल कितना पुत्र होता अब रहा है और रोम-रामी बढ़ती जा रही है, यही रोमा के लक्षण हैं, कादंबेयी ! किन्तु मैं तोचता हूँ, यह कृपि क्या होती है ? पत्नी माता का उदर फाड़कर बाहार सेना क्या मली बात दे,

बैसे ही हम को किस बात का अभाव है ? यह गोत्र वाले न जाने क्या नया कह रहे हैं। उसे वे अन्न करते हैं।

कात्रवेयी—हाँ, उसे वे अन्न करते हैं, अन्न की क्या आवश्यकता है, कात्रवेय !

कात्रवेय—करते हैं अन्न ही हमारा जीवन है। सर्वथा नर नहीं मृत रहता हूँ। अब तक जो हम लोग खाते रहे हैं वही क्या हमारे जीवन के लिए नहीं था ? उष्य नहीं धारै ?

कात्रवेयी—कमी-कमी सोचती हूँ, क्या सोचती हूँ, पताऊँ ? मैं सोचती हूँ, यदि मैं ही होती, उष्य और मध्यमा कात्रा न होती तो कैसा होता ? न जाने क्यों कमी कमी ऐसा विचार मुझे आ जाता है।

कात्रवेय—(बककर) न जाने क्यों तू ऐसा सोचती है, मैं तो कुछ भी नहीं सोचता। मैं सोचता हूँ, पशुओं से लड़ने के लिए यह आवश्यक है कि हमारा परिवार बड़ा हो। हमने दो धर्मिताओं को पिछले दिनों में लो दिया—मध्यम और कनिष्ठ को ! हाँ, उस समय मुझे कमी-कमी लगता था, यदि वे दोनों कहीं चले जाँ तो कैसा रहे ? तो क्या जाने मेरे सोचने से ही वे पतल गये। न जाने मैंने क्यों ऐसा सोचा। पृथ्वी को तिर मुझकर अब मैं कई बार कह चुका हूँ कि अब मैं वैसा नहीं सोचूँगा। तू भी वैसा न सोच कात्रवेयी !

कात्रवेयी—अच्छा ! (सिंती है)

उष्य—( जल लेकर आती है और एक कोने में रखकर ) अब लोग आ रहे हैं उनके साथ और भी हैं।

दोनों—कौन-कौन बुद्धिवा ?

उष्य—दूसरे गोत्रज। देखो, वे आ रहे हैं। वृष्य तुम्हें लिया मैं ! अच्छा मैं बुद्धिवा हूँ।

[ दोनों हाँ-बैठो गाय बकरियों का दूध पिलाने बाहर जाती जाती हैं। कात्रवेय मरैय निकालकर पीता रहता है इसी समय तीनों कात्र जो गोत्रज और उनके साथ एक कुमारी आती है। 'आवाज' 'पृथ्वीज' की

घाबान्न लागती है। ]

काइवेय—आओ, आओ नए गोत्रज, स्वागत !

[ सब के हाथों में बड़े-बड़े बंध लथा कर्करी है ]

श्वेष्ठ काइ—देखो, ये नए गोत्रज हैं, हमारे पत्नीही पंचजन ।

काइवेय—पंचजन क्या, श्वेष्ठ काइ !

नया गोत्रज—हम लोगों का परिवार 'पंचजन' कहलाता है, काइवेय ! बहुत दिनों से हम लोग यही हिमालय की उपत्यका में रहते हैं। हम लोग श्रीहि-कृष्ण हैं ।

काइवेय—श्रीहि-कृष्ण क्या ! मैं समझ नहीं ।

नया गोत्रज—शांति एक प्रकार का धर्म्य होता है, उसी को हम लोगों ने आहार बनाया है। आगे-आगे बढ़ते आओ, तुम्हें नए लहलहाती श्रीहि की कृपि दिखाई देगी—और गोधूम की भी ।

काइवेय—इस स्थल में आए मुझे चार शुक्ल पक्ष बीत गए, सम्मन है, अधिक बीते हों मैंने देखा, यहाँ के लोगों में अपनी प्राचीन प्रथाओं को ठोक दिया है। हम लोग सदा घूमते रहते हैं, तुम लोग एक स्थान पर बस गए हो। हम कन्द-मास लाते हैं, तुमने अन्न उत्पन्न करना प्रारम्भ कर दिया है। सब नई-नई बातें सुनता हूँ, भातर !

दूसरा गोत्रज—नया-नया ज्ञान, नया-नया दिन, नए-नई राशि, नया-ही-नया तो है, काइवेय !

काइवेय—हम लोग नए पत्नी देखना चाहते हैं। एक स्थान पर रह कर तो नया नहीं हो सकता, पंचजन ! नया बेश दलो। जैसे दिन का रेश घूमता रहता है, क्यों न हम लोग भी चलते रहें ! नदी बहाती है, भरने चलते हैं, रुक जाना बुरा है, पंचजन !

प्रथम गोत्रज—हाँ, रुक जाना बुरा है; किन्तु सोचकर चलना ही अच्छा है। हम साग अब तक क्या ही भ्रमण करते रहे हैं। बलुत हमारे पूर्वजों न एक जगह स्थिर होने के लिए ही भ्रमण किया था। जैसे दिन चलकर सप्ताह में समाप्त हो जाते हैं और सप्ताह मास में, उसी



तरह हम लोगों ने यहाँ निवास करने का निश्चय किया है, काद्रवेय ।  
 वृत्तरा गोत्रज—देखते नहीं हो, कितना मुन्दर है सब कुट्ट ।

व्येष्ठ कात्रा—बहुत: रिता काद्रवेय । मेरा, यहाँ बहुत मन लगता है । हाँ, तुम मे इस गोत्रज को देना ! देखते नद ।

काद्रवेय—देख रहा हूँ व्येष्ठ कात्रा ! क्या इन्कर और लोग भी रहते हैं ।

प्रथम गोत्रज—मैं गोत्र नहीं जानता, तुमते हैं हम लोग पुराने समय से इसी तरह चलते, उदरते पूर्व से चले आ रहे हैं । यह भी कहते हैं कि हमारा वंश पुराणा है, उसका एक भाग मेरा परिवार है ।

द्वितीय गोत्रज—अच्छा तो है, रहो, नहीं रहो । कृपि करो, बहुत सुन्दर भूमि है । मेरे पिता को यह भाग मिय है काद्रवेय । मुझे भी और मेरे इत भातर को भी ।

काद्रवेय—अच्छा ! यह पहिला ही अवसर है कि मैंने जीवन में वृत्तरे मनुष्यों को देखा है । मैं तो छया बनों में नदी के तटों पर इसी प्रकार परिवार के साथ बूमता रहा हूँ । एक बार एक मनुष्य मिला था उसने इस (उपा के लिए संकेत है) का नाम उपा कात्रा रक्त दिया । तब से हम में भेद हो गया है नहीं तो अब तक हम लोग व्येष्ठ, मध्यम अनिष्ठ के नाम से एक वृत्तरे को पुकारते रहे हैं । मुझे यह अच्छा नहीं लगा ।

व्येष्ठ कात्रा—नाम तो पहिचानने के लिए रक्ता जाटा है । इतका ( नई गोत्रजा का ) नाम विश्वावारा पंचजन है मुझे मिय है ।

प्रथम गोत्रज—मेरा नाम विश्व पंचजन है । इतका ( जोरे का ) नाम रुद्र पंचजन है । हम लोग पंचजन हैं न ।

[ काद्रवेयी और उपा कात्रा कुछ की मज्जल करकर जाती हैं ]

काद्रवेयी—(घ्रातर्च्य से) इतने कम ! तुम लोग कहाँसे आने !

सब गोत्रज—हम पाठ ही रहते हैं ।

काद्रवेयी—अच्छा, बहुत अच्छा है । मैंने बहुत दिनों के बाद इतने व्यक्तिओं को देखा । मेरे मध्यम और अनिष्ठ काद्रवेय अब से मरे हैं तब से

यहाँ आकर इतने मनुष्यों को परिवार में देख रही हूँ। बेटा, तुम लोग तो बड़े सुन्दर हो।

उषा काका—( प्रथम पोट्रज से ) आज तुम मेरे साथ नृत्य करगा मला। (उत्तका हाथ बझू मित्ती है।)

मध्यमा काका—मैं तुम्हारे साथ ( द्वितीय पोट्रज के साथ ) नृत्य करूँगी, आज बहुत सुन्दर होगा।

श्वेत्क काका—मैं विस्वाकार के साथ नृत्य करूँगा।

मध्यम और कनिष्ठ—नृत्य हमें प्रिय नहीं है, हम बुन्दुभि बजायेंगे।

[ काका निराल घाता है। काकाबेयी सब को बँठाकर कन्ध बेती है और नीर-बचक पिलाती है। इतने बाद काकाबेय मेरेय सुरा सब को पिलाता है। इसी बीच में आते-आते लोग 'हो-हो' करके गाने लगते हैं। पोट्रज कर्करी (बंसी) बजाते हैं। मध्यम और कनिष्ठ काका बुन्दुभि बजाते हैं। सब नाचते हैं। नाचते रहने पर 'हो-हो' की ध्वनि से सारा प्रवेश बूब पठता है। हो-हो-हो-हो ही-हो-हो बस यही उदात्त-घनुराल पुस्त स्वर है। इसी बार-बार पुहराये जाते हैं। कभी-कभी बुन्दुभि रोक कबल कर्करी हो बजता है। इसी प्रकार नाचकर सबके बैठ जाने के बाद वे फिर मेरेय पीते हैं, इसी समय ]

विश्व पंचजन—काकाबेय, मुझे आज्ञा हो, मैं मध्यमा काका से विवाह करना चाहता हूँ, यह मुझे प्रिय है।

काकाबेय काकाबेयी—पाणिग्रहण करो भाकर, विवाह हम नहीं जानते। विवाह क्या होता है ? वह नर बाण है।

विश्व पंचजन—हमारे प्रीतिग्रहण परका पंचजन की आज्ञा है कि प्रत्येक युवक प्रत्येक युवती से विवाह के बिना नहीं मिला सकता।

[ काकाबेय-परिवार के लोग आश्चर्य से बच रहते हैं। ]

विश्व पंचजन—विवाह का अर्थ है उक्त युवक का कबल विवाहित युवती के साथ रहना। वह और किसी के साथ नहीं रह सकता।

काकाबेयी—नहीं, यह नहीं हो सकता। यह नहीं बात हमारे परिवार में

नहीं हो सकती। इसका अर्थ तो यह हुआ कि मध्यमा इन काशों के साथ नहीं रह सकती। वह नहीं हो सकता काशबोध।  
काशबोध—नहीं, ऐसा नहीं होगा। मेरे परिवार का मरना ही जायगा। नहीं भावर।

मध्यमा काश—मुझे विश्व वंशजन प्रिय लगता है, काशबोधी माँ। मैं और नहीं रह सकती। मैं उषी के साथ जाऊँगी।

काशबोध—मैं सब नर्त-नर्त बातें सुन रहा हूँ। क्या इस प्रदेश में जाने से हम लोग अपनी पुरानी पत्नी छोड़ प्रयाग को छोड़ देंगे।

श्वेच्छ काश—अब तक हम लोग अपने-अपने परिवार के साथ रहते थे। यहाँ हमारी तरह के बहुत से परिवार रहते हैं। इन बार पक्षों में मैंने भूम-भूमकर के परिवार देखे हैं। कितने सुखी हैं वे। कितने सम्पन्न हैं वे। प्रिय रहना हमको स्वीकार नहीं है। बन्धु वंशजन के पास बैठकर मुझे बहुत ही नर्त बातें बातें हुए हैं। हम मिलकर एक वृद्ध की लक्ष्यता कर सकते हैं अपनी उन्नति कर सकते हैं। हम आगे बढ़ना है।

काशबोध—आगे बढ़ना है, तो बढ़ो। यशो, आज ही हम लोग सब लेकर चलते हैं।  
विश्व वंशजन—आगे बढ़ने का अर्थ उन्नति करना है काशबोध। भूमना नहीं।

काशबोध—इसको जान की क्या आवश्यकता है। हमारे पास क्या नहीं है।

श्वेच्छ काश—हम देखो कं वारे में कुछ नहीं आमतें। बन्धु वंशजन बढ़ रहे थे इस हमारा देव है, अम्ब्रमा हमारा देव है पृथ्वी हमारी देवी है, यशो हमारा देव है।

काशबोध—सूय और अम्ब्रमा हमारे देव हैं। नर्त बात है।

श्वेच्छ काश—हम लोग भी किसी गोत्र में मिलकर रहेंगे। वह हमारी रक्षा करेंगे। हम लोग नए बल्य बनाएँगे। मैंने एक गोत्र के मनुष्यों के पास बैठकर मारने वाले अल्प देखे हैं। क्या करते हैं उनको विश्वास।

विश्व—बाबू ।

ज्येष्ठ काका—बही हमको चाहिए । कृषि क द्वारा जो अन्न उत्पन्न होगा, उस हम काहेगे । उसका रुप हमारे से पशु लायेंगे । कितना मुल होगा, पिता काइलेय । यह देखो, यह अन्न मैं लाबा हूँ ( बोझा-सा निकाल कर बिजाता है । सब सोच घ्राइबर्ष घोर उत्सुकता से देखते हैं ) लाकर देखो । ( काइलेय का परिवार जाता है । )

सब—सुन्दर है । हम और भी लायेंगे ।

मध्यमा काका—इन परिवारों के घर चितने सुन्दर हैं । इनके पास धर्म-परिधान भी तो सुन्दर हैं । मैं विश्व के परिवार में रहूंगी, काइलेयी !

काइलेयी—नू क्या मुझे छोड़कर खली जायगी काका ! कल को उध भी खली जायगी इत तरह तो । फिर हम लोगों का परिवार समाप्त न हो जायगा ! मैं बूढ़ी हूँ, मैं कर्तक तुम लोगो का विवाह कर सकूंगी ! काका !

ज्येष्ठ काका—मैं विश्वाबारा क साथ विवाह करूँगा न ? यह मुझे प्रिय है, माँ !

काइलेयी—इस बदल-बदल से तो यह अन्धा है कि अपने-अपने स्वकिस अपने ही घर में रहे ।

[ ज्येष्ठ को इसका उत्तर नहीं सुझता चुप रह जाता है । ]

विश्व पंचजन—बध्श पंचजन करते हैं कि एक परिवार की कन्या उसी परिवार में नहीं रहनी चाहिए । ये तो एक गोत्र को कन्या का उस गोत्र क ही मुखक से विवाह करने के पक्षपाती भी नहीं हैं ।

काइलेयी—सब नया ही नया, भातर कैसे होगा ? मैं नहीं जानता, मैं तो इस प्रेश म लाकर मूल-सा गया हूँ । विवाह नया दाम है, न पाठ है, कृषि भी नर नात है । काइलेयी, यह सब क्या हो रहा है ?

काइलेयी—मह एक और भी कठिनाइ है, उरा आ रही है, म यम्य क्य रही है । एक और विश्वाबारा था रही है । ये मुख न जान क्या करमे आ रहे हैं, काइलेयी !

**स्पेष्ट काज**—नया कुछ भी नहीं है, बस्य पंचजन करते हैं हम लोग तथा इस तरह नहीं रह सकते। जहाँ टहरेंगे वही हमारा समाज बनेगा। हमें उक्त समाज के लिए धरने को तैयार करना होगा। लड़ाई मझाड़े से बचने के लिए यह आवश्यक है कि एक परिवार की कच्चा दूसरे परिवार में जाय। इस तरह आपस में प्रेम बढ़ेगा, समाज सुन्दर होगा।

**विश्व पंचजन**—दिल्ले दिनों हमारे परिवारों में कुछ-कुछ परिवारों की कच्चाओं को मगाकर लाते रहे हैं। बस्य पंचजन इसमें भी विरोध करते हैं। इससे विरोध बढ़ता है, सुन्दर होते हैं। इसीलिए बस्य ऐसा करते हैं। इस प्रकार परिवारों में सुखित को मगाकर लाने की प्रथा भी बन्द हो गई है।

**जवा काज**—मुझे यह अच्छा समता है, काजवेन। उक्त दिन मैं मध्यमा के साथ एक गोन में जा पहुँची। उनका स्थान मुझे अच्छा लगा, वे लोग घर बनाकर रहने लगे हैं। अहो! कितने सुन्दर हैं यहाँ के पुरुष। मध्यमा—थकते रहने से हम बक गए। एक ही परिवार के लोग को देखते हम बक गए हैं।

**कनिष्ठ काज**—मुझे यह सब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जो बर्दा जाना चाहता है, जाय, मैं तो भूमना चाहता हूँ। मैं काजवेन रिता के साथ ही रहूँगा।

**मध्यम काज**—मैं चाहता हूँ जो होता है, उसे होने दो। विवाह बुरी बात नहीं है। मैं तो देख रहा हूँ, बटवर इसी तरह भूमते रहना कठिन है। हमारे भूमने की सीमा भी है। विरवाबारा के साथ स्पेष्ट काज को मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ। एकदम मैं, नदी के तट पर, मध्यमा से मरी रातों में वे दोनों बातें करते रहे हैं। मध्यमा काज भी विश्व पंचजन के साथ भूमती रहती है। वे यहाँ मालूम होता है रोके से बक नहीं सकते। क्या प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने का अधिकार नहीं है?

कादंबेयी—मैं क्या चाहती हूँ कि ये विवाह न करे। करे, पर मैं तो कादंबेय के साथ रहूँगी, मैं इसका साथ नहीं छोड़ सकती। भला यह विवाह होगा कैसे ?

कादंबेय—जैसे भी हो, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मैं रोक भी नहीं सकता। प्रत्येक को अपनी इच्छानुसार चलने का अधिकार है। मध्यम कादंबे की बात मैं ठीक समझता हूँ, वही हम में सबसे समझदार है। मेरे शरीर में अभी बल है। मैं अभी भ्रमस कर सकता हूँ, मैं एक स्थान पर नहीं रह सकता।

कादंबेयी—मैं भी साथ चलींगी।

कनिष्ठ कादंबे—मैं भी। हाँ, भावर, विवाह करो, मैं देखूँ।

विश्व पंचजन—मैं बरख पंचजन को लेकर आता हूँ। वे हमारे प्रदेश के, परिवार के, सबसे बड़े पुरुष हैं, वही विवाह करायेंगे। ( जाता है )

अपा कादंबे—यदि उन्होंने न माना तो ?

कनिष्ठ कादंबे—उन्हीं की आज्ञा से मैं विश्वावारा के साथ विवाह कर रहा हूँ।

[ तब लोग बैठकर मेरेप गुरा बीते हैं। प्रायः बराबर बल रही है ]

मध्यम कादंबे—( ऊपर छाकाघ में जाकर जा को देखकर ) यह चन्द्रमा कितनी बुर होगी, कादंबेय ?

कादंबेय—यह भी तो घूमता रहता है, मध्यम।

कनिष्ठ—भला, इस घूमने का कहीं छोर भी होगा ?

कादंबेय—यह पृथ्वी हमारे घूमने के लिए बनाई गई है। यदि हमको एक जगह स्थिर रहना होता, तो यह छोटी होती।

मध्यम—बड़ा विचित्र है! दिन में सूर्य निकलता है, रात को चन्द्रमा। क्या रात्रि का सूर्य नहीं निकल सकता ? नहीं, यह नहीं हो सकता। रात्रि को सूर्य निकलता तो वह रात्रि ही क्यों होती ? मैं भी कितना भ्राम्य हो गया। और ये तारे ! क्या यह भी बुर होगा ? अचर्य ये चन्द्रमा स भी

पूर होगे। किन्तु जो आग पूर पर जलती है, वह भी तो तारों जैसी दित  
देती है। अवरण तारे इसी तरह आग जलने के विन्दु होंगे। क  
आद्रवेय ?

काद्रवेय—मैं नहीं जानता मन्त्रम, न जाने तु क्या सोचता रहता है  
मन्त्रम—मुझे मन्त्रमा, रात्रि नहीं, ठगा कन्वा आदि को देखते  
रहना मला लगता है। जैसा यह मुझसे बातें करते हैं।  
कनिष्ठ—मुझे भ्रमस्य आख्या लगता है। भ्रमस्य करते रहना  
मोहन करना, मुरापान करना।

विशवाशारा—मुझे क्वेष्ठ काद्र से बातें करते रहना।  
क्वेष्ठ काद्र—मुझे विशवाशारा को देखते रहना।

काद्रवेय—मैं भ्रमस्य करता रहा हूँ, वही मुझे आख्या लगता है।  
काद्रवेयी—मुझे तेरे साथ रहना काद्रवेय ! पहिले मुझे वे सब आख्ये  
सागते य साथ तु ही आख्या लगता है।

मन्त्रमा—मुझे विश्व पंचजन प्रिय है।

उपा—मुझे रूद्र पंचजन का आश्रितगम। क्यों रूद्र ?  
रूद्र—हाँ प्रिये ! जो मैं बन्धु था गय।

[ विश्व के साथ बन्धु का धामा। बन्धु पंचजन की बड़ी हुई बाड़ी  
जो जपन का उत्तरीय विमाल जेन लम्बी नाक। काद्रवेय से धारणा में  
विशेष धारण न होने पर भी आकृति में लम्बीरता और तीक्ष्णमिति  
प्रकट हो रही है। उन महाकाय आकृति के धारने पर सब लोच बातों करना  
बन्ध कर देते हैं। केवल काद्रवेय 'सागत' करता है। इसके साथ सब  
सागत करते हैं। बन्धु पंचजन धर्म के समीप एक धारण पर बैठ  
जाते हैं। ]

विश्व पंचजन—पितर बन्धु, वे काद्रवेय परिवार-पति हैं। वे  
काद्रवेयी हैं।

काद्रवेय—पितर बन्धु, परिवार से पुरानी प्रथा को छोड़ दिया है।  
काद्रवेयी—पितर बन्धु, विवाह क्या होता है ?

विश्व पंचजन्य—वितर बरब, मैं मरममा काद्रा से विवाह करना चाहता हूँ।

बबल—आगर काद्रबेय, विवाह पशुओं से ऊपर उठे हुए मनुष्य के लिए आवश्यक कार्य है। पशु बिना हाथ के लाते हैं, हम हाथ से मोजन करते हैं। हम हाथ से कई अन्य कार्य करते हैं। इतसे ठिय है, हम पशु नहीं हैं। इसलिय हम पशुओं की तरह नहीं रह सकते। विवाह पशुता को रोकने के लिए है।

काद्रबेय—मैं कुछ भी नहीं समझ।

काद्रबेयी—मैं कुछ-कुछ समझी हूँ, वितर बरब। हम पशु नहीं हैं, मनुष्य हैं, फिर पशु की तरह नहीं रह सकते। हमें मनुष्य बनना होगा।

काद्रबेय—किन्तु तेरे समझने से मैं कैसे समझ सकता हूँ ?

काद्रबेयी—वही कि जैसे पशु बिना निबम के एक दूसरे से मिलते हैं, वैसे हम को नहीं मिलना चाहिए। मैं कभी-कभी सोचती हूँ, ऐसा हम क्यों करते हैं ?

बबल—(काद्रबेय से) यदि कोई काद्रबेयी को तुम्हारे सामने से उठा कर ले जाय, तो तुम्हें ।

काद्रबेय—(एकराम) मैं उसे मार डालूँगा, वितर बरब। वह मुझे प्रिय है। मुझे कमिष्ठ और मध्यम काद्र मी कभी-कभी बुरे लगते थे।

काद्रबेयी—वह मुझे प्रिय है, वितर।

बबल—ठीक है, तुम्हें बुरा लगीगा। इत बुरा लगने और मुझ रोकने के लिए आवश्यक है कि मुझक मुवती एक-दूसरे को सदा के लिए चुन लें और कोई व्यक्ति उन दोनों के बीच में न आवे, इत चुनने का नाम ही 'विवाह' है।

मरममा काद्रा—वह ठीक है। मुझ रोकने के लिए आवश्यक है कि मुझक मुवती एक-दूसरे को सदा के लिए चुन लें। और कोई व्यक्ति उन दोनों के बीच में न आवे, इत चुनने का नाम ही 'विवाह' है।

मरमम काद्र—वह ठीक है। मुझ रोकने के लिए वह आवश्यक है।



पितर वरुस ! विवाह इसीलिए आवश्यक है ।

कात्रवेय—जब मध्यम कात्रवेय कहता है, तब यह आवश्यक ठीक होगा । मैं इसको परिवार में समझदार मानता हूँ, पितर वरुस ! किन्तु एक स्थान पर रहना तो किसी तरह भी ठीक नहीं है ।

वरुस—हम पशुओं से इसलिए भेष्ट हैं कि हम सोच सकते हैं, वे सोच नहीं सकते ।

कात्रवेयी—ठीक तो है कात्रवेय के नहीं सोच सकते हैं । अरे, वे तो बोलते भी नहीं हैं । सतयुग आज वह बात समझ में आई ।

वरुस—मनुष्य इसीलिए भेष्ट है कि वह जानी है । ये नहीं, पर्वत, वृष, पशु सब मनुष्य के काम के लिए हैं, हम इनके लिए नहीं हैं ।

कात्रवेयी—विलकुल-विलकुल । आहा, क्या सुन्दर बात है, कात्रवेय ! पशु हमारे लिए हैं, ठीक तो है ।

वरुस—इन पर्वतों, नदियों, वृषों, पशुओं केद्वारा हम बहुत कुछ जान सकते हैं । उनसे काम उठा सकते हैं । जब हमारा समाज बड़ जायगा, तब हम । तुम मे कुटीर बनाया है, पशु कहाँ बना पाते हैं !

क्येप्ट—विवाह, वरुस पंचजन !

विस्म पंचजन—हाँ, पितर !

रा—हाँ ।

वरुस—( विस्म और मध्यमकात्रा से क्येप्टकात्र और विवाहावा से, तथा रा और जवा से ) अग्नि सब को जलाता है, तब को प्रभारा देता है ।

बो-बो का युग—हाँ, वरुस पितर !

वरुस—वह पृथ्वी हमको चारस करती है ।

बोनों—हाँ, वरुस पितर !

वरुस—यह चन्द्रमा हमको रात्रि में प्रकाश देता है, मार्ग दिलाता है ।

बोनों—हाँ, पितर !

बबल—इन्को साझी करवे करो, तुम सवा एक बूँदरे के साथ खीगे और किती के साथ नहीं।

बीनों—हाँ पिठर, हम ऐसे ही करंगे।

बबल—मुल-मुल मैं।

बीनों—हाँ, पिठर।

बबल—बहुत से पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न करोगे ?

बीनों—हाँ पिठर, बहुत से पुत्र पुत्रियाँ उत्पन्न करंगे।

बबल—दोनो पाणि-महाय करो।

बीनों—( बीनों पाणिग्रहण करके ) बबल पिठर, हम नहीं कहते हैं।

बबल—तुम्हारा विवाह हो गया।

कात्रबेयी—अरे कात्रबेय, किठनी अन्धो बाते हैं। क्या भेट भी विवाह हो सकता है, तबब पिठा ?

कात्रबेय—कात्रबेयी हमको ठसको आवरबकता नहीं है। यही तो हम बहुत दिनों से करते आ रहे हैं।

बबल—तुम सब लोग अपनी पत्नियों को लेकर रहो, सृष्टि बदाओ, कृषि करो, सुन्दर-सुन्दर घर बनाओ, पशुओं को पाओ, एक बूँदरे की सहायता करो।

सब - ऐसा ही करंगे, बबल पिठर !

मम्बम कात्र—पिठा बबल, यह रात-दिन, उपा-ठप्पा, अम्भ्र, नही आदि मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। ऐसा लगता है, ऐसा लगता है, जैसे मुझसे वे कुछ करते हैं, पर मैं समझ कुछ नहीं पाता।

बबल—मैं भी कुछ समझ नहीं पाता पर किठना मैं जानता हूँ, यह तुम्हें बठाऊँगा, तुम मेरे साथ बसो, मम्बम काद्र।

कात्रबेयी—पिठा बबल, यह मेरेय पियो, सो, तुम सब भी पियो।

[ सब पीते हैं फिर 'हो-हो' करके पाने-भाचने

सगते हैं कर्करी बजती है। ]

[ परदा गिरता है ]

## वैवस्वत मनु और मानव

[जल-प्लावन के परवात् धार्य-संस्कृति के विघ्नस का एक चित्र]

### पात्र-परिचय

मनु	वैवस्वत मनु
इरा	मनु की पुत्री पुष्य बेश में सुसुम्न
अहो	मनु की पत्नी
अश्वती	शुनि कन्या इक्ष्वाकु की पत्नी
सुवता	शुनि-कन्या, श्याति की पत्नी
अपत्या	शुनि-कन्या
घोषा	
अश्वती	शुनि-कन्या
धुप	इरा का पति

विश्वामित्र ब्रह्मिष्क, अग्नि धुप संविरत अश्वि आदि ऋषिर्षय इक्ष्वाकु आदि वत पुत्र ।

बाहुकि विष्णु अंबोमुखा, अंबट, अग्नि वत आदि वस्तु तथा राक्षस ।

इराज—विश्यायी नदी । तिन्यु के हीनी ठर ।

काल—जल-प्लावन के परवात् जब मनु ने देखा कि सृष्टि नहीं आस्त-वस्त है मनुष्य विष्ट लक्ष है, नदी की अश्वतरणा है, सामाजिक व्यवस्था नहीं है ठर तयव—

## पहला अंक

### पहला दृश्य

[ एक प्रहर दिन बढ़े—प्राथम में मयघाता पर बंधस्वत मनु बंटे हैं। बड़ी हुई कटारें, बड़ी धीर मूर्तों से भरा हुआ तेजस्वी मय। सामने जोरपत्र में बेबी बनी है जिसमें से बोझा-बोझा बूम उठ रहा है। सामने जोरपत्र के कय चौड़े पत्ते हैं जिनमें ज्यि-य्यत की बेबी का चित्र बना रहे हैं। सामने सरकण्डे की लाम जगदम पिता हुआ एक बोलने में रखा है। सामने सरकण्डे की लैखनी। मनु पत्र पर कुछ गुनगुनाते हुए लिख रहे हैं फिर लैखनी रस कर उसे बलने मगते हैं। फिर लिखते हैं। कबीर में सिरहाने की धीर की भूमि तकिये की तरह उठी हुई। उसके सामने एक धीर पत्तों का प्रस्तन बना है। एक छोटा घाला जिसमें बन की लकड़ियों के छोटे टकड़े रखे हैं। ये ही टकड़े रस को बीप की तरह चलते हैं। दूसरा घासत नामो है। घास-नास कय मूर्तों के बावक मूम रहे हैं। कभी-कभी कोई मृग घाकर ज्यि की पीठ से घपना मक रागड़ने लगता है। ज्यि उसको हटा देते हैं। बहु बीवार से जाकर रमड़ता है। इसी समय लीन चार मूर्तों के बगले धीर एक मधी घाकर उठ कुटीर में एकत्र होकर खूबने लगते हैं। मनु उबर बसते हैं धीर उनके 'हूँ' करते ही जैसे जाते हैं। बोड़ी दर बार एक बहुत बालोंबाली गाम घाकर इपर-उपर सुंघती हुई हवनकण्ड के पास बिकारी हुई सामधी जाकर बैठ जाती है। कुछ ग्राहट पत्ते ही फिर उठकर धीमल हो जाती है। इसी समय सिंह के मंन की ध्वनि सुनाई देती है धीर भुण्ड के भुण्ड पम कुटीर के भीतर जाने लगते हैं। इतने में बाल-मुबक शर्माति घाकर उन्हें बाहर निकाला है। मुबक का घपोनाग मृग-बर्म से डका रैसहीन मुल बड़ी-बड़ी

घाँसें बिखरे बात । सुगन्ध बयस लयमय तोलतू बर्षं किन्तु बेकाने में पूर्ण  
बलिष्ठ बंधे में मूत्र का यज्ञोपवीत कमर में मूत्र की तानड़ी । एक  
बंधे में पशुप वीछे झलत छे बंधे हुए कुछ बेहरे बात । मनु बातक को  
प्राया बात धीर पशुओं को जागते बेककर ]

मनु—जीवन तकको प्रिय है श्यामि । कदाचित् सिंह के गर्जन से  
असमर्थ होकर वे पशु हजर आ गये ।

श्यामि—किन्तु पित से कुटीर हमने अपने लिए बनाए है, पशुओं  
के लिए नहीं । ( पत्र पर बल की रैछाएँ बेकता है ) ये रैछाएँ मूत्र लीची  
हैं । क्या है ये ? ( पत्र मूककर बैठ जाता है )

मनु—( रैछाओं को ध्यान से देखते हुए ) पत्र-कुत्रह का विष दे  
श्यामि ।

श्यामि—आवरकच्छा ? ( भड्डा श्यामि बेटा श्यामि पुकारती हुई  
भीतर आ जाती है ) हाँ, माँ, क्या है, देखो, पिता ने यह क्या बनाया है ?

भड्डा—घरे देख, कोई सिंह हजर आ गया है उसके सम्पूर्ण पशु  
माय रहे हैं ।

श्यामि—तो क्या वह कुछ करता है माँ ? रात को कुछ भैया उसे  
पकड़कर लाते हैं । उसे कुटीर के बाहर एक रथूल से बाँध दिया है ।  
यही कमी-कमी गर्जता है माँ । मैं यही देखने के लिए आया था कि  
वे पशु मागे क्यों आ रहे हैं ? ( गर्ब में भरकर बाहर निकल जाता है )

भड्डा—मनु, मैं देखती हूँ इस संसार में सब पशुओं के भीतर एक  
प्रकार का मन दिया हुआ है । फूल के बिछस के नीचे म्हामता, नरिनों  
से मूल जाने की भावना, पशुओं में हिंसक से मन धीर कर । जीवन में  
मरक । हमको सब बस्तुओं में उनके प्रतिरोध को खोजना होगा । किन्ना  
को प्रतिरिया हारा ।

मनु—उनका एक ठपान है, पत्र ।

भड्डा—कह ! क्या बेकल पत्र मनु !

मनु—हाँ, भड्डा ! कह, हदद् कह । हम देखती हो अब से मैंने हसका

प्रचार किया है तब से लोगों में साहस बढ़ गया है। देवताओं जैसा बल  
आओं को प्राप्त हो गया है। अब सब लोग बड़ करते हैं। हम लोग  
निर्बल हैं न ?

पद्मा—हाँ, देवता ही तो हमारा बल हैं। देवताओं में विश्वास  
करो। मनुष्य, मनुष्य नहीं नहीं। उस दिन' हाँ, उठी दिन तो अब तुमने  
दो अरक्षियों के संघर्ष द्वारा अग्नि को उदग्मन किया तभी से मैंने समझा  
कि तुम्हीं संसार का निमाण्य कर सकोगे। उस दिन तुम्हारा ठेकस्वी मुझ  
किन्तना मला लागता था। उठी ने तो मुझे तुम्हारी ओर लीचा है। एक  
बढ़ कथा हुआ है जो अपना नया पथ बनाए जा रही है। मैं कहती हूँ—  
विश्वास कर, देवताओं में विश्वास कर, ये ही तुम्हें बल देगे' किन्तु बढ़  
माने तब न !

मनु—यह देखो, मैंने यज्ञ का मानचित्र तैयार किया है। आस से  
सब किसी को बेसी इस प्रकार बनानी होगी। तब श्रुतियों के गोत्रों में  
बाकर उन्हें सूचना देनी होगी।

पद्मा—किन्तु एक बात तो देखो मनु वे नक्षत्र मुझ रात को  
किन्तने सुन्दर लगते हैं। दिन में सूर्य प्रकाशमान होते हुए भी चन्द्रमा के  
समान मधुर क्यों नहीं लगता ? अरे विवस्वान् के पुत्र मनु, ओह ! तुम  
किन्तने मर्यङ्कर देवता के पुत्र हो !

मनु—(यज्ञ के मानचित्र से दृष्टि हटाकर) मर्यङ्कर देवता ! मर्यङ्कर  
क्यों ? भद्रा, हुआ अब तुम्हारे-जैसी होती जा रही है।

पद्मा—तो तुम क्या खादते हो ? देखो, उस ओर मत देखना। तुम्हीं  
ने तो नियम बनाया है न ?

मनु—नहीं, मैं बड़ सब नहीं कह रहा हूँ। मैं कहता हूँ बड़ तुम्हारे  
जैसी रूपवती होती हुई भी तुम से भिन्न दिखा में चल रही है। बड़ अब  
देखो, तब कुछ न कुछ सोचती रहती है।

पद्मा—बड़ी तो बुरी बात है मनु !

मनु—नहीं, यही तो अच्छी बात है। चिन्तन ही हमारा प्रथम

गुप्त है ।

भद्रा—तो सोचना, प्रतिद्वेष सोचते रहना क्या अच्छी बात है ?

मनु—हाँ सोचना होगा । सोचते रहने के बिना काम भी तो नहीं चल सकता । जब सृष्टि उत्पन्न हुई है तो उस जीवन भी दिलाना होगा । जीवन बरी नहीं है जितना तुमने देखा । जीवन मरि में एक महान् वस्तु है मरि ।

भद्रा—मैं तो समझती हूँ जो कुछ हो रहा है उस पर विश्वास करते चलो । उसे बनाते चलो । देवता सब कर देंगे । (हवा का प्रवेश)

हवा—देवता सब कर देंगे । देवता क्या कर देंगे ? और देवता सब कर देंगे तो हम क्या करेंगे ? हमारा काम हमको करना होगा पिता, क्या तुम नहीं सोचते कि हमको कितना कार्य करना है ?

भद्रा—मैं तो इतना जानती हूँ, काम को जितना बढ़ाया जाय उतना बढ़ता है । किन्तु देवताओं में विश्वास करने, मरि, तप, दान से ही जीवन की सब कामनाएँ पूरा हो जाती हैं । मैं प्रतिदिन मंत्रों में बहो देखती हूँ । तर्क को मैं अच्छा नहीं समझती । सोचने से तर्क उत्पन्न होता है और तर्क से विभ्रम ।

मनु—देवता भद्रा, तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आती । आज जो मैंने बड़ का यह मानविभ्रम बनाया है, उसे ले जाकर तुम्हें आभि, भयु विश्वासिभ्र और वशिष्ठ को दिलाना होगा ।

भद्रा—मरि के सम्बन्ध में जो तुम कहोगे वह मैं मानने को तैयार हूँ ।

मनु—एक बात और ।

भद्रा—वह क्या ?

मनु—आवों को एक शृङ्खला में बंधना ।

हवा—ठीक है । मैं बही तो चाहती हूँ ।

भद्रा—किन्तु मुझे इतसे भय लगता है । देवताओं ने, वरों ने, को निवम बनाए हैं वे ठीक हैं । हमें उनके काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । जब मरि के द्वारा देवताओं को प्रवृत्त किया जा सकता है किन्तु

वे ही हमारे रक्षक हैं तब हम अपनी कर्मीं चिन्ता कर । यह हमारा काम नहीं है मनु ?

इडा—मैं यह कहने आई थी कि विश्वामित्र और बशिष्ठ में जो संघर्ष चल रहा है उसका प्रभाव उनके गोत्रों पर भी पड़ा है । वे लोग भी आपस में लड़ने लगे हैं । एक दूसरे की निन्दा करते हैं । यह क्या घबहरी बात है, मिता ! अभी क्या जो ही बात है, बशिष्ठ की गाँवों को विश्वामित्र के गोत्र के कुछ लोग रात्रि को आकर हॉकि ले गये । इस पर उनमें मुझ हो गया । दोना घोर के कुछ व्यक्ति लूट-विद्युत हो गये हैं । अब बशिष्ठ गोत्र के व्यक्ति आक्रमण की तैयारी करने लगे हैं । सम्भवतः आज वे लोग उन पर आक्रमण करके उनकी गोष्ठा को हॉकि ले जायेंगे । इसका क्या प्रभाव और गोत्रों पर पड़ेगा यही मैं सोचती हूँ ।

मिदा—वे लोग लड़ते क्यों हैं, क्या इनका देवताओं में विश्वास नहीं है ?

मनु—(मानचित्र हाथ में लिये) यहाँ तक बातचीत हो गई ? यह आज रात के लिए अन्तुचित है इडा बेटी ?

इडा—इनका प्रभाव दस्युओं पर यह पड़ा है कि उन्होंने आज गोत्रों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया है । अभी उस दिन चूपरवा की कन्या पौरवा को दस्यु ठठाकर ले गये । गोत्रों को मार डाला । राक्षसों की लहावता से गोत्र के कुछ कुटीरों में आग लगाकर जले गये ।

मिदा—यह तो घुरी बात है । देवता आशों की रक्षा करें ।

मनु—फिर पौरवी का क्या हुआ ?

इडा—अब के गोत्र के सात दूसरे दिन दिन मर भूमंत रहे तब कहीं तार्यग्रस को आकर कन्या को लोच लके । क्या हम लोगों में कुछ व्यक्ति ऐसे नहीं हो सकते जो सब गोत्रों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लें ?

मनु—बरा-बिभाग की बात मैं कर दिनों से सोच रहा हूँ इडा ।

मिदा—यह क्या, बर्य-बिभाग कैसा ? देखो तुम देवताओं के कार्य में



विष्णु न टाको । कहीं से कुछ न हो जायें ।

इडा—मैं तोम भी विभिन्न हो । देवता इतमें क्या करेंगे ? क्या हमारा कुछ भी काम नहीं है ? ( धडा बनी जाती है )

[ हाँफती हुए शश्वती का प्रवेश ]

आहा ! भगिनी शश्वती आई है ! कदो क्या समाप्ता है ?

शश्वती—(मनु को देखकर) अग्निबादन करती हूँ श्रुतिवर !

मनु—(हाव घटाकर) कल्याण हो बरसे !

शश्वती—म्हायम्न, बस आबोमुल्ल टाकस दल-बल के साथ इपर आ रहे हैं । कदाचित् कुछ दस्यु उनको इपर तुलाकर लाये हैं । वह अभी सिन्धु के उध पार हैं । यदि हम लोग समय रहते, युद्ध के लिए तैयार न हुए तो न जाने क्या हो !

[ इन्द्रवाक का प्रवेश ]

इन्द्रवाक—पिता, श्रुतिमूह इपर आ रहा है आपके बरान करने । लोग बहुत किम्वद्व्य दिखाई देते हैं ।

इडा—(इन्द्रवाक से) क्या कई गोश के लोग हैं उनमें ?

इन्द्रवाक—हाँ प्रायः सभी गोशों के हैं । मैंने जब उससे पूछा क्या बात है तो वे कहने लगे हमने सुना है दस्यु हम पर आक्रमण करनेवाली हैं । मैंने पूछा पिता मनु इतमें क्या करेंगे ? आप सब लोग मिलकर युद्ध के लिए उधत हो जायें ।

इडा—तो क्या हम बाहरे हो गोश के लोग पिता से परामर्श न करें ?

मनु—तो आगे बैठे न बेदा !

इन्द्रवाक—मैंने उन्हें कब रोका । मैं तो यह पक्ष रहा था । बाव यह है जब वे लोग आपस में लड़ते हैं तब तो तुम्हारी आका मानते नहीं, आज जब बाहरी शत्रु के आक्रमण का मनु हुआ तो तुम्हारे पाठ आ रहे हैं ।

इडा—तुम मूर्ख ही रहे मेया ! मत्ता बाहर के शत्रु के आक्रमण के

समय भी क्या हम लोगों को नहीं मिलना चाहिए ?

इश्बानु—मैं चाहता हूँ एक बार यह विरोधी दस अपने किये का फल भोग तो ले, इसीलिए मैं उनसे पूछा था ।

मनु—नहीं बेच, यह नीति ठीक नहीं है । गोत्रों में संघर्ष होना स्वाभाविक है । यही तो मैं सोचता हूँ इन गोत्रों के लिए मी कोई म कोई नियम तो होना ही चाहिए । मनुष्य का जीवन नहीं की बार के समान है केवल तयों-नियमों से ही उसे रोका जा सकता है । उन्हें जाने दो ।

इडा—आपों के वर्ग पर आरो और से तुल के मेष उम्मे आ रहे हैं । किन्तु तुल के बीच में ही तुल का कमल खिलता है ।

पार्वती—संघर्ष ही जीवन है अखिर ।

मनु—रामि के पश्चात् दिन निकलता है । न केवल यह आर्यों के जीवन का प्रश्न है । इतमें मरिष्य के सामाजिक विधानों का निमाय मी मुझे दिखाई देता है । असो मैं बाहर मिलूँगा ।

### दूसरा बुध

[ समय दोपहर । बलपुर-ग्राम में बामुकि दास की कुडीर का घांगन । सब बात एकत्रित है । अयोमुख द्विपूर्वा, शंबर बलि बल आदि राक्षस बैठे हैं । विश्वरूपा, इन्द्रिबिशा कुयाबा आदि स्त्रियाँ भी एकत्रित हैं । किसी के हाथ में नर-मांस टिन्नी के हाथ में खान-वस्त्रि है । बिचरे हुए बाल । काले रंग बाहर निकले हुए बात । बल कपाल हाथ में लिये उठे बना रहा है । अयोमुख कुले की पूँछ को बचीड़ रहा है । द्विपूर्वा आँसु बन्द-नी किये अयोमुख की घोर ताक रहा है । शंबर जमते हुए द्विपूर्वा को घूर रहा है । बलि घाकाश में उड़ते हुए पक्षियों के घगन में है । इन्द्रिबिशा कुयाबा के हाथ में नर-मांस देखकर ललचा रही है । एकप बार वह हाथ बढ़ाकर उसे लेना चाहती है तो कयाबा षटकर घीन लेती है । इस तरह सब स्वार्थ में मगन जाने में बुलि रके हुए बैठे हैं । बामुकि, बिम्न तथा दो एक अग्य बात भी बैठे हैं ।

बुझ बैठ गये हैं । ]

बल—वन्धुओं तुमको जात है कि ये युव धार्म लोग बरबर वहाँ से (बर्बि से पुछता हुआ) वहाँ से, शोकों न कभी से मी सही बदत आ रहे हैं । इन लोगों से नदियों के तट पर अपने (बर्बि से) क्या न जाने क्या पना लिये हैं ? उनमें रहते हैं ।

हिमूषा—किन्तु वे हमसे तो कुछ मी नही करते ।

बर्बि—नहा करते तो न करें । हमको तो करना पड़ेगा ।

धपोपुत्र—बह हमारी भूमि है ।

संवर—कल क तुम करते हो हमारी भूमि है । अभी कल ही तो वामुकि तुम को पुकाकर आया है । नहा तो पड़े य नरक में ।

धपोपुत्र—देख रे, बदकर बात मत कर, नही तो सर काट शर्हूंगा ।

संवर—मैं तब रुधिर पी शूंगा । तुने ही शिखा को हिमूषा के हाथों तारकर मेरा अपमान कराया है ।

धपोपुत्र—(पठकर) मैंने, बोल मैंने शरीर का धर्म स्वीकार करा जाऊँगा कुबडुर ।

संवर—हाँ तुने शूकर, गरम को शक तुने । करता है इच्छाही को रल से । क्या रल हू इच्छाही को ।

वामुकि—देको, हमने परस्पर युद्ध के लिए तुमको नहीं बुलाया है ।

बर्बि—मुनो, मुनो । बल को करता है उठको तुन मी तो सेना आदिए ।

संवर—अच्छा हाँ धपोपुत्र तू ही पुत्र हा जा भारी । संवर, तू मी पुत्र रह मही तो अच्छा न होगा ।

संवर—(अकम्पकर) अच्छा क्या न होगा । अच्छा या ही कर जो अब अच्छा न होगा ।

बल—तो तुमने यह करना है (कपाल कुबाले हुए) हाँ, मैं क्या कर रहा था ? हाँ मैं यह कर रहा था कि यह देखा हमारा है ।

बर्बि—छो तो है ही। मैं अकेला सम्पूर्ण आर्यों को मारकर मगा सकता हूँ।

प्रयोमुख—आर मुझसे पूछो तो ये लोग तो मेरा आहार हैं।

बल—आहार तो हम सभी के हैं।

बिषदक्ष्या—(बड़े-बड़े दाँतों पर भीम खेरती हुई जिसमें मांस के टुकड़े लगे हूँ तथा बर्बि होठों से बाहर बिषद मवा है) कुपावा तू तो जानती होगी उष्य खरि में कितना आनन्द है। गट गट आहा।

कुपावा—उस दिन मैं आर्यों के बासक को पकड़ लाऊँ। भाद बाह, कितना आनन्द मिला।

बल—हाँ, तो मैं यह कह रहा था, यह हमारा देश है।

बामुकि—यह तो दो बार हो चुका कि यह हमारा देश है।

बिम्म—यदि बल सहस्र बार कह तो भी यह हमारा देश ही रहेगा। क्यों बामुकि कहते क्यों नहीं? (बामुकि बिम्म का हाथ दबा देता है)।

बर्बि—हाँ, छो छो मैं करता हूँ। आगे क्या हुआ?

बामुकि—दोना क्या था? यह सब होन क क्षिप ही तो हम एकत्र हुए हैं। (प्रयोमुख से) उस दिन तुम स मैंन यही तो कहा था, कि आर हमारे शत्रु हैं।

बल—यह हमारा क्या है बर्बि, कि हम देश स शत्रु को निश्चल दें।

बर्बि—(तिर कुम्भलाकर) न जाने क्या है?

बामुकि—कसम्भ।

बल—हाँ, कसम्भ है, कसम्भ। हमको सना एकत्र करके उन पर आक्रमण कर देना चाहिए।

एक—अभी।

बुतरा—अभी नहीं रात्रि को।

बल—हाँ आज रात्रि को। सब लोग बताते कि उनक पास कितने रास हैं।

बर्बि—हम लोग हास नहीं हैं। दात कहना हमारा अयमान है।

वातुचन करो ।

प्रयोगज्ञ—राघव क्यों नहीं कहते ? मुझे तो राघव भला लगता है ।

शंकर—मुझसे भी कुछ पूछोगे या अपनी ही कहोगे ?

प्रयोगज्ञ—तू अभी बच्चा है । अच्छा कह, क्या करता है ?

शंकर—(कोब में ) फिर बही । मैं करता हूँ ( एकदम निपरकर

प्रयोगज्ञ को बठाकर पटक देता है । हस्त-शुंभी निम्नरा शीर्षों शंकर से निपरकर मौकती कावती हूँ । रासत शीर्षों को कुड़ा देते हूँ ।)

तब—हाँ, भाई हम लोग बात नहीं हैं । यह आर्यों का शिवा हुआ है ।

शंकर—आज से हम राघव हैं, बात नहीं ।

एक—मुझे तो 'वातुचन' अच्छा लगता है ।

दूसरा—मुझे 'देव' ।

तीसरा—मुझे 'दानव' ।

बल—इसको एकत्र होकर सभ्य करना चाहिए ।

कुछ—क्या उतर है ?

वातुकि—अवश्य ।

तब—अवश्य, अवश्य ।

एक—भाई वातुकि बड़ा बुद्धिमान् है ।

वातुकि—यह ठाम है कि हमारी ओर तुम्हारी ये बातें हैं । हम इस देश के प्राचीन निवासी हैं । फिर भी हम शीर्षों का उद्धार एक ही है ।

एक—(आश्चर्य में भरकर) कब-कब शब्द गार हैं वातुकि ?

दूसरा—मैंने नहीं सुना क्या कहा ?

तिसुर्वा—बहेश्व । नहीं समझ । मूल जो हुआ ।

वातुकि—मेरे पाठ दो सहस्र व्यक्ति हैं जो आपके कुछ प्रारम्भ करते ही तहामता के लिए निकल आयेगे ।

बल—ठीक है ।

वासुकि—यह निश्चय करो कि जब तक आसों को सिन्धु नदी के उस पार नहीं निकाल दिया जाता तब तक हम लोग बराबर मुझ करते रहेंगे।

सब—अवश्य।

बल—बैसे तो हम स्वतन्त्र हैं। आज यहाँ कल बहों। निश्चय ही हम लोग।

वासुकि—यदि तुम्हारी सहायता से हमने आसों को पराजित कर दिया तो पचास सोमरस, अर्धरत्न परिमाण में गर-माठ तुमको प्राप्त होगा।

[ सब सोमरस का नाम सुनते ही आनन्द में झूमने लफ्फे हैं ]

सब—हम लोग अवश्य लड़ेंगे। हमको तो आसों के बड़ से ( एक दूसरे का मुँह बैलकर ) क्या है ?

एक—न काम।

दूसरा—वासुकि से पूछो।

वासुकि—होप।

सब—हाँ होप है। उनके ईश्वर से, उनका यज्ञ से, उनका देवताओं से। उनसे।

वासुकि—( लड़ा हीकर ) बन्धुओं, यह हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है। हम तुम्हारी सहायता चाहते हैं। हमें विश्वास है तुम लोग हमारी सहायता करोगे। बन्धुतः तुमको ज्ञम है कि आसों लोग तुमको दास करते हैं। दास वे हमको करते हैं। उन्होंने हमारे व्यक्तियों को पकड़कर उन्हें दास बनाया है। उनसे सब प्रकार का काम लेते हैं। हमारा कर्तव्य होगा कि हम 'दास' नाम को मिटाकर वास्तविक नाम प्रविष्ट करें। हम लोग द्विविध हैं। दास नहीं। ( बट जाता है )

सब—हम मुझ करेंगे। मुझ करना हमारा कर्ष्य है। आसों को पराजित करना भी। बही करेंगे। हम नमुधि, स्वष्टा अशुष, स्वभासु, पिमु की सम्मान हैं। हमारा धर्म कोर नहीं। हम दानव हैं, राक्षस हैं।

इतिविद्या—आपों के यहाँ का माय कर दो। उनको ला जाओ।  
 कयाबा—उठो। हमें उनसे कोर होय नहीं है किन्तु ये हमारे आहार  
 हैं। आहार से किसी को देय नहीं होता। मैं कुयाबा हूँ। उनके खेचों का  
 नाश कर दूँगी।

बिरबड़पा—मैं जाना रूप भरकर उनको मुन्नी करूँगी।  
 सब—हम वामुकि की सहायता करेंगे।

बल—मेरे पास दो सय राक्षस हैं।  
 अयोमध—मेरे साथ पचास।

त्रिमर्चा—मेरे साथ ८८।  
 संबर—मेरे साथ एक सड़स।

बलि—मेरे साथ पाव सी।  
 बल—ठीक है। हमको मुय करना होगा। हम मुय करेंगे। मेरे

मित्र किराव और आकुलि हैं। वे हमारी सहायता करेंगे।  
 संबर—एक बात और—हम राक्षसों को यज्ञ करते देखकर ही मुय  
 का आसाह होता है। इसलिए आपों के यज्ञ प्रारम्भ करते ही हम मुय  
 करेंगे।

वामुकि—क्या इससे पूर्व नहीं।  
 सब—नहीं। तुम बटाओ ये लोग यज्ञ करों कर रहे हैं। हमारे पूर्वज

यज्ञ के नाश करने वाले ही प्रतिज्ञ हैं।  
 विष्णु—मैंने सुना है मनु एक बृहद् यज्ञ करने वाले हैं। वेसे साध  
 रय यज्ञ तो वे लोग प्रतिदिन ही करते रहते हैं।  
 बल—हम उस यज्ञ को आदते हैं जिसमें बलि हो, जिसमें धोम  
 रस हो।

वामुकि—आप लोग उद्यत रहें मैं सूचना दूँगा। आप सब अपनी  
 सेनाएँ तैयार रखें।  
 सब—हाँ अवरव। ( राक्षस अवर-अवर बिखर जाते हैं। वामुकि  
 और विष्णु तथा उनके कुछ साथी )

वासुकि—राक्षसों को सहायता से ही हम लोग आर्यों को पराजित कर सकते हैं।

बिल्व—किन्तु ये तो कहते हैं कि यह हमारा देश है।

वासुकि—इनका देश कोई नहीं। और न ये एक जगह नहर ही सकते हैं। य इनका क्षेत्र पर्यंत है, न उद्देश्य। यह देश हमारा है, हमको वहाँ रहना है इसलिए आर्यों का नाश हमसे अर्थात् है, राक्षसों को नहीं, हमसे। काय सिद्ध करना चाहिए।

बिल्व—हाँ ठीक है। समझ गया।

### सीसरा वृक्ष

[ बलिष्ठ का आशय—ऋषि ममक्षाला पर बैठे मंत्र बचन कर रहे हैं। उनके पौत्र के स्त्री-पुंस्य अयना-अयना आसन बिल्लायें मन रहे हैं। ]

एक ऋषि—ऋषिवर, सबसे प्रधान देवता कौन है तथा सत्कार का मुक्त किससे प्राप्त होता है ?

दुत्तरा—अरे सभी प्रधान हैं। अपने अपने कार्य के लिए सभी ही प्रधान हैं।

[ एक नया व्यक्ति आकर बैठ जाता है। ]

बलिष्ठ—सभी देवता अपने अपने कार्य के लिए प्रधान हैं माद। किन्तु अग्नि मुख्य है। देखो, एक मंत्र है जिसका अर्थ यह है—'हे ऐश्वर्य अग्निदेव, तेरे ही कारण मनुष्यों को धन प्राप्त होता है। निधन मनुष्य मो तेरी उपासना करण सम्पन्न होते हैं। तेरी पूजा करनेवाले विद्वान् वाचक सब देवताओं से धन और उनकी कृपा प्राप्त करते हैं।'

एक—ठीक है ऋषिवर।

१ सज्जनों धाने हबनीक हैवान मरय व आबहोति हव्याम।

स देवता वसुधनि ह्याति वं कूरिर्वा पृथग्मान एति ॥

—ऋ० ७ १ २३



बशिष्ठ—इस लोगो का क्रोर से मुक्त करनेवाले इन्द्र हैं। इन्द्र महान् शक्ति हैं वृत्र का नाश करनेवाले इन्द्र !

प्रागल्भ्यक—वातुधान कौन हैं मयाराज ?

बशिष्ठ—( प्रागल्भ्यक को देखकर संशय से ) वातुधान, वातुधान राक्षस हैं। पक्ष में विप्लव कासने कासे। तुम कौम हो।

प्रागल्भ्यक—एक विद्वान्नु हूँ।

एक ऋषि—तो कुछ पूछो न ? देला ऋषि बड़े शानी हैं।

प्रागल्भ्यक—विश्वामित्र के गात्र के रक्षक करते हैं—बशिष्ठ टीक मंत्र-द्रष्टा नहीं है। वह बात कहाँ तक ठीक है ?

वृत्ररा ऋषि—मूर्ख हैं मूर्ख।

वीतरा—कहाँ बात नहीं है मुदास पहले विश्वामित्र से बह करके के श्राव विद्वसे दिनों उन्होंने ऋषि के पुत्र शक्ति से बह करामा।

शौचा—ऋषि की मद्रा का तो इसी से परिचय हो गया है कि शक्ति ने पाशुभन के बाह्य सोमरत पान करते हुए इन्द्र को मंत्रों के बल से मुदास के बल में बुला दिया।

वीचर्वा—मंत्र का माव है मार। जिसमें शक्ति होगी वही तो कुछ करके दिला लहेगा। क्यों न विश्वामित्र में मुदास को रोक लिया।

प्रागल्भ्यक—हम है कि बशिष्ठ ऋषि विश्वामित्र से ठीके हैं।

वृत्ररा—ठीके ही नहीं जानो भा। ऋग्वेद के संपूर्ण सप्तम मण्डल के अर्थ इन्हीं पूर्व ऋषि ने देखे हैं।

प्रागल्भ्यक—वह तो ठीक है किन्तु न जान क्यों बशिष्ठ को वातुधान करते हैं।

प्रागल्भ्यक—( एकदम बलकर ) हुए। हुए हो।

वृत्ररा—कौन है तू ?

वीतरा—कोई भी हो जो हमारे ऋषि की निम्ना करता है वह बल के योग्य है। (बहु भावता है—वातुधान वातुधान करता हुआ। सोच हीकर बहक गते हैं। बशिष्ठ कोच में बर जाते हैं। बर-बर कापने लवते हैं।)

पहला—( पकड़कर शक्ति के सामने करते हुए ) जो आश्रम हो इसको देख दिया आय ?

दूसरा—तुम कौन हो ?

प्रायम्भुक—मैं आय हूँ। विश्वामित्र के गोत्र में रहता हूँ, उन्हीं से मुझ ज्ञात हुआ कि आप यातुधान हैं। विश्वामित्र के एक मठ ने मुझ से कहा कि ब्रह्मिष्ठ के सामने आकर उन्हें 'यातुधान' कहो तो तुम्हें यज्ञ अथर्विष्ठ सामरथ पान कराया जायगा। मैं चला आया।

ब्रह्मिष्ठ—( श्लेष से कुछ-बल हाथ में लेकर ) सुनो, मेरे आदि गोत्रज ब्रह्मिष्ठ पर किसी ने दोष लगाया था। उस समय उन्होंने जो उत्तर दिया वह सुनाता हूँ किन्तु उसका फल तुमको भोगना पड़ेगा।

प्रायम्भुक—क्या फल महाराज ! देना न श्रीभिये। ( शपथ जोकता है। )

ब्रह्मिष्ठ—यदि मैं ब्रह्मिष्ठ यातुधान ( राजस ) हूँ तो आज ही मर जाऊँ। यदि मैंने राजस होकर देना भी हो तो भी आज ही मर जाऊँ। यदि देना नहीं हूँ तो जो तुमने मुझे यातुधान करता है उसके दस पुत्रों का नाश हो।<sup>१</sup>

प्रायम्भुक—( हाथ जोड़कर शरीर पर गिरता हुआ ) क्षमा श्रीभिये ! मुझ तो उन पुत्रों ने बहकाया है। मैं नहीं जानता था। क्षमा श्रीभिये !

[ यज्ञ के प्रभाव से एक शक्ति-सी निकलती है और विश्वामित्र गोत्र की तरफ चली जाती है। ]

शपथ अर्थ नहीं हो सकता। इसका फल तुमको भोगना ही पड़ेगा।

( प्रायम्भुक विड़विड़ता है। ब्रह्मिष्ठ का श्लेष धीरे-धीरे शान्त

१ अथा मुरीय यदि यातुधानो अस्मि अथि वायु ततप बृहस्पत्यः ।

अथा सः श्रीरैर्यद्विद्विष्या यो धा नो च यातुधाने त्पाह ॥

होता है। आपन्तुक कुलो होकर जाता जाता है।

एक—ये वागमने श्रुति का प्रभाव। अब वह शाप अन्ध न होगा।

{ एक व्यक्ति का प्रवेश }

नया व्यक्ति—( बलिष्ठ से ) श्रुतिपर। शक्ति को न जाने किसन मार डाला है ?

सब—हैं क्या हुआ, कैसे हुआ ? सम्भवतः यह भी विश्वामित्र के दलवालों का काम होगा।

बलिष्ठ—( घबराकर ) कहाँ है शक्ति ?

नया व्यक्ति—यहाँ से पश्चिम की दिशा में एक बोस पर बन में महावट के नीचे, महाराज !

बलिष्ठ—पहो देखूँ तो। मुझ परलै ही लम्हे का। मुदास के यहाँ नज कराने के फलस्वरूप ही वह अन्ध हुआ है। न जाने क्यों सधर्म बट रहा है विश्वामित्र के गोत्र से ? ( अन्ध में भरकर ) मैं इसका बदला लूँगा—मैं विश्वामित्र के गोत्र का नश कर दूँगा। ( बलिष्ठ की प्रमत्ता से लोगों के साथ चले जाते हैं। सब लोग बोड़ी बैर हुए रहने के बाद )

एक—वका अन्ध हो गया। मैं तो उल्टी समय कह रहा था कि मुदास के यहाँ शक्ति को नहीं जाता चाहिए। देखो, यह विश्वामित्र के दल का काम है, हम उनको दण्ड देंगे।

दूसरा—किस यह किसे शठ या कि पैता होगा।

तीसरा—सभे बात नहीं। यदि बलिष्ठ मज दल हैं तो विश्वामित्र भी कम नहीं हैं। वे भी तो मज दल हैं। इसके अतिरिक्त वे मुदास के पुरोहित हैं। क्या कोई पुरोहित यह स्वीकार करेगा कि उसका बन्धमान वृद्ध से बत करे। मुझे तो मर्द, यह विश्वामित्र के दलवालों का ही अन्ध बीज पड़ना है।

चौथा—तुम विश्वामित्र को ही क्यों दोष देते हो ? पाशुपत का भी तो वह काम हो सकता है। निश्चय है कि पाशुपत के यज्ञ में सोम-पान

करते हुए इन्द्र को मन्त्र द्वारा बुलाना अनुचित ही हुआ है।

[ अश्वत्थी का प्रवेश ]

माता शक्ति का समाचार तुमने सुना !

अश्वत्थी—हाँ सच मुच सुनी हूँ। मैंने पहले ही सुनास क यहाँ सब मे शक्ति के पुरोधित बनने का विरोध किया था। पर और तुने सब न शक्ति ने स्वयं शक्ति को ठाठाहित करके भेजा। वो भी हो मैंने उस कार्य का उस समय भी विरोध किया था और अब भी करती हूँ। वो बात स्वयं है अस्माय है, उतका विरोध करना चाहिए। मुझे इतका कम तुल्य मही है। (मांनू पोंपती है)

पहला—माता, सो क्या आपको पुत्र की मृत्यु का कोई शोक नहीं है ?

अश्वत्थी—मनुष्य को सदा न्याय का पक्ष पालन करना चाहिए। हम लोग वैदिक हैं। यदि हम अन्त्याव-यय पर चलेंगे तो हमारी सन्तान की क्या अवस्था होगी विद्भुव ?

पहला—किन्तु मैं विश्वामित्र के बलवालों को दण्ड अवश्य दूँगा। (बसता है)

[ अश्वती का प्रवेश ]

अश्वती—आपों का गौरव इती मैं है कि न्याय का पालन करे। मैं अभी शक्ति स शक्ति के सम्बन्ध में सुनकर आर हूँ। मैंने शक्ति स कहा कि आपन एक पुरोधित क होते शक्ति को पुरोधित बनाकर भेजा ही क्यों ?

अश्वत्थी—यही तो मैं भी कर रही हूँ वदन ?

शाश्वती—आज मैंने मनु स कहा है कि य हम सम्बन्ध में नियम बनाये। यह सत्य ठीक नहीं है। इसमें आपों की ही हानि है। इस समय हमारे सामने आपों की रक्षा का ही बसत प्रश्न नहीं है समाज के निमाण का मैं प्रश्न है। मुच समाचार यह है कि शक्ति को साधारण शीट था है।

अरुणती—(हर्ष से) वह अम्बा हुआ। हाँ ठीक दे बिना निबम  
क हम लोग रह ही नहीं सकते।

बीबा—तो जो कुछ वह बताते द बेधा क्यों नहीं करते ?

गुलरा—अरु क्यों म तो संघेप रूप से सभी कुछ है, विस्तार तो  
हमें को करना होगा।

अरुणती—मेरा शक्ति हाँ, प। ने कहा—'एक साथ मिश्रकर  
बलो एक-ठा विचार करो, एक प्रकार क मन बनाओ बिधों  
न हो।

अरुणती—ये तो विधान हैं। जब इनका मंग होगा तब  
निबम बनेंगे।

तीसरा—जैसे।

अरुणती—जैसे रोगों को लो। हमको साधारणतया जीवन के  
स्वास्थ्य प्राप्त हुआ है, रोग नहीं मिले। रोगों की उत्पत्ति स्वास्थ्य  
नियमों का ठीक न पालन करने से होती है। ऐसी अवस्था में रोग की  
के निबमों में व्यवधान की क्रिया है।

अरुणती—हमें उन व्यवधानों को पूरा करना होगा। व्यवस्था पे  
होनी चाहिए कि रोग न हो। हमने आज एक बात सुनी बहन ?

अरुणती—क्या ?

पहला—क्या कोई नया समाचार है ?

अरुणती—वह अपाला देवी हैं न ? उनका रोग पूरा हो गया !

अरुणती—(आश्चर्य से) कैसे, कैसे ! वह तो बिपायी बहुत दुली  
थी। उस दिन नदी-ठट पर मैंने उन्हें देखा तो मुझे उनकी अवस्था से  
बड़ा दुल हुआ। उनके पति ने भी तो उनके स्वागत दिया था !

अरुणती—हाँ, पति क्या करते ? काग तो नहीं था, वे स्वयं दुखे  
होकर अपने पिता के घर बसती आई थीं।

अरुणती—तो क्या पति ने उनके नहीं छोड़ा था ?

अरुणती—महाँ, हम तो जानती हो, गिरपराय स्त्री का त्याग आर्यों

का निमम नहीं है। उस दिन मनु के पास अपाला और उनके पति पहुँचे तो अपाला के रोग को देखकर, मनु ने कहा—‘तुम दोनों बच रहो। कहीं ऐसा न हो कि यह रोग फैलकर संतति को नष्ट दे।’ बस, उसी दिन से अपाला पिता के घर आकर रहने लगी।

**अश्वत्थी**—अपाला स्वयं क्या कम विदुषी हैं। इतने समय को मंत्र ब्रह्मा ऋषि ज्ञानार्थ हैं उनमें ज्ञान की दृष्टि से वे किसी से कम नहीं हैं। उस दिन विरभावारा सोपामुद्रा और रोमशा के साथ उनका शास्त्रार्थ सुनकर मैं तो मुग्ध हो गई। अश्वत्था, मला उनका रोग किस तरह शुरू हुआ ?

**अश्वत्थी**—निराहार रहने पार्य बेबल सोम-पान से। पाँच दिन हुए रोग से अत्यन्त पीड़ित होने पर वे सुपचाय नदी-शट पर चली गईं। वहाँ सोम-पान करती इन्द्र का आराधन करने लगीं। एक दिन स्वयं इन्द्र आ गये। अपाला को दृष्टि से सोमवस्त्री को पहनाते देखकर फला—क्या पहनाती हो ? अपाला में इन्द्र को न पहचानकर कहा—सोमवस्त्री ! इन्द्र बच आने लगे तब अपाला ने पूछा—क्या तुम भी सोमवस्त्री का पाग करोगे ? इन्द्र ने हँसकर स्वीकृति दी। तब अपाला ने बहुत सी सोमवस्त्री लता का रस निघ्नकर इन्द्र को पिलाया। इन्द्र रस पीकर मगन हुए और बोले—क्या चाहती हो ? इसपर उन्होंने तीन बार मागे। आहा बहन, अपालादेवी किशोरी बुद्धिमती निकलीं !

**अश्वत्थी**—क्या-क्या य वे घर ?

**तीसरा**—देला, बुद्धिमान कैसे काम निकालते हैं ?

**अश्वत्थी**—एक ठा यह या कि मेरे पिता के मिर की गंज टीक हो आय। दूसरा यह कि उनके ऊपर देव उर्ध्व हो आयें। तीसरा यह कि मेरा घम रोग गुर हो आय।

**अश्वत्थी**—अश्वत्था तो क्या सब टीक हो गया ?

**अश्वत्थी**—हाँ, इन्द्र ने अपने रस के छिद्र से उनके शरीर को तीन बार स्नीचा। इसके उनके शरीर का घम क्षिप्त गया। स्वना के दुकने दूट दूटकर गिरने लगे। तीसरी बार मैं उनका औषधि द्वारा शरीर टीक

हो गया ।

सब—बाहू भाई बाहू ! रथ छिद्र में बोर झीपच होगी ।

प्रबन्धनी—रथ के पाठ अक्षुण्ण रहता है । बही लगाकर आर मल कर उनके शरीर का चमरपक्षिद्र से कुल दिया हागा ।

प्रबन्धनी—जानती हो उस चमके स क्या हुआ ?

प्रबन्धनी—नहीं ! क्या उनके चम से मी कुल बना ?

प्रबन्धनी—हाँ उनके चम शकल पृष्ठी पर मिरते ही हो प्रहार के कीट उरान हो गये ।

सब—अच्छा, क्या य वे ?

प्रबन्धनी—एक केंद्रका और वृमरी गोह । अपाला अच अपने पर पर है । सुन्दर स्वरय सुख्य । अचि ने उनके पति को सुचना भेज दी है । वे आ ही रहे होंगे ।

प्रबन्धनी—चलो अच्छा हुआ । उनका पुत्र बेलकर तो रोमांच हो आता था ।

प्रबन्धनी—ऐसी सुन्दर हो गर्भ हैं जैसे सोलह बप की हों !

प्रबन्धनी—तुम क्या कम सुन्दरी हो ? तुम भी छो सदसों में एक हो ।

प्रबन्धनी—(बिस्मय करती हुई) चलो हटो, तुम्हें यह क्या सुम्न है ?

प्रबन्धनी—नहीं सचमुच, क्या तुम विवाह न करोगी ?

प्रबन्धनी—नहीं, अमी छो अच्छा नहीं है । हो तो मुझे रोक भी कीज सकता है ? मैं आत्मकम समाज-शास्त्र का चिन्तन कर रही हूँ ।

प्रबन्धनी—समाज-शास्त्र ! यह कीनता शास्त्र है ?

प्रबन्धनी—यह शास्त्र जिसमें हमारे समाज की व्यवस्था हो । मैं और बहा दोनों बही सोचती रहती हूँ । अहिम मनु ने हमको यह अर्थ सँगा है । अर्ग भी उन्होंने ही बताया है ।

सीधरा—(हृष्टरे से) लो तुनो । देना तुमने ?

बृतरा—हाँ तुनता तो हूँ ही, देना मी रहा हूँ ।

पहला—तुम न सुनते हो न देख ही सकते हो। मैं कहता हूँ तुम में कुछ भी बुद्धि है। मे विप्रर्षी हमारे लिए व्यवस्था तथा हमारे समाज का निमाय करती हैं और तुम वीगा बने देखते रहते हो।

दूसरा—तो तुमने कौनसे युद्ध जीत लिये ?

प्राथम्यती—हम लोग युद्ध को रोकना चाहती हैं जिससे युद्ध न हो और सब लोग सुख-शान्ति से रह सकें। देखो न, हमारी बनाए हुए व्यवस्था हो जाती तो आस शक्ति का यह समाचार न सुनना पकटा ?

प्राथम्यती—मेरा विश्वास है देखता तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे।

प्राथम्यती—मैं जीवन में पहले विश्वास करती हूँ देखता में पीछे।

प्राथम्यती—और मैं देवता में प्रथम और जीवन में पीछे।

[ मठा घोर हवा का प्रवाह ]

पहला—और मैं दोनों में विश्वास करती हूँ।

दूसरा—तुम सब भ्रम में हो। मैं अपने में विश्वास करती हूँ। क्योंकि मुझसे पूरक कुछ भी नहीं है। हाँ, मैं तुम्हें यह समाचार देने आई थी कि पिता एक महान् पुरुष कर रहे हैं।

प्राथम्यती—यह ! यह तो अक्षी बात है दूहा।

प्राथम्यती—बहन, बहो तो आशों का एक पवित्र पर्व है जिसमें सब वृद्ध और निकट के लोग सम्मिलित हो सकते हैं।

दूसरा—पिता ने यह की बेटी क नियम, बहाना, होषा, श्रुतिक आदि की व्यवस्था भी की है। वे सब प्रक्रियाएँ इती समय निर्वात होंगी।

प्राथम्यती—सामाजिक विधानों के सम्बन्ध में भी इसी अवसर पर कुछ नियम होना चाहिए दूहा ?

प्राथम्यती—तुम भ्रम हो बहन ! मैं आते ही वशिष्ठ को तुम्हारा संदेश दूँगी। मला यह कब प्रारम्भ होगा ? क्या सब गीत-गुरु सम्मिलित होंगे ?

दूसरा—आज से पशुपत स्पर्धय को। हाँ, सभी को मैं निमन्त्रण दे



रही हैं। यही पिता की आज्ञा है।

सब—हम भी यज्ञ में सम्मिलित होंगे।

इडा—प्रवरण। आप सब स्त्री-पुरुषों, बालकों, पुत्रा, वृद्धों को निमन्त्रण है।

[ वशिष्ठ का वरित के साथ प्रवेश। सब का हर्ष-प्रकाश ]

प्रकम्पती—( वरित माता को प्रणाम करता है। माँ वरित के लिए खूबती है ) आ गये पुत्र ! न जाने किसने तुम्हारे सम्बन्ध में मिथ्यापवाद फैला दिया !

वरित—हाँ माता !

वशिष्ठ—मिथ्यापवाद नहीं, एक तरह सत्य ही था।

सब—यह ईश्वर की कृपा है कि वरित सकुशल लौट आये। ( हर्ष प्रकाश )

वशिष्ठ—बलुतः वही विश्वामित्र के दल का वरित था। उसी ने वरित को मारा था। वह तो वरित को अपमण करके छोड़ गया था। किन्तु मेरे पहुँचने के पूर्व ही रवावार्थ ने सोम-पान तथा औषधि प्रयोग द्वारा इसे स्वस्थ कर दिया था। ( वरित निर्बलता के कारण बका-ता बीच बड़ा है )

प्रकम्पती—अच्छा बहन, मुझे वरित की देखभाल करनी है।

वशिष्ठ—तुम इडा, वरित ! कोई समाधार है !

प्रकम्पती—हमको नीतर चलना चाहिए वशिष्ठ ! मैं सब समाधार तुम्हें दूँगी। चलो।

[ सब चलते जाते हैं ]

### चौथा दृश्य

[ मनु का प्राप्न—यज्ञ की बेटी के चारों ओर बंजरपटा ऋषि ऋषिकर्ण तथा धार्य स्त्री-सुख्य एकत्रित हैं । कोई कुत्तासन पर, कोई मुसलमान पर, कोई बटिल कोई मुण्डित कोई बस्तन बस्त पहने और कोई किसी बेघ ने है । सबके मुख पर बीरता का तैज है । धार्यधर और धार्य बिरहास धार्यता को उनके हुए हैं । जो मनुष्य बंटे हैं उनमें मुख्य यह है—मन कन्ध भूषु पत्रि बप्रिष्ठ, बिरहामित्र धपस्थ अंपिरा, धामरध गृत्समर धारि । त्रिज्यों में लोपामुत्रा, धपाला, धोपा, बिष्वाचारा शप्यती इडा धमी बाक धया धर्यधती धारि । इनके पीछे ऋषियों के पुत्र और ऋषि-परिधियाँ ।

यज्ञ की बेटी को बंजनचारों से सजाया गया है । पात ही ऋषियों के बालक-बालिकाएँ चल रहे हैं जो कभी-कभी बिराई पड़ जाते हैं । केवल नेत्रध से उनकी आवाज आती है । इधर यज्ञ की बेटी की धर्मिम धारुति के साथ यज्ञ समाप्त होता है । अब सब बंठ जाते हैं । ]'

मन—(उठकर) बन्धुधो ! इस यज्ञ में धार्यने देना होगा कि मैंने कुएडो की विधि और बैठन का क्रम निवारित किया है । ध्या, उद्गाता, धार्यधु और शोता । इस प्रकार यज्ञ का क्रम बाँधा गया है । यज्ञ धार्यों का प्रदान धम-धार्य है । इससे न केवल देवता ही प्रसन्न होते हैं, हम लोग भी संगठित होते हैं । जो प्रातः सायंकाल हम यज्ञ करते हैं उतक अतिरिक्त

१ इस दृश्य के धार्यन से पूर्व जब कि धर्यनिका उठेयी 'स्वाहा स्वाहा स्वाहा स्वाहा की टहर टहरकर धर्यन धाली रहेगी । कुछ लोग धर्य भी बड़ते रहेंगे । लपकन पीछे मिलित तक इधर इत प्रकार की धर्यन होतो रहेगी जिसमें स्त्री-सुख्यों की धर्यन सम्मिलित होगी । बरों के धार्यन में लोप धर्यमी-धर्यमी मूमसलता क्गातरन लेकर बैठने दिखाई देंगे । त्रिज्यों धूर्ध की धोर पंथिन धार्ये हलितु धोर उत्तर की धोर ऋषि लोप । पश्चिम का भाव जाता ।

हमझे ऋतुओं के अनुसार नैमित्तिक यज्ञ भी करने होंगे जिसमें तमसू गोत्र के व्यक्ति एकत्र हो सकें। (बैठ जाते हैं)

अग्नि—यज्ञ की वह प्रक्रिया ठीक है किन्तु वह संगठनात्मक किस तरह है। वह मेरी युक्ति न नहीं आया।

इडा—नैमित्तिक यज्ञ के द्वारा आप लोग एकत्र होंगे तो उनके यज्ञ के पश्चात् अपनी परिस्थिति पर विचार करन का अवसर मिलेगा।

बसिष्ठ—तो क्या ये यज्ञ पर्येक व्यक्ति को आवश्यक होंगे ?

मनू—हाँ, जो कर सके।

बसिष्ठ—दक्षिणा कौन देगा ?

मनू—जो यज्ञ करावेगा।

बसिष्ठ—इस लोगों का इतना सामर्थ्य कहाँ कि नैमित्तिक यज्ञ करें।

मनू—इसके लिये हमझे जाति में भेद बनाना होगा।

सब—( आश्चर्य से ) भेद, भेद क्या होगा ?

मनू—आपको ज्ञात है हमको न कबल यज्ञ ही करना है समाज का निमाण भी करना है। समाज के निमाण के लिए वेदों के कथाएँ हुए मार्ग के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य के वर्गों की व्यवस्था करनी होगी।

सब—आश्चर्य है।

मनू—ब्राह्मण यज्ञ करावेंगे, वैदिक पद्धति का प्रचार करेंगे और यज्ञ की दक्षिणा द्वारा अपना निवाह करेंगे। क्षत्रिय देश की रक्षा करेंगे। ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित यज्ञ का प्रचार करेंगे।

विश्वामित्र—और वैश्य ?

मनू—वे व्यवसाय की उत्पत्ति करेंगे। गायों की रक्षा, यज्ञ नमाण, क्षेत्र वृद्धि का कार्य करेंगे। इस समय ही मुदास आदि यज्ञ-प्रेमी हैं।

विश्वामित्र—इनमें सबसे ऊँचे ब्राह्मण होंगे ?

मनू—सभी अपने-अपने कार्य में ऊँचे होंगे।

बसिष्ठ—पर मर्बारा में तो ब्राह्मण ही ऊँचे होंगे न। वह तो

स्वमावतिष्ठ है।

मनु—इमको जहाँ ब्राह्मणों की आवश्यकता है वहाँ क्षत्रियों की भी। वैश्यों और शूद्रों की भी। त्रुपि विश्वामित्र किसी समय क्षत्रियत्व को भेष्ट समझत था।

विश्वामित्र—किन्तु अब तो मैं ब्राह्मण हूँ।

मनु—आपको ब्राह्मण होने से कान रोकता है। मैं तो समाज को व्यवस्था के सम्बन्ध में बह रहा हूँ।

सब—किसी को भी क्षत्रिय, वैश्य बनना स्वीकार न होगा। हम ब्राह्मणत्व को छोड़ नहीं सकते।

इडा—तब हम जीवत नहीं रह सकते।

वाक्यतो—मैं आपसे निवेदन करना चाहती हूँ कि आपों पर शीघ्र ही भयंकर संकट आने वाला है। दास दानवों राक्षसों से मिल गये हैं। वे इमको जहाँ से इत्यन का उद्योग बड़ी तत्परता से कर रहे हैं।

भद्रा—ब्रह्म करो। यज्ञ से देवता प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करेंगे।

सब—ठीक तो है। हम लोगों को ब्रह्म का प्रभार करना चाहिये। भद्रा ठीक कहती हैं।

वाक्यतो—‘यज्ञेन ब्रह्ममयजंत दंवा तानि भर्माणि प्रथम्यन्थासन्। देवताओं ने भी यज्ञ ही किये वही पूर्ण धर्म था।

वशिष्ठ—इम मर्षों द्वारा शत्रुओं का नाश करेंगे।

वशिष्ठ—देवता प्रसन्न होकर हमसे ब्रह्म देते हैं। उतका प्रयोग तो हमको करना ही होगा।

कण्वक—जिस प्रकार मृत अन्धकार का नाश करते हैं उसी प्रकार वेद द्वारा प्राप्त शक्ति से हम राक्षसों का नाश कर देंगे।

वाक्यतो—वर्ष-व्यवस्था वेद प्रतिपादित होना शुरू की किन्ती के लिए कथन नहीं हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष चाहता है। मोक्ष का अर्थ किसी ब्रह्म ब्राह्मण है। फिर कौन क्षत्रिय, वैश्य होना स्वीकार करेगा ?

अंबिरा—किन्तु सबके आह्वान पर भी तब व्यक्ति ब्राह्मणत्व को प्राप्त

नहीं कर सकते । जिसमें बौद्धिक विकास, आर्यिक वस्तुकार अधिक होगा वही आर्य्य बनेगा न ?

वामदेव—मैं आर्या को ही नहीं मानता । मैं बुद्धि पर विश्वास करता हूँ ।

वत्सदेव—( हसकर ) तुम तो गर्म से ही नहीं निकलना चाहते व तुम्हारी तो बात ही विचित्र है वामदेव !

आर्या—यह व्यक्तिगत आक्षेप है ।

वोवा—किन्तु यह कोन बुरी बात नहीं है ।

विश्वामित्र—मूल वस्तु पर विचार होना चाहिए ।

वामदेव—आप लोग ठीक कह रहे हैं । मेरा सोचना व्यर्थ है । समय अपने आप व्यवस्था का निमाय करेगा । और वह व्यवस्था हमारे एक बार पतन के पर्याप्त होगी, देखा मुझे प्रतीत होता है ।

वत्स—पतन के पर्याप्त ! यह क्या कहा आपने !

वामदेव—यह समय बुर नहीं है जब आपको वाप्य होकर वह स्वीकार करना पड़ेगा ।

वोवा—तुम से आहत पराकृत होकर ।

वत्स—हम लोग बच करेंगे तो वह कैसे सम्भव है ?

विश्वामित्र—देवता हमारी रक्षा करें ।

वत्स—हम तो सम्भवतः व इस ब्रह्म में बहिष्कार के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था होगी कि कित्त पुरोहित को कितनी दक्षिणा मिले ।

वत्स—निश्चय उसी बात का होना चाहिए ।

विश्वामित्र—तोमी व्यक्ति आर्य्य नहीं हो सकते ।

वत्स—मगया करके जीवन यापन करने वाले मी ।

वत्स—हजारों को कमी कित्ती मे आर्य्य नहीं बनाया ।

विश्वामित्र—जिसकी आर्या उन्नत नहीं, जो तोमी है, जो बहिष्कार के लिए दूसरे के मध्य में जाकर पड़ कर सकता है उसकी हत्या करने में याप नहीं है ।

अपित्त—सुन रहे ।

विश्वामित्र—तर-यशु ?

बसिष्ठ—( उठकर ) तुमने मेरे पुत्र की हत्या करने का बल किया । तुम ब्राह्मण नहीं हो सकते ।

विश्वामित्र—तुम क्रोधी हो । तुमने श्राप देकर मेरे बग के एक मनुष्य के दस पुत्रों को मार दिया । तुम ब्राह्मण कैसे ! क्रोधी ब्राह्मण नहीं हो सकते । तुम बाहु ।

बसिष्ठ—देखो सुन रहे, नहीं ये इतका फल भोगना होगा ।

मनु—( हाथ थोड़कर ) यह व्यक्तिगत राग-द्वेष का समय नहीं है । इस समय हमें दातों, दानवों से युद्ध क समय उचित रहना चाहिये । यदि प्राय लोगों को यह व्यवस्था स्वीकार नहीं है तो मुझे कुछ भी नहीं करना ।

कुक्ष—वर्षथा स्वीकार नहीं है मनु । और श्रेय बात करो ।

बामदेव—यह स्वाभाविक बात है कि जब तक किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती तब तक उसके अस्तित्व होते हुए भी उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

अनस्य—इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनु की यह व्यवस्था उचित है ।

विश्वामित्र—तो स्वीकार क्यों नहीं करते ?

अपरम—अभी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुए पुत्रि ? आवश्यकता होते ही यह स्वीकार्य होगी । मैं स्वप्न देख रहा हूँ । यदि वह तब लोग स्वीकार कर लें तो भी उनका महान तो समय पर ही प्रतीत होगा ।

मनु—प्राय साव करते हैं श्रुतिपर ।

अत्रि—समय आने पर ही कबल यज्ञ को प्रदान मानकर व्यवस्था को भंग करनेवाले आशों को इतकी आवश्यकता होगी । तभी उसका महान प्रतीत होगा ।

इडा—यह तो न्यान बूझ कर अग्नि में गिरना हुआ । मान स्त्रीजिव अमी शत्रु हम सब पर आक्रमण कर दे तो हम किस प्रकार अपनी रक्षा करेंगे ?

एक—जैसे धन खर्च करते आते हैं। धन खर्च ही हम कीन बाँधें।  
स पराश्रित हुए हैं जो धन होंगे।

दूसरा—'तब हमारे सामने कमी लड़ मी है जो धन लड़ेंगे !  
तीसरा—'तब तो धारा की सवा क लिये है।

एक—हम आपनी रक्षा आप करेंगे आप विन्ता न कीजिये।  
प्रकल्पती—देवता हमारी रक्षा करेंगे मनु ? तुम विन्ता क्यों करते

हो।

मया—न जाने क्यों प्राप्त तंग से मनु जीवन नहीं विताया पारते।  
देल लिया इंग शस्त्रती आपनी बुद्धि का फल ? मतो धन मी कुछ नहीं  
हुआ है। हा कम की बातें मुझे अच्छी लगतीं।

प्रकल्पती—मनु मी नरन ?

[ बालक कोलाहल करते आते ह। वीर्य रासत बागव बस्य धा-  
रहे हैं। सब धान्य-वन्धित हो जाते हैं। धपनी-धरती मुकपालार्थे

संभालकर बड़े हो जाते हैं। इतने म एक बाउ धाकर एक धपित के  
समता है वह 'हाम्य' करके बिर जाता है। सब लोग 'बसो मुड करे

बसो मुड करे' कहते हुए बीड़ पड़ते हैं। राजसों बागवों बस्यधों से मुड  
होता है ? धाधम रिक्त हो जाता है। मेवध्य से हाय हाय मारो कम्बी

तथा धनुहास का बस्य सुनाई देता है। अयेरा धा जाता है। कमी  
स्त्रियों की धानाज धाती है। कमी पुदवों के बरिफार कमी बालकों के

स्वर। पावों के जापने की परधननि। धनों के बट-बट करके चलने का  
स्वर। धायो बीड़ो बसो। धरे तुम कहाँ हो ? बधिष्ठ तुम कहाँ हो ?

देवता तुम्हारी रसा करें। मनु तुम कहाँ हो ? देवता तुम्हारी रसा करें।  
धादि निमित्त निम्न निम्न स्वर सुनाई बड़ते हैं। इसी गडबडो से मनु के

बस पुन यड-तामपी से तम्यड होकर आते हैं। ]  
मनु के पुन—'मिा हम लोग मुड करेंगे। हम हत प्रकार धाधों का  
विनाय नहीं देल सकते। हम धाधा कीजिये। आपने हमे मुड रिधा की  
है हम मुड करेंगे।

कुछ लोभ—हमको पुत्र की प्राप्ति हीमिसे ।

मन—हाँ, पुत्रो जाओ । शत्रु का आक्रमण मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है ।

[ नेपथ्य में लोभ भावसे दिखाई पड़ते हैं । गायें आ रही हैं । बालक बुढ़ा पखा, पक्षितवाँ बौड़ रहे हैं । कुछ चलते चलते गिर जाते हैं । फिर उठकर चलने लगते हैं । भीत्कार कोसाहल घट्टहात छिड़ मार-काट की ध्वनि सुनाई दे रही है । कभी राक्षसों और कभी बस्युओं के पदों की आवाज । बड़ी देर तक नेपथ्य में पड़बड़ी रहती है । कुछ लोभ रंजमुनि से भागते कुछ लत-बिलत बीज पड़ते हैं । जली समह पर्व गिरता है ]

### पाँचवाँ दृश्य

( दो माम के परचात )

[ बालुकि भिन्न तथा धम्य कई बस्यु कुछ राक्षसों के साथ अग्रमा की किरलों से प्रकाशित नदी के किनारे बठ ह । बालू रेत के कण उस प्रकार से चमकमा रहे हैं । वो घोर मनष्य की मज्जा से बीपत हो बड़ी मशालें जल रही हैं । सबके सामने मर कटाख रत है । पत्र-पुटों में लोभ पक्षिरा झालकर पी रहे हैं । सामने कुछ नतकिर्पा नाच रही हैं । ये कभी बस्युओं और कभी राक्षसों को मर विमती हैं । नरम नहीं नत हैं जितमें गायन नहीं है । केवल भाव-भंगी है । मर कटाख-बिलप हस्त बालन पद-गति कभी-कभी मनामधी मनामने उनके सामने कर बेते हैं । कभी मशालधी मर बीनें लपते हैं । त्रिपदाँ बठ जाती हैं । हाँ नतन के साथ साथ बंगी भी बजती है । कुछ लोभ मनष्य कनात लेकर उण्डों से पन लते स्वर निकालते हैं । ऊप हाथों की तालियों द्वारा अपनी मस्ती तथा पद पति से ध्वनि मिला रहे हैं । धीरे धीरे सब शास्त हो जाता है । केवल बालुकि घोर भिन्न सबैत ह तथा कुछ बस्यु लोग भी । ]

बालुकि—अन्त में हमारा प्रधान खरल हो ही गया । आषों को हमन इन भूमि से निकाल दिया । हमन कितन आषों का पट्टी किया होगा विन्न !



बिम्ब—सगमग पचास स्त्री-पुरुष । शेष भाग गये ।

बानुकि—आज मैं जितना प्रकल्प हूँ भाइ कि मेरे देश से आर्य लोग निकल गए ।

बिम्ब—निकल गये या निकल दिये गये ?

बानुकि—वही आशय है । किन्तु इन राक्षसों का भी विरवाह नहीं है ।

बिम्ब—इसकी तुम जितना मत करो । इन लोगों का ध्येय किसी भूमि पर आधिपत्य जमाना नहीं है । इनको तो भोजन आदिने ।

एक—भोजन और स्त्री के अतिरिक्त ये किसी भी किन्ता नहीं करते । ऐसी जाति कभी जीवित नहीं रह सकती जिसके जीवन का कोई उद्देश्य न हो ।

बानुकि—( अपने कुछ व्यक्तियों से ) तुम इनको उठाकर नदी के तट पर लिये आओ । ( सब उठा उठाकर से जाते हैं ) जितनी तुम्हारे राशि है सिग्म ?

बिम्ब—हमारे देश की तरह तुमपुर ।

बानुकि—हमको अपनी सेना सदा तैयार रखनी होगी । मेरा विरवाह है आर्य फिर इस भूमि पर आक्रमण करेंगे ।

बिम्ब—इतनी शीघ्रता से नहीं । इस समय सिन्धु नदी बहुत बढ़ा हुआ है । वे क्या झूठ तक इधर नहीं आ सकते । फिर भी हम लोग सशस्त्र उनसे मुद्द करने को तय्यत रहेंगे । मैंने प्रणय कर लिया है । दो सप्ताह दस्यु सिन्धु के इस तट पर रहेंगे । वे आकर्षकता पकने पर न केवल मुद्द ही करेंगे हमको सूचना भी देंगे । उस समय हम लोग इन राक्षसों की सहायता से उन्हें फिर पराजित कर सकेंगे ।

बानुकि—शेष पचास आर्यों को मार क्यों नहीं देते ?

बिम्ब—मैं उनको दास बनाऊँगा । इतनीलिय उनको तथा उनको स्त्रियों को जीवित रखा है । मैं स्वयं कुछ आर्य स्त्रियों को अपने बिन रलना चाहता हूँ । उनमें से मैंने कुछ पुन भी ली हैं । तबपुन आर्य-

स्त्रियों बड़ी सुन्दर होती हैं ।

[ कुछ वस्तु-स्त्रियाँ बिलम होकर अंगड़ाई लेती ह । बामुक्ति तथा बिलम जगहें उठाकर गोद में बिठा लेते हैं । फिर सब लोग मखिरा पीते हैं । ]

बामुक्ति—आज कितने आनन्द का दिन है । स्त्रियों को छोड़कर शेष आर्यों को मार देना आदिप बिलम ! ये लोग मर मले ही जार्ये दास बनना स्वीकार नहीं करेंगे ।

बिलम—तब मार दिया जायगा । ( अंगड़ाई लेता है । )

[ कुछ राजसों का प्रवेश ]

एक—ये, ये क्या हो रहा है ?

दूसरा—आदिगन !

तीसरा—मखिरा क्यों है ?

चौथा—हम खोय तो परीं ये न ! बाहर कैसे लसे गये ?

बामुक्ति—उठकर कदाचित् ।

एक—ये आर्य-स्त्रियाँ क्यों ह ?

दूसरा—दो मैं लूँगा समझे ।

तीसरा—मैं भी तो । ( फिर सब मखिरा पीते हैं )

बामुक्ति—अब रव, अब रव ।

[ धीरे धीरे प्रकाश कम होता है । अंधकार छा जाता है । इसी समय मेपथ्य से गुनाई देता है 'भाव भये, 'मारो कादी 'पकड़ो बीड़ो' । एक व्यक्तित्वाकर समाचार देता है कि कुछ आर्य भाव भये । दौड़कर उबर जाते हैं । ]

राजस—भाग गये ?

[ जले जाते हैं ]

बामुक्ति—( उड़ा होकर ) भाग यम, कैसे भाग गये ? कहा हों वहाँ स पकड़कर लाओ । सत्य ही हम लोग आर्यों की अपेक्षा निपल हैं । यदि राजसों का सहयोग न होता तो हम किसी तरह भी उन्हें क्षिपु के

पार न मगा सकते !

एक—आर्यों स हमारी शत्रुता निम नहीं सकती बाबुकि ?

दूसरा—यह तो राजसी के तिर पर बढ़कर बाय चलाना हुआ मला, हम कब तक अपनी रक्षा कर सकते हैं ?

बिल्ल—तो क्या तुम चाहते हो हम लोग इस प्राय विजय के हाथ से घली जाने हों ?

तीसरा—किन्तु युद्ध तो धर्म है बिल्ल ! हम किसी तरह भी उनसे युद्ध नहीं कर सकते, न हमारे पाठ बेसे धर्म है न हम युद्ध-कला ही जानते हैं ।

बाबुकि—मैंने स्वयं उनके वहाँ रहकर युद्ध-विषय सीखी है । अब उठी दंग से मैं हस्तुधों को सिखा दे रहा हूँ ।

[ बहुत से धार्यों को पकड़कर लाता ]

बाबुकि—( पाठ जाकर ) तुम क्यों भागे ? बोलो ? ( बाए से जतकी बिबुक उठाकर ) बोलो ?

एक धार्य—कोई व्यक्ति इत अवस्था में खना स्वीकार न करेगा हठीलिय ।

एक हस्तु—अब तब हुआ कि दुसरो को 'बात' करने का क्या फल है । अब तुमको हमारी सेवा करनी होगी । नहीं तो तुम्हें मार दिया जायगा ।

दूसरा धार्य—तो मार दो । हम मरने के लिए तयत हैं ।

बिल्ल—आज सार्यकाल तक जो सेवा करना स्वीकार न करें उनको घाटकर देनी की बलि ही जायेगी । बोलो, तुम्हें स्वीकार है ?

एक—क्या स्वीकार ?

तीसरा धार्य—मस्तु ।

एक हस्तु—बलि ।

पहला धार्य—तुम जाहे को करो । हम लोग इस अवस्था में भीक्ति नहीं रहना चाहते ।

बिम्ब—से आओ इनकी । आओ इनकी बलि ही भयगी । इससे पृथ इन पर नागों को छोड़ो फिर बलि दो ।

[ से आते हैं फिर कीलाहल ]

बिम्ब—बड़े दुष्ट हैं वे लोग । यह कैसा कोलाहल है ?

वासुकि—(सोचकर) क्या बलि देना इस पर आत्माचार नहीं है ? ये लोग तो हम को पकड़कर कभी नहीं मारते !

बिम्ब—तो यह इनकी निर्बलता है ? तुम बीच में मत बोलो । मैं एक-एक को हथकूटूँगा ।

वासुकि—अन्धा पक्षी सही । क्याबिब हमारी क्रूरता ही इन्हें भय मील कर दे ।

बिम्ब—हाँ । जीवन में हमारा कोई शत्रु है तो वे धाय । हम अब घर पाकर इनके साथ कोई व्यवसाय व्यवहार नहीं कर सकते । आठ, बहुत दिनों के बाद मेरी इच्छा पूर्ण हुई है वासुकि !

[ कीलाहल मचता है । नारकस की ध्वनि सुनाई देती है । कुछ लोग जबाब-से आते हैं । ]

वासुकि—क्या हुआ ?

एक व्यक्ति—उन्होंने बड़ा मर्यक कर कायद कर बाता । मार्ग में ही उन्होंने कुछ हस्तुओं पर आक्रमण किया । कुछ लकड़कर मारे गये, शेष भाग गये ।

बिम्ब—( कोप से ) मैं देखता हूँ ।

वासुकि—बलो में मी बलूँ ।

बिम्ब—मैं शत्रु के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना मूर्खता समझता हूँ, वासुकि ।

वासुकि—पात यह है, हम लोग जेपकय आओ को मन्व ही बुरा समझें, बन्वुठ उनका व्यवहार हमारे प्रति बुरा कभी नहीं हुआ । किंतु मैंने जो उनम पुड किया वह केवल आति धार देश की स्वतन्त्रता के लिए था ।

## दूसरा अंक

### पहला दृश्य

( सन्धा का समय )

[पुष्प प्रारम्भ होते ही—उत्तरायण से घाने वाले धार्यों का बल—स्त्री-पुरुषों बालकों बुढ़ों का बर-बुध के चर्म के बरत्र पहने शील पड़ता है। विद्याल धरीर, उन्नत कार्य बड़े-बड़े नेत्र लंबी नासिका भीर धरीर, मांसल रक्त-वेजियां बने का रड़े हैं। पहले बित्र में धारियां शील पड़ती हैं। फिर बोरे-बोरे स्वल का भाव। धूप में धाकर ने-जाल बने हैं। सामने नबी ऊपर शिमाष्वाभित परबल-मात्तार्ए बिब बने हैं। बोड़ी धेर विद्याल करके उठते हैं धीर धापे बड़ते हैं फिर दूसरा बल इसी प्रकार धाकर उहरता है फिर तीसरा बलने में बत्र कि कुछ लोभ धारियों में धाले बिबाई बने हैं। दो पुष्प रंभमृभि में सामने धा धाले हैं। उनमें एक का नाम है सुधुम्न, धीर दूसरी का धावती।]

धावती—(धूर से) सुबक, तुम क्या रहते हो ? तुम्हें मेने प्रथम बार ही देला है।

सुधुम्न—( मुँह खेरकर ) क्या बिसे कमी नहीं देला, उस कमी देला नहीं का उकठा ?

धावती—तुमने मुस नवीं पेर सिवा सुबक, क्या संकोच करते हो ? ( पाव से ) धरे, यह क्या तुम ? यह पुस्य वेध । हा हा हा हा ।

सुधुम्न—हाँ बहन, ( धट्टहास करके ) मेरी नकी इन्का है कि मैं पुस्य नवीं । कोई ध्रापति है क्या ? धाव मेरा माम सुधुम्न है ।

धावती—मरी, तुम लपगुन पुस्य ज्ञात होती हो इका ? बहुत सुन्दर सुबक लगते हो सुधुम्न । क्या सुन्दर रूप दे !

सुधुम्न—घन्ट में वही हुआ जो मैं कहती थी। हम लोग पराक्षित हो गये।

घाबती—विश्व की सर्व-प्रथम बुद्धिमत्तन वह भाव-जाति इतनी घबूर दर्रा होगी इसका मुझे विश्वास नहीं था। ( घाबती की ओर देखकर ) देखो, ये कौन लोग आ रहे हैं ?

सुधुम्न—( उभर ही देखकर ) हा, कदाचित्त भायों का कोई दल होगा। उभर हम लोग पराक्षित होकर पीछे हट रहे हैं। उभर ये लोग आगे बढ़ रहे हैं। इस उपस्थिति में इतना स्थान नहीं कि बहुत स्पष्ट टिक सकें। ऊपर पर्वतमाता, सामने नदी, चोबी-सी भूमि। कहीं तक लोग बस सकते हैं।

घाबती—मुझे तो बुझ इस बात का है कि गोत्र-गुणों को मनु की बात न मानने के कारण ही बाहों से पराक्षित होना क्या है। स्वयं निता ने बह से पूर्व प्रत्येक गोत्र के अस्थिति को बाहों के पदपत्र के सम्बन्ध में बताया था।

सुधुम्न—मैं इतने उदास नहीं हूँ घाबती। मैं इन आने वाले बाहों के द्वारा क्या के पश्चात् सुखोद्योग करूँगी। मेरे जीवन का ध्येय यही है।

घाबती—मैं मनु से मिलना चाहती हूँ। मैं उनसे मिलूँगी। मुझे भ्रष्टा का बड़ा दुःख है इसा कहन।

इडा—( घाबती की ओर ) हाँ को इस पराक्षय का बहुत दुःख हुआ।

घाबती—तब यह हुआ कैसे ? क्या हम इतनी घूर आकर भी मुरझित नहीं हैं। देखो, वे लोग आ गये। ( घाबती का एक दल आकर विश्राम करता है। घाबती और इडा त्रिप जाती हैं ) देखो ये क्या करते हैं ?

एक—कदाचित्त इतने पूर मो कुछ लोग यहाँ ठहरे हैं।

इतरा—हाँ, और क्या, किन्तु यह स्थान तो बहुत संकुचित है ? हम

लोग वहाँ कैसे रह सकते हैं ?

तीसरा—घरे, इसके आगे ही छोड़ि नही दे। उसके परभाव स्पष्ट-ही-स्पष्ट है। देखते जाओ। कितना रमणीक स्थान है।

बौवा—मैंने सुना है जैसे ही जैसे हम आगे बढ़ेंगे वैसे ही इस भूमि की सुन्दरता भी बढ़ती जायगी।

पहला—घोर क्या ? इसारी जाति क बहुत से लोग क्यों से इलीशिया में बढ़ते जा रहे ह। मैंने प्रबन्धन बग क व्यक्तियों से कहा था।

दूसरा—मोझन का भी प्रभाव करना होगा। कहा तो कोई पशु पक्षी

भी नहीं दिलाइ देता।

तीसरा—आगे नही दिलाई देती है। पक्षो तब पर ही क्यों न बैठा जाय।

दूसरा—हाँ, है तो ठीक। पक्षो पक्षों। वह तो ( पीछे की घोर बेशकर ) देखो, पायी का मुलधार है। यहा मला क्या मिलेगा ?

[ सब सामान बटकर चल देते हैं। सुधुम्न घासपत्ती का प्रक होना ]

सुधुम्न—आप लोग कहा जा रहे हैं ?

एक धार्य—जा रहे हैं इतना जानते हैं। अभी कहीं का निश्चय नहीं।

क्योंकि आगे का स्थान अदृश्य है।

एक स्त्री—हम कितने सुन्दर हो। इन्द्रास नाम क्या है ? देखो, इसको तृण लय रही है। यहाँ कहीं क्या होगा।

सम्बती—आप लोग धार्य हैं न ? क्या इस स्थान से दोपटी के मार्ग पर मिलेगा ? वहाँ त्रिभु-नद बह रहा है। वहाँ बहुत से आप लोग निवास करते हैं।

सुधुम्न—आपको मार्ग में कोई कष्ट तो नही हुआ ?

एक धार्य—कष्ट, कैसा कष्ट, न जाने कितने समक से ऐसे ही चल रहे हैं। हम लोगों के वर्ग में तीन ही व्यक्ति हैं। कुछ आगे निकल जायें,

कुछ पीछे आ रहे हैं। चलो माध, तुम लग रही है। इस देश में आते ही तुम भी लगी। बड़ा उष्य देश है।

पारवती—तुम कितनी सुन्दर हो सुबती ?

दूतरा—(हँसकर) चलो चलो, हम मी क्या कम सुन्दर हैं ? आप लोग क्या यही ठहरेंगे ? देखिये, हमारे गोन के अग्रज आ रहे हैं। उनसे कह लीजियेगा कि हम लोग सिन्धु-तट पर एकत्र होंगे। तुम लग रही है माध, यदि कह न हो तो आप ही हम लोगों को चसकर वह स्थान बता लीजिये।

सुधुम्न—पारवती, तुम इन्हें ले आओ। सिन्धु के तट पर ठहराना।

[ चलते-चलते ठहरकर ]

सुबती—सुबक, क्या तुम इसी देश के रहनेवाले हो ?

सुधुम्न—नहीं, देवी हम लोग मी आर्य हैं ? हम लोग बहुत वर्ष हुए इसी माग से आये थे। आज हम पराभित हैं ?

[ सब लौटकर ]

सब—पराभित, तुम लोग कितसे पराभित हो गये ?

सुबती—पराभितों को मैं नहीं चाहती। चलो माध, चलें।

सुधुम्न—इस देश में एक जाति रहती है। उठी ने हमें पराभित किया है।

एक—किन्तु आर्य तो कभी पराभित हुए हों, ऐसा नहीं सुना, तुम आय न होगे। चलो।

दूतरा—हमको पराभित करनेवाली कोह जाति संसार में है क्या ?

सुधुम्न—हम आर्य हैं, किन्तु संगठित न होने के कारण पराभित हुए।

तीसरा—तो संगठित क्यों न हुए ?

पारवती—बह तुम्हें सिन्धु के तट पर आयों से शक होमा।

सब—तो हम लोग आगे न आयेंगे। पराभित जाति से मिथना भी अपमानजनक है। चलो लौट चलें।



माधवती—बद काबलता है। क्या तुम लोग मयमील हो गये ?

तब—नहीं बद बात नहीं है। हमने तो मुना सबसे बुद्धिमान्, श्रुति मनु हथर रहते हैं। इसी कारण हम उबर जा रहे हैं। क्या उन्होंने हमारी कोई सहायता नहीं की ?

माधवती—आप लोग बलिबे, किया मनु बही हैं। तुम भी बसों न सुधुम्न !

सुधुम्न—मुझे एकन्त चाहिए। मैं वहाँ बोकी डेर पहुँचा। इसके अतिरिक्त इत तमूह के अमज को मार्ग दिलाऊँगा। तम बसों। ( तब बने जाते हूँ ) मैं लोग कितने रसवाही हैं, बिर मो। अब मेरा प्येव हम आबों की सहायता से फिर आक्रमण करने का है। यह सुन भी कितनी सुन्दर है। कितनी राह। हमारे पराजित होने का न सुनकर करने लगी, मैं तुमको नहीं चाहती (ऊपर घाटी की ओर देखकर कयाबित्—उत्त दल के लोग आ रहे हैं।

[ भाये-भाये एक तेजस्वी बुधब। उसके पीछे नर-नारी बर्न जाता आ रहा है। तब लोग आकर उसी स्थान पर डेरा डाल बैठे हैं ]

बुध—( सुधुम्न की देखकर ) ए मारु, मुनो तो।

सुधुम्न—( उस तेजस्वी बुधब को देखकर माधवती होती हुई ) क्या है ?

बुध—इस आओ, तनिक हमारी बात तो मुनो ?

सुधुम्न—कहो न ? बही से कह दो।

बुध—देओ, मैं करता हूँ तनिक इतर आओ।

सुधुम्न—मैं वहाँ नहीं आ सकता।

बुध—देता शम्भू तो आज मैं प्रथम बार सुन रहा हूँ।

सुधुम्न—मैं भी तम्हारे जैसे उत्तम बुधक को प्रथम बार ही देख रहा हूँ।

एक—मूर्ख दिलाई देता है। अरे ये हमारे अमज हैं। मैं हमकी न मानोगे तो हथक मिलेगा।

सुपुम्न—तुम्हारे अग्रज हैं, मेरे तो नहीं ।

बुध—( पात जाकर उसके कंधे पर हाथ रखकर ) मुबक, तुम जानते हो तुम किससे बातें कर रहे हो ? इसमें सन्देह नहीं, यह तुम नहीं, श्वाशुर लोन्डर्य है जिसने तुमको इतना उद्वेग बना दिया है । सुन्दर मुबक, तुम क्या करते हो ?

सुपुम्न—( कंधे से हाथ हटाकर ) दूर लड़े होकर बातें क्वीजिये महाशय ।

एक धार्य—धार्य, वह पुरुष क्या अग्रज है ।

इतरा—मुझे खे यह पुरुष ही नहीं ज्ञात होता ।

तीतरा—अरे मार्य, शासना कोई अपराध है क्या ?

सूनुता—( धार्ये बड़कर ) ओह इतने तुम्हारे हो तुम ? धार्य, मैं इनसे विवाह करूंगी ।

सुपुम्न—मैं किसी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता ।

सूनुता—( जाई बुध से ) अग्रज, इनको समझाओ । मैं अबरन इनसे विवाह करूंगी । मुबक देखो, मैं कितनी सुन्दर हूँ । ये मेरे मार्य हैं । इत संपूर्ण वर्ग के स्वामी । अग्रज, इन्हें समझाओ ।

सुपुम्न—देवी मैं तमसे विवाह नहीं कर सकता ।

सूनुता—( पात जाकर ) क्यों ?

बध—कितने सुन्दर हो तुम ? अच्छा जाने दो । हम तम मिन हैं । यह बताओ तम क्या करते हो ?

सुपुम्न—इत खान से कुछ दूर, सिन्धु के तट पर ।

बुध—क्या मनु भी वहाँ हैं । हम लोग उनके दर्शन करने आ रहे हैं ।

सुपुम्न—क्यों ?

सूनुता—अरे, तुम इतना भी नहीं जानते । मनु संसार के सबभेष्य स्वर्णि हैं । हम लोग उनकी के पात आ रहे हैं ।

सुपुम्न—मनु किस बात में भेष्य हैं वह मैं नहीं जानता । यहाँ तो सभी मनु हैं ।

सुनता—उन्होंने अग्नि को संघार में प्रकट किया। उन्होंने हम सब को विस्तार करने का मार्ग दिखाया। विवेक उत्पन्न करके मनुष्य को मनुष्य बनाया।

बुध—इसके अतिरिक्त जब संपूर्ण संघार जलमग्न हो गया था तब उन्होंने मनुष्य-जाति का निमाद्य किया। हम सब लोग उन्हीं के द्वारा इतना कुछ सीख सके हैं।

सुषुम्न—(प्रसन्न होकर) मनु आजकल बहुत विविकृत है। यहाँ के आर्यों ने उनका कहना न माना। दासों राक्षसों से युद्ध करने के लिए संगठित न हुए इस कारण पराजित हो गये। और पंचनद बेरा से मगधे जाकर आज वे इस पार फिर लौट आये हैं।

बुध—हा, ऐसा। मनु का कहना उन्होंने क्यों न माना? संगठन ही तो शक्ति है। क्या आगे दास-जाति रहती है?

सुषुम्न—सिन्धु के उस पार दासों और दानवों के निवास-स्थल हैं।

बुध—किन्तु आर्य मनु उन्हें समझ तो सकते थे। इस समय मनु क्या है?

सुषुम्न—तप कर रहे हैं।

सुनता—यह तो बहुत कुछ हुआ आजकल कि आर्य लोग पराजित होकर सिन्धु के तट पर लौट आये? आप तो इन आर्यों की बड़ी प्रशंसा करते थे। क्या ऐसे आर्यों में हमको रहना होगा?

बुध—न जाने, यह क्या मेरा भ्रम था। यदि ऐसा है तो मुझे बस दुःख है आर्य!

सुषुम्न—किन्तु इससे मुझे कोई दुःख नहीं है। जो मिरते हैं वे ही चलना सीकते हैं आर्य।

बुध—यह तो ठीक है।

बुध—मुना उनही बहुत सी सन्तानों में एक पुत्री हुआ है। वह बहुत बुद्धिमती है।

सुषुम्न—( निरस होकर ) होगी, यदि वह बुद्धिमती होती तो

आपों की वह पराजय न होती।

बब—जहाँ सगटन की आबरूफटा हो बहा एक बुद्धिमान् कुछ भी नहीं कर सकता। इडा कहा है। मैं उनसे मिलूँगा।

मुघुम्न—इडा तनिक भी समझार नहीं है।

बुब—किन्तु वह तो बकी सुन्दरी है।

मुघुम्न—मुझे तो ऐसा कभी बात नहीं हुआ। आप उससे मिलकर क्या करेंगे ?

समता—बुबक, क्या तिन्यु-सट के आर्ष सब तुम्हारी तरह सुन्दर हैं ?

बब—तुम पहले मेरी बात का उधर हो। क्या मैं उससे मिल सकता हूँ ?

सुनता—तुम पहले मेरी बात का उधर हो बुबक ?

बुब—मैंने इडा की बकी प्रशंसा तुनी है।

मुघुम्न—वह बकी ककशा है। कटोर है। अमद्द है।

बुब—(सीधकर) किन्तु एक बार देखना तो होगा ही।

सुनता—बलो म्हाइ, बलौ। म्हा स कितनी बुर होगा वह प्रदेश ?

मुघुम्न—यास ही।

बब—बलिये आर्ष, दिलब हो रहा है। प्रात-काल से कुछ भी मौज नहीं किया।

[ सब बलन को तैयारी करते हैं। केवल मुघुम्न रह जाता है ]

बब—(मुघुम्न को देखकर) क्या तुम तिन्यु-सट पर नहीं बलोगे ?

सुनता—बलो न ? देखो, कैसा प्रदेश है।

मुघुम्न—(बुब से) आपका क्या नाम है ?

बुब—आप बुब ?

मुघुम्न—सुन्दर नाम है। क्या आप इडा से मिलना चाहते हैं ?

बुब—हाँ, क्या मैं ठठ आया स मिल सकूँगा ? यदि तुम उनस क मिलता हो तो बकी दया हो। (मुघुम्न के कर्धे पर हाथ रक्त हैता

है। इका को रोमांच होता है) हैं, तुम क्यों क्यों रहे हो ?

सुचुम्न—वो ही।

बुध—तुम बहुत गुस्से हो चुक। मेरी बहन सू या से क्यों विवाह नहीं कर लेते ? तुम्हें विवाह तो घामी नहीं किया है न ?

सुचुम्न—नहीं। किन्तु मैं घामी किसी से विवाह नहीं कर सकता।

बुध—क्यों, देलो वह दुम्हें देखते ही प्रेम करने लगी है।

सुचुम्न—पक्षिने विलास्य हो रहा है। आह वह प्रवेश किन्ना सुन्दर है सुन्दर सुबक ?

बुध—पुरुष मी कम सुन्दर नहीं है। मैंने दुम्हाय-देसा कोई सुन्दर पुरुष नहीं देला, दुम्हाय नाम क्या है ?

सुचुम्न—सुचुम्न।

बुध—सुचुम्न।

[ सुचुम्न सतुम्न नेत्रों से सुचुम्न की बेजली पृथ्वी है ]

सुचुम्न—बसो, बसो। राशि हो रही है।

[ सब बने जाते हैं ]

दूसरा दृश्य

( समय—घाट-आज )

[ बुध अपने बर्ष के साथ सिन्धु-तट पर। सुचुम्न उसके साथ है। साधारण घाट। दोनों घोर कुटीर बने हैं। लोप घा-जा रहे हैं। दोनों लोपे-लोपे से सब लोगों को बेज रहे हैं। ]

सुचुम्न—मैं घामी तक नहीं आया। बहुत विलास्य हो चुका है।

बुध—आ तो जाना आदिप। यद्यपि उन्होंने राशि को बलते समय मुझ से कहा था कि मैं प्रकृत करूँगा कि घायको मनु के दर्शन हो जाने। घाट-आज हो चुका। उनके दर्शन नहीं हो रहे हैं।

सुचुम्न—अब से मैंने सुचुम्न को देला है, उन्हें मैं विरमत नहीं कर पा रही हूँ, माई।

बुध—न जाने क्या आकर्षण है उस व्यक्ति में। मोला मुल, अंत-  
मेंही विशाल नेत्र, मुल के शोभा के साथ ज्ञान जैसे बिलर रहा हो।  
(एक व्यक्ति को पाठ से जाते देखकर) आपसे आपसे एक बात  
पूछनी है।

व्यक्ति—कहिये।

बुध—आप मुमुन को जानते हैं ?

व्यक्ति—(आश्चर्य से) मुमुन कौन, वहाँ कोई भी मुमुन है ऐसा  
मुझे खत नहीं है। (प्यार से देखकर) आप क्या कल ही उच्छरण से  
पपारे हैं ?

बुध—जी।

व्यक्ति—समझीजिये, मैं नहीं जानता। (बता जाता है)

बुध—सोग मुमुन जैसे तेजस्वी मुक्क को नहीं जानते। आश्चर्य है।  
[एक अन्य व्यक्ति घाता है। जाने बढ़कर]

आप, आप मुमुन को जानते हैं ? मैं क्या ही उच्छरण से आया  
हूँ। उनसे मिलना चाहता हूँ।

व्यक्ति—अच्छा आप ही उच्छरण से पपारे हैं। यह बहुत  
अच्छा हुआ। प्रातःलेखन तो कर लिया होगा। नहीं किया तो कर  
लीजिये। मैं अत्रि के गोश में रहता हूँ। नमस्कार।

बुध—आप मुमुन नाम क किसी व्यक्ति को जानते हैं ?

व्यक्ति—(एक घोर बालक को बुलाकर) वहाँ कोई मुमुन हो  
तो इन्हें बता दो। (बुध से) मैं मंत्र-दशन क अतिरिक्त कुछ नहीं  
जानता। (बता जाता है)

बालक—मुमुन को मैं बुला देता हूँ। आप ठहरिये। (बौड़ जाता है)

बुध—मनुष्य, कितने मद्र देवे सोग। इस सोग तो इनके सम्मुख  
असम्भव है। यह प्रात सबन क्या होता है ?

बुध—जानती तो मैं भी नहीं।

बुध—(एक व्यक्ति से) प्रातःसबन क्या होता है महाशय ?

व्यक्त—(आश्चर्य से) आप प्रातःसेवन भी नहीं जानते ? आप क्या करते हैं ?

बुध—इस लोग उत्तरायण से कल आये हैं, कोर हीन सी व्यक्ति ।

व्यक्ति—आप आर्य मनु से मिलिये व बतारोगे । इस लोग प्रातःकाल उठकर जो व्रत किया करते व उसे प्रातःसेवन करते हैं । (बता जाता है)

बुध—यह क्या सन्या ?

मनुष्या—न जाने । कहीं यह पून तो नहीं । देखती हूँ, सब लोग अग्नि कलाकर कुछ बोल रहे हैं । थारों कोर विधि हरय है मार । (बालक एक व्यक्ति को लेकर जाता है ।)

बालक—ये आ गये ।

बुध—आपका नाम—नहीं आप नहीं हैं । ये नहीं है मार ।

आर्गुण—क्या नहीं है ।

बुध—आपका नाम सुपुत्र नहीं है ।

आर्गुण—जी । वस्तुतः पहले मेरा वृद्ध है किन्तु मैंने नाम परि

वर्तन करने का निश्चय कर लिया है । सोचता हूँ सुपुत्र रत्न अपना सुपुत्र । परी कल मैंने इत बालक से क्या था । तो आपको मेरा कोनसा नाम ठीक आव होवा है ? देखिये, जो आप कहेंगे वही नाम मैं रख लूँगा ।

बुध—क्या तुम आर्य हो ?

आर्गुण—मे दस्तु हूँ । मुझे आर्यों के साथ रहना प्रिय है, इस लिए मैं मुझ के समय इन्हीं के साथ जाता आया । हाँ तो आप क्या निश्चय करते हैं ?

बुध—(हसकर) नहीं आप जाइये ।

मनुष्या—(बालक से) सुपुत्र कोई नहीं है क्या ?

आर्गुण—यदि इससे आपका कोन कार्य सिद्ध होवा हो तो मैं सुपुत्र नाम रख लूँगा । यदि आपको कद न हो तो अवरय परामर्श दीजिये ।

मनुष्या—( एक व्यक्ति को आये देखकर ) देखो, ये हैं सुपुत्र !

मैं बुझाती हूँ । (हँसकर बुझाती हूँ । वह धर्मित भाता है ।) भाव, भाव ही तुमुन्न है न ?

बुध—(घात जाकर) कहां तुमुन्न, मैं कल से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ ?

तुमुता—( हँसकर ) तुम तो धाय हो न ? इतना विलम्ब क्यों कर दिया ?

धार्गंतुक—देखा विलम्ब ?

बुध—कदाचित् धार्गंतुक के समय उत्तरायण के द्वार पर हम लोगों का मिलना तो धाय भूसे न होगे ।

तुमुता—धाय तो इतनी घीम भूलने वाली नहीं होते ।

धार्गंतुक—महाराज, मुझे खम्य कीजिये । मैं धायको पहचान नहीं रहा हूँ । क्या तावकाल मैंने धायको नहीं देखा, यह मैं विरवासपूर्वक कर सकता हूँ ।

बुध—मैरा नाम बुध है ।

तुमुता—मैरा नाम धनुता । हम कल ही उत्तरायण से बहा धाय हैं ।

धार्गंतुक—मैं धाय रोने का अधिवादन करता हूँ । मैरा नाम यथाति है ।

तुमुता—यथाति, तुमुन्न कहाँ है ?

यथाति—मैं तुमुन्न को नहीं जानता ।

तुमुता—धाय तुमुन्न को अवश्य जानते हैं । धाय ही की तरह तो हैं वे ।

बुध—बस्तुतः धाय जैसे ।

यथाति—( धायचर्च से ) धायको भ्रम हुआ है । कहीं आपने मेरे किसी माह को तो नहीं देखा ?

तुमुता—दा, दा, हो सकता है ।

यथाति—किन्तु तुमुन्न तो उनमें से किसी का नाम नहीं है । मैं धाय मनु का पुत्र हूँ ।



बुध—मैं आप मनु से मिलना चाहता हूँ।

अर्थात्—किन्तु ये इस समय समाहित है। आज सायंकाल को मिल सकेंगे।

सुनता—शुभति, सुसुम्न बहुत सुन्दर मुक्क हैं ?

अर्थात्—आप कहा ठहरे हैं ? मैं सायंकाल आपको पिता मनु से मिला हूँगा। अब आशा कीजिये (सुनता को छुप्या नेत्रों से देखता है)

बुध—(ध्यान में) आश्चर्य है साग सुसुम्न को नहीं जानते। अस्तु, सायंकाल हम लोग आज मनु से मिलने को उत्पन्न रहेंगे।

अर्थात्—(जाते-जाते लौटकर) आपका नाम ?

बुध—बुध।

अर्थात्—ये क्या आपकी मरिनी हैं ?

सुनता—इनके पिता मे मेरा पावन-पौपण किया है। मैं इनको अपना माई मानती हूँ। हम दोनों एक ही गोत्र के हैं।

अर्थात्—ठीक है। आपका मैं सायंकाल के समय आऊँगा।

[ जाता जाता है। एक और व्यक्ति का प्रवेश ]

अर्थात्—( उन्हें लौटते देखकर ) सुनिये, आपका नाम आर्य बुध है न ?

बुध—( लौटकर ) हा, हा कहिये।

अर्थात्—आपको क्या किसी प्रकार कष्ट तो नहीं है ?

बुध—हाँ, किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। प्रातःकाल होते-होते समूहों आकर एक सामग्री कुछ व्यक्ति आकर रख गये। आपको किन्तु मेका है ?

अर्थात्—इन लोगों के व्यक्तियों की आवश्यकता को ध्यान में रखता हूँ न

[ अर्थात् से सुसुम्न को बहुधातकर ]

बुध—क्या आपका नाम मैं पूछ सकता हूँ ?

अर्थात्—मेरा नाम इक्ष्वाकु है। मैं आर्य मनु का पुत्र हूँ।

सूनूता—आपकी आकृति सुपुत्र से बहुत मिलती है ।

इस्वाकु—सुपुत्र कौन, मैं उन्हें नहीं जानता । आपको और किसी वस्तु की आश्चर्यकता तो नहीं है ?

बुध—नहीं, आपकी कुला है ।

[ इडा का प्रवेश ]

इडा—माई, आप यहाँ हैं ? क्या आप लोगों को कुछकला का ज्ञान नहीं दिया जायगा ?

इस्वाकु—अकरम । (बुध से) क्या आपके बर्ग में ऐसे व्यक्ति हैं, जो कुछ विद्या सीखना चाहते हों ?

बुध—मैं स्वयं सीखना चाहता हूँ । इसके अतिरिक्त और बहुत से व्यक्ति हैं, जो इस प्रक्रिया में निपुणता प्राप्त करना चाहेंगे । क्यों ऐसी क्या आश्चर्यकता हो गई, हम सभी लोग साधारणतया कुछ-बिद्या जानते हैं ।

इस्वाकु—शायद यह है कि इधर अपनी शिपिलता के कारण हम लोग दस्यु, दानवों से पराभित हो गये हैं । इतलिय, तिस्रु के इस पार हमको रक्षना पडा है । अब पूरा संगठन के साथ क्या के परचात् हम लोग शत्रु पर आक्रमण करेंगे । उस कार्य के लिए मैं आपको कुछ के लिए तय्यत कर रहा हूँ ।

सूनूता—हा, वही तो कुछ आर्य सुपुत्र ने कहा था ।

इस्वाकु—यह आर्य सुपुत्र कौन हैं ?

बुध—न जाने, कुछ सार्मकाल के समय एक सम्बन्ध हमको उत्तरापथ की घाटी के बाहर मिले थे । वे दैतने में आप-जैसे ही थे ।

इडा—क्या नाम बताया था उन्होंने ?

बुध—सुपुत्र । क्या आप जानती हैं सुपुत्र कौन हैं ?

इस्वाकु—सुपुत्र को हम लोग नहीं जानते ।

इडा—तो क्या वे कुछ आपको उत्तरापथ की घाटी के पास मिले थे ?

सूनूता—जी । वे ही तो हम लोगों को लेकर वहाँ आये थे ।

बुध—आश्चर्य है, न जाने वे कौन थे ? (प्यार से देखता है । इडा से)

आप ही जैसे लक्ष्मण ।

इडा—मैं सुपुत्र को जानती हूँ । वे प्रातःकाल ही बाहर चले गये हैं । मैं उनको आपके पास भेज दूँगी ।

इक्ष्वाकु—सुपुत्र कीमत है इडा बहन ?

इडा—सुपुत्र एक धर्म है । आप उन्हें नहीं जानते ?

बुध—मेरी ये बहन उनसे विवाह करना चाहती है ।

सूता—आपके एक भाई शपाति भी तो हैं ?

इडा—हां, शपाति बड़ा उद्यत पुत्रक है ।

इक्ष्वाकु—शपाति बड़ा वैजस्वी है धर्म ?

बुध—(इडा से) आपकी मैंने बड़ी बधाति सुनी थी । (समूह ने सबों से देखता है ।)

इडा—आजकल हम लोग सुखोद्योग में संलग्न हैं धर्म ।

बुध—क्या आप धर्म सुपुत्र को दूना करके भेज सकेंगी ?

इडा—अचरित ।

बुध—अनुगृहीत हुआ । यह प्रवेश तो बड़ा सुन्दर है । हम लोग यहां से आये हैं, उधर शीत की अस्थिरता से प्रायः निकलते हैं ।

इक्ष्वाकु—तिस्रु के उस पार देखिये । इससे भी सुन्दर प्रवेश है । हम लोग वहां के पर्याप्त आक्रमण करेंगे ।

बुध—ठीक है । (सब चले जाते हैं । बुध इडा को पुकारकर) क्या सुपुत्र आपके साथ म आ सकेंगे ?

इडा—देखिये, मुझे हम दिनों तक भी अवकाश नहीं है । मैं चाहती हूँ आप हमें कुछ सहायता दें ।

बुध—मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि मैं आपके किसी काम आ सकूँ ।

इडा—(तैजी से) यह मेरा कार्य नहीं है । समस्त धर्मशक्ति का कार्य है । महाशय, शत होता है आपके सिद्धों के साथ व्यवहार करना भी नहीं आता ।

बुध—(धराराकर) क्या मैंने कोई अनुचित बात कही है। मुझे क्षमा करिये। मैं आपके पक्षों की शिक्षा से अनभिज्ञ हूँ।

इडा—मविष्य में ध्यान रखिये।

[ तेजी से चलने लगी है ]

बुध—तुष्टान में अनुचित नहीं कहा था।

### तीसरा दृश्य

[ समय—सार्धरात। सिन्धु के तट पर मनु ध्यान-मग्न अवस्था में। समाधि भंगी कुत रही है। चिरवाचिष्य बशिष्ठ, इक्ष्वाकु आदि बहुत से व्यक्ति प्रतीक्षा में बैठे हैं। तेजस्वी मनु धीरे-धीरे नेत्र खोलकर चारों ओर देख रहे हैं। जन ऋषियों को देखकर प्रताप करते ]

मनु—( बुतकरते हुए ) वास्तविक शान्ति आत्मा में है। भद्रा के बलिदान के बाद मेरा चित्त बहुत कुछ विचलित हो गया था। इसीलिए कदाचित् वेद में नारी को अर्धगिनी माना है कि वह हृदय, आत्म और शरीर की सभी श्रेणियों की संमिती है।

बशिष्ठ—भद्रा का ब्रह्म में प्रकृतनीप विश्वास था। उठना यदि हम लोगों का हो जब तो आत्मिक शान्ति का इतने सुमम मार्ग और नहीं हो सकता अर्थात् मनु।

बशिष्ठ—आपने आर्ष-जाति की रक्षा के लिए कर्म लिया है। इस लिए आपका प्रत्येक कर्म परोपकार के लिए है। भद्रा का बलिदान भी यज्ञ की हृदय के लिए हुआ है। और तो और उन बुध आकुलि और किरात को हम लोग मा म पहचान सकें। अन्वय्य बलि के लिए सामग्री उपस्थित करते देम हम उनको अवश्य पकड़ लेंगे।

इक्ष्वाकु—हम लोगों के यज्ञ प्रारंभ करते ही जब वे पेश बदलकर हमारे दातों के रूप में आये तो मैंने उनसे पूछा कि तुम कौन हो। उन्होंने बताया कि हम कृष्ण और वृष क मार हैं। आर्ष मनु की सेवा करते आये हैं।

मनु—इसीलिए शत्रु-यज्ञ पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

इस्वाहु—इस विश्वास के कारण ही उन दोनों ने बलि की सामग्री में हमारी मछली को मारकर इविष्य के रूप में उनके शरीर को हमारे सामने काकर रखा दिया।

विश्वामित्र—श्वशुर आपके भद्रा के विभाग में लपकते बेलकर हमने इडा की प्रेरणा तथा आपके पुत्रों की लक्ष्यता से एक विशाल सेना तैयार कर ली है। उसमें सभी ऋषियों के पुत्र सम्मिलित हैं।

मनु—यह ठीक हुआ है। परन्तु होने के परिणाम बड़ा करते हुए मैंने आपस निवेदन किया था कि इस पराक्रम के फलफूल को जो बसने का एकमात्र उपाय है युद्ध। मैं किसी के विरुद्ध नहीं हूँ। मर्याद भाति को संसार में भीवित रहने का अधिकार मिलना चाहिए। दस्यु भी उठनी ही स्वतंत्रता के अधिकारी हैं कितने कि हम आर्ष लोग।

इस्वाहु—किन्तु पिता हम लोग तो आर्ष हैं न ? आर्ष-धर्म, आर्ष-जाति ही ( बुध अर्थात्, सुभृता तथा अस्य आर्षों का प्रवेश ) संसार में भेष्य है। क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम जहाँ दस्युओं को शिक्षित करें, वहाँ अपनी संस्कृति द्वारा उनके उन्नत भी बनायें ?

मनु—यह सब प्रेम से होगा। धीरे धीरे उनमें अपनी सम्भावना का विश्वास उत्पन्न करने से होगा। मेरा तो विश्वास है यदि हम आर्ष लोग उनको अपना केवल बात ही न बताकर उन्हें अपने समान भी समझते तो यह युद्ध न होता। तुम बतनी-सी बात नहीं समझते।

मनु—साधारणतया यह सब उत्प होते हुए भी मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने सामने विरोधी प्रकृतियों के आते ही उन्हें बसाने के लिए संघर्ष करता है। मनुष्य स्वभावतः भित नातावरण, भिन्न अवस्था में पलता है उसका स्वभाव वैसा ही हो जाता है। मनुष्य नाता वरण का प्राणी है। भिन्न नातावरण में आते ही उसकी प्रकृति विरोध करने लगती है। दस्युओं की भी यही वृथा है।

नाभापोहिष्य—किन्तु यानों, राजसों का ठीक होना क्या सम्भव है ?

मेरा विश्वास है इनको न तो धार्य बनाया था तकला है और न वे कमी जीक ही हो सक्ते हैं।

मनु—दानव, राक्षस, देव्य मनुष्य जाति में नहीं हैं। वे लोग विचार और आकृति में भी पशु हैं। पशु-वर्गी और मनुष्य के बीच में जो गड़बड़ा है उठी बर्ग के वे लोग हैं। किन्तु यह जाति अल्प दिन तक धीरित नहीं रह सकती। यदि आप इनकी प्राचीनता की कोश करें तो शाय होगा कि वह जाति अल्प दिन-प्रति दिन क्षीण होती जा रही है। इससे मुझे कोई भय भी नहीं है।

इक्ष्वाकु—वीन वी धार्यों के साथ धार्य कुछ कल उत्तरायण सं धार्ये हैं। ( परिचय होने पर कुछ मनु को प्रमाण करता है ) वे इनकी बहम सुन्दर हैं। ( दोनों के प्रस्ताम को मनु स्वीकार करते हैं। ) धार्य कुछ में हमारे बर्म को सहयोग दिया है, मुझ की कुछ कलार्य भी उन्होंने हमसे धार्य है।

मनु—आपका दर्शन करके मैं हृत्हृत्स दुष्मा मनु धार्ये। मैं बहुत दिनों से आपका नाम सुनता आ रहा था। इती साक्षता को लेकर मैं दिव्यलय के शिखर से उतरा हूँ।

इडा—(घबराते हुए) कुछ हमारे लिए एक प्रेरणा है विता।

इक्ष्वाकु—और मेरे इत पुत्र-विभव की सुचना भी।

धर्माति—इनकी बहन, मेरी बाबी है सुनता।

मनु—आप लोग कुछ की तैशरी कीजिये। इत शरद् में हम लोग आक्रमण करेंगे।

मनु—( इडा से धीरे हुँतकर ) क्या अमर्य भी भी प्रसंता होती है आपक वहाँ ?

इडा—आपने उठ िन को कहा था कि वह पराजय विजय में बदलनी चाहिए, हम लोग उठी प्रेरणा के अनुसार काम कर रहे हैं।

इक्ष्वाकु—नामाग माँ बनवा रहे हैं। पूर मनुष्यों को बाध विद्य विन्ता रहे हैं। नारिप्येय और प्रांगु रापु पर आक्रमण करके विजय

प्राप्त करने की विधि बताते हैं ।

शत्रु—और बेटे हवा ?

इन्द्राक्षु—बलुतः सभी कुछ बहन हवा में किया है । हमोंने घोषों में जा-बाकर शत्रुओं को युद्ध के लिए प्रेरित किया है । इसके अतिरिक्त अयाज्ञा, शोषा, सूना, सोमासुखा आदि श्रुति-कर्मार्थों को हमोंने स्वयं स्वामलकी एवं युद्ध में अत्य-विषयत आयों की सेवा का भार सौंपा है ।

नामाय—( अक्षय से ) यह सब कुछ हवा में किया है । हमने कुछ भी नहीं किया, मारी का युद्ध से क्या सम्बन्ध ?

शत्रु—इसमें तुरी बात क्या हुई ? क्या बलुतः हवा में बिज-रात एक करके कर्म नहीं किया ?

नामाय—तू मूर्ख है ।

इन्द्राक्षु—तुम चुप रहो शत्रु ।

शत्रु—हूँ । बस जहाँ मनुष्य का मित्र है वहाँ शत्रु भी है वेद नामास ।

अक्षय—इस समय संपूर्ण ऋग में युद्ध की लहर दौड़ गई है ।

हवा—मैं सोचती हूँ कि युद्ध के ठपराँठ हम लोग इस प्रकार संगठित हों कि मनुष्य में कमी भी शत्रु से परास्त न हो सके ।

शत्रु—यह तो बर्द्ध-विभाष के बिना असंभव है । इस पर मैंने बहुत विचार किया है बेटे । इसके अतिरिक्त मैं इस युद्ध के लिए भी कुछ सेना-नायक तथा सशस्त्रि एक सेनापति को नियुक्ति करना चाहता हूँ । कस में सबसे युद्ध-डीमाल हैमूँगा सभी निर्बंध हूँगा । मैं पारल हूँ ऐनिको को श्रुति संघा ही मान ।

विश्वामित्र—यह पराभव हमारे ऊपर बड़ा कर्लक है शत्रु । इसको तो दूर करना ही होगा । हम लोगों का न तो बड़ में मन लगता है न उपायना में । प्रत्येक प्राची युद्ध ही युद्ध पुकार रहा है ।

शत्रु—यह शुभ लक्षण है शत्रु । मैं इन शीतों को लापुकार देता हूँ कि हमोंने अपनी अवाकपनी से काम टकना । वही तो श्रुतिवता है ।

मनि—ईश्वर आपका कहनाय करे मनु । यह पराजय हमारे किए  
कसक है । हमारा बिल्ल बहुत ही विनम्र हो गया है ।

मनु—इन्द्र की उपासना कीजिये वे ही हमारे मुद्द के देवता हैं ।  
कल प्रकृष्टकल सेना का निरीक्षण होमा ।

सब—हम लीय उचत हैं । ( 'घायं मनु की जय' के साथ तथा  
तमाप्त होती है । सब लीय उठकर जले जाते हैं । केवल बुध की मार्गना  
पर इडा रह जाती है । )

बुध—मुझे आपके दर्शनों को बड़ी लासला भी इडा देवी ?

इडा—सुधमन आज रात्रि को आपसे मिलेंगे । मैं उनसे कह  
दिया है ।

बुध—वे इत अवसर पर क्यों नहीं आये इडा !

इडा—कदाचित् उन्हें कोई कार्य निरोध होगा । (जाते लगती है)

बुध—क्या आप कुछ समय ठहर नहीं सकतीं ?

इडा—(कोम जरी दृष्टि से) नहीं, मुझे कार्य है । मैं अभी का गी  
हैं । जमा कीजिये ।

बुध—मैं तुमसे (कहते-कहते बककर)

[ इडा बिना कुछ बतार बिये प्रत्याग करके जाती जाती है ।  
पकेते हैं ]

इडा—तुम्हारी शोचनीयता भी मेरे स्वर्ग का स्वप्न है ।

### चौथा दृश्य

[ विष्णु बड़ी का तट । जम्बूका की टिकने बिचारकर सहरों से  
प्रकलितिया कर रही हैं । सब और प्रकाश फल रहा है । सब और सुन  
ताम है । सुधुम्न और बुध का प्रवेश ]।

सुधुम्न—इसी स्थान पर क्यों नहीं बैठते ? देखो, यह कितना सुन्दर  
स्थान है । तुम्हारी तरह मनोरम ।

बुध—(उम्बल-ता) मेरी तरह नहीं तुम्हारी तरह आस्पद्य । तुम से



बहुत-कुछ कहना है आरि सुपुम्न ! आरि मुझे बात बुझा दे, तुम्हें यहाँ कोई नहीं जानता केवल इडा देवी जानती हैं । क्या तुम उनके कोई गुप्तपर हो ?

सुपुम्न—हा, इडा की मेरे ऊपर बहुत कुश है । मैं उनकी इच्छा के अनुसार मुझ-सोचना में संलग्न रहता हूँ । तुम उदात्त क्यों हो ?

बुध—इसलिए कि तुम तथा आदर्य रहते हो । जब से मैंने तुम्हें देखा है तभी से मैं तुमको अपना मित्र मानने लगा हूँ । किन्तु तुम्हारी गति-विधि ही कुछ समझ में नहीं आती । देखो, तुम इडा देवी के गुप्तपर हो । क्या उनसे मेरा एक कार्य न करा दोगे ?

सुपुम्न—क्या ?

बुध—मैं इडा देवी से प्रेम करता हूँ, किन्तु वे लोभे मुझ बात ही नहीं करती । आरि समा के पश्चात् मैंने उनसे कुछ निवेदन करना चाहा, किन्तु वे बिना उत्तर दिये प्रस्थान करके चली गईं । वे मुझे अस्वस्थ समझती हैं ।

सुपुम्न—उनका स्वभाव ही ऐसा है । वह देखने में कितनी सुन्दर है उठनी ही फटोर, मैंने तुमसे कहा था न ?

बुध—किन्तु मैं उनके बिना अधिष्ठित नहीं रह सकता । मैंने कल्पना में कित्त मूर्ति का निर्माण किया था वह उससे भी सुन्दर हैं ! क्या तुम उत्तरापथ की उठ घाटी के द्वार पर रहते हो और इसीलिए हर समय नहीं मिल सकते ?

सुपुम्न—इडा मुझे जहाँ भेज देती हैं वही रहता हूँ । क्योकि ही इडा तुमसे प्रेम कर लेंगे ।

बुध—क्यों ! क्या मैं असुन्दर हूँ, निर्मल हूँ । यदि मैं जाँह तो केवल अपने बर्ग के लोगों को लेकर ही मुझ-विषय कर सकता हूँ ।

सुपुम्न—यदि तुम्हारी बात इडा को बात हो जाय तो वे अनवरत प्रसन्न होंगी ।

बुध—ठीक तुम वह बात उनके कानों में डाल देना ।

सुधुम्न—तब तो यह है कि इका तुमको चाहती है ।

बुध—कैसे-कैसे ?

सुधुम्न—आज प्रातःकाल जब मैं उनके बाठ गया तो मैं जाने क्यों बारबार तुम्हारा नाम पन्थी पर खिल रही थीं ।

बुध—अच्छा, किन्तु मुझे कैसे अत हो ?

सुधुम्न—इतना कोई उपाय नहीं है । वे स्वभाव से गम्भीर हैं । वे ऐसी कोई बात अपने ल से न मिचालेंगी जिससे बात हो कि वे तुम्हें प्रेम करती हैं ।

बुध—(उत्सह होकर) फिर ? वे तो मुझे अमर समझती हैं सुधुम्न ?

सुधुम्न—(सोचकर) फिर भी मेरा विश्वास है कि वे तुम्हें प्यार करती हैं ?

बुध—किन्तु मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकता । मैं मुझ से पूर्व ही कहीं जाता जाऊँगा । किन्तु तुम मेरी बदन तुम्हारा से विवाह क्यों नहीं कर लेते ?

सुधुम्न—मैंने अपने विवाह का निश्चय कर लिया है । इसी स मैं तुम्हारा सं विवाह नहीं कर सकता ।

बुध—क्यों ?

सुधुम्न—उसको बताने से तुम्हें कोई लाभ नहीं है ।

बुध—तो तुम निश्चयपूर्वक करते हो कि इका तुम्हें प्रेम करती है ?

सुधुम्न—ऐसा मुझे अत हो रहा था । (बुध उत्सह होकर उठकर बताने लगता है । सुधुम्न उसके बात जाकर) तुम क्या सोच रहे हो ?

बुध—सोच रहा हूँ यह तुम्हें क्या होता था रहा है ? (सुधुम्न के हाथों को अपने हाथ में लेकर) मैं इका के बिना जीवित नहीं रह सकता सुधुम्न ।

सुधुम्न—तुम्हें क्या लक्ष्य है । हाँ, यदि मैं स्वी होती तो अचर्य तुम से ही विवाह करती ।

बुध—न जाने बिधाता ने मुझे इतना सुन्दर बनाकर भी पुत्र क्यों बनाया !

सुसुम्न—(बठकर) तो क्या पुत्र सुन्दर नहीं होते !

बुध—किन्तु स्त्री का धीमर्त्य पुत्र ही देख लफटा दे स्त्री नहीं। फिर भी कभी-कभी मुझे शाव होता है जैसे तुम पुत्र न होकर स्त्री ही हो।

सुसुम्न—वह तुम्हारा भ्रम है।

बुध—भ्रम तो दे ही। किन्तु मुझे ऐसा लगता है, इसके लिए मैं क्या करूँ ! भ्रान्ति का भी तो अस्तित्व है ही सुसुम्न !

सुसुम्न—भ्रान्ति का अस्तित्व बुद्धि में होता है, बस तो शुद्ध ही होती है धार्य ! अप्त्वा, कल्पना करो कि मैं स्त्री ही हूँ, फिर तुम क्या करोगे !

बुध—पाकर मे आहार की कल्पना करके उदर तो नहीं भरता न !

सुसुम्न—तो आओ तो मैं तुम से न बोझूंगा। तुम मुझे पत्न्य समझते हो। (बठकर जाने लगता है।)

बुध—नहीं, नहीं, मैंने तो इहाम्भ दिवा है माई ! अप्त्वा मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम स्त्री हो किन्तु (फिर ठिठककर) नहीं, नहीं, बोधो इन बातों को आओ इबा के सम्बन्ध में बातें करें।

सुसुम्न—कल्पना करो कि मैं इबा हूँ, अब फिर !

बुध—तो मैं कर्हूंगा तुम अद्वितीय कल्पनी हो जिये !

सुसुम्न—फिर !

बुध—फिर क्या, इबा कुछ उधर तो होंगी ही। वह तुम उधर हो।

सुसुम्न—हाँ, उठने उधर दिवा। आगे क्या करोगे !

बुध—(ईबकर) आगे तो उठके उधर पर निर्भर होगा न !

सुसुम्न—अप्त्वा मान जो उठने उधर दिवा कि मैं कुरूप हूँ।

बुध—वह मैं मान नहीं लफटा। कोई स्त्री यिनतम के सम्बन्ध अपने को कुरूप न करेगी।

सुसुम्न—तो क्या करेगी !

बुध—यह कहेगी—तुम भी बड़े सुन्दर हो प्रियतम ?

सुषुम्न—समझ लो मैंने बही क्या—आग ?

बुध—समझ लो नहीं, कबो ।

सुषुम्न—तुम भी बड़े सुन्दर हो प्रियतम !

बुध—तब मैं उसके शरीर पर हाथ रख दूँगा । (हाथ रख बैठा है, सुषुम्न को एकदम रोनाच हो जाता है) है, तुम कपि क्यों रहे हो ?

सुषुम्न—न जाने क्यों ऐसा हो गया ? जाने दो । जब मैं अचरय हवा से तुम्हारे प्रेम का वर्णन करूँगा । किन्तु यह स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है किसलिए ?

बुध—यह तो स्वामाविक है मार्ल ।

सुषुम्न—स्वामाविक होते हुए भी सच्चि-निर्माया इसके मूल में है । मिया मनु बही लो कहते हैं ।

बुध—सृष्टि की उत्पत्ति किस लिए है ?

सुषुम्न—सृष्टि जीवन का विकास है । बही लो बेद कहता है ।

बुध—बहि न हो लो क्या हानि है ?

सुषुम्न—न होना अस्वामाविक है । इस सृष्टि का होना भी स्वामाव है ।

बुध—यह स्वभाव की प्रेरणा किसने थी ?

सुषुम्न—प्रलय में ? प्रलय अपार नाश प्रकृति है और जीवन विह्वलित है । प्रकृति एक-ही अपने रूप में कभी नहीं रह सकती । उतमें परिवर्तन होना स्वामाविक है । यह परिवर्तन ही जीवन है, उसी का बृषरा नाम सृष्टि है ।

बुध—यदि मनुष्य की सृष्टि न होकर पशु-पक्षियों की ही सृष्टि होती तो क्या हानि थी ?

सुषुम्न—यह भी अताभव है । पशु-पक्षी के बाद मनुष्य का उत्पन्न होना अचरयव्यग्री वा । यह लो जीवन का विकास है । विकास को जीवन लोक कहता है ?

बुध—मनुष्य के पर्याप्त क्या होगा !

ब्रह्म—मनुष्य के बाद भी मनुष्य । अधिक विकसित मनुष्य । मनुष्य प्राकृतिक परिभ्रम की पराकाष्ठा है । हा, उठकी भेदियाँ हैं । उन्हीं भेदियों में वह विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचेगा । उन्हीं में बराबर संपर्क होते रहेंगे । वह मनुष्य का नहीं उठकी प्रकृतियों का संपर्क होगा । उठ संपर्क में ही जीवन का अन्त है ।

बुध—क्या मनुष्य कभी देवता नहीं बनेगा ?

ब्रह्म—यह भी तो एक प्रकृति है । भेद प्रकृतिवा ही उठके देवता बनाती हैं । निरुद्ध प्रकृतियों से वह नीचतम भेदों का मनुष्य बना रहता है ।

बुध—क्या तुम बता सकते हो, इस सृष्टि का अन्त कहाँ है ?

ब्रह्म—वहाँ इस नहीं का अन्त है ।

बुध—समस्त नहीं ।

ब्रह्म—किस प्रकार हम नदियों का अन्त सागर में है, ठा प्रकर इस सम्पूर्ण विश्व का अन्त किसमें प्राय वर्तमान है, महाप्रलय है । महाप्रलय न प्रकर है न अन्तप्रकर । न जीवन है न मरण ।

बुध—तब वह क्या है ?

ब्रह्म—वह प्रलय अन्तप्रकर होते हुए भी वास्तविक है स्वयं अन्तप्रकर नहीं है । उठमे गति है, आलोक है और तब कुछ है, किन्तु वह स्वयं क्या है, वह क्या नहीं का सङ्गत ।

बुध—तुम तो बड़े जानी भी हो ।

ब्रह्म—अन विस्तृत से प्राप्त होता है । पिता करते हैं कि तुम अपना मार्ग स्वयं सोचकर निकालो । तुम्हारे सब सम्पन्न तुम्हारे भीतर हैं । जैसे हमारे ज्ञान में प्रश्न उठते हैं जैसे ही उनके उत्तर भी हमारे ही ज्ञान में हैं । जानते हो पिता ने हमारा नाम मनुष्य क्यों रखा है ?

बुध—इसलिए कि हम मनु के निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हैं । मैं तुम्हें बताऊँ ब्रह्म, जैसे हम इतर जाते हैं जैसे ही कुछ लोग इतर से भी

उभर गये हैं। उन्होंने मनु के निर्दिष्ट माग का पाठ वहाँ के लोगों को पढ़ाया है।

सुपुम्न—हाँ, मैंने स्वयं कुछ लोगों को लौट्ये देखा है।

बुध—वहो बहुत समय हो गया। सुपुम्न मैं नहीं जानता या तुम में रहना खत है। क्या ही अशुद्ध होना कि इका

सुपुम्न—मैं इका से इस सम्बन्ध में कहूँगा।

बुध—यदि कबो तो मैं उनसे स्वयं मिलूँ। अब तुम आकाश की बातें उन्हें सुना दोगे तब मैं उनसे मिलूँगा।

सुपुम्न—हाँ ठीक है। (दोनों एक ओर से निकल जाते हैं। शर्पति पीर सुनता का प्रवेश)

शर्पति—अज्ञानित् वहाँ भी आर्य बुध नहीं हैं।

सुनता—न आर्य कहां जाते गये? सुपुम्न के साथ इधर ही तो वे आये थे?

शर्पति—वह सुपुम्न खोन है?

सुनता—शर्पति, तुम्हें क्या बतार्क मैं सुपुम्न से कितना प्रेम करती हूँ।

शर्पति—(उदास होकर) मैं विस्वातपूर्वक कह सकता हूँ सुपुम्न नाम का कोई मनुष्य इस सारे बर्ग में नहीं है।

सुनता—मैं कैसे कहूँ कि सुपुम्न नाम का कोई व्यक्ति नहीं है। वे हमारे साथ ही तो मार्ग दिखाते वहाँ आये। फिर आर्य बुध उनके साथ इस तरह की ओर आये हैं?

शर्पति—आश्चर्य है?

सुनता—आश्चर्य नहीं सत्य है शर्पति?

शर्पति—यदि सुपुम्न कोई व्यक्ति न हुआ तो (उसकी जाँचों में देखकर) फिर?

सुनता—तो मैं क्या कहूँ शर्पति, तुम ऐसे क्यों रहते रहे हो?

शर्पति—कैसे सुनता?

सुनता—बैठे मैं सुपुत्र को देखना चाहती हूँ ।

अर्थात्—मैं तुमको सुपुत्र की तरह देखना चाहता हूँ प्रत्यक्ष शर्माति बनकर ?

सुनता—नहीं, नहीं, तुम ऐसे मठ के शर्माति ! मैं सुपुत्र को देख कर चुकी हूँ । मैंने उनसे कई बार प्रार्थना की किन्तु

अर्थात्—उठने क्या उठत दिवा ?

सुनता—उहाँमे को उठत दिवा यह क्या हृदय-विदारक है शर्माति !

अर्थात्—क्या ?

सुनता—कही कि मैं किती स्त्री से विवाह नहीं कर सकता ।

[ एक स्थल पर बैठ जाती है । अर्थात् उसके समीप बैठकर ]

अर्थात्—सुपुत्र मैं यह उठत दिवा ?

सुनता—हाँ शर्माति, तुम क्या सोच रहे हो ?

अर्थात्—कुछ नहीं बही कि सुपुत्र कौन है ?

सुनता—(अर्थात् के कानों पर हाथ रखकर) कौन हैं यह ?

अर्थात्—बही तो सोच रहा हूँ कि यह कौन है । यदि सुपुत्र पुष्प न होकर स्त्री हो ता ?

सुनता—क्या यह कभी सम्भव है ? नहीं, यह कभी सम्भव नहीं है शर्माति ! मुझे तो कभी-कभी तुम्हीं देखकर सुपुत्र का भ्रम हो जाता है ।

उस दिन भी ऐसा ही हुआ ?

अर्थात्—आश्चर्य है ! (सोचता रहता है)

सुनता—बली पत्तों । ये नहीं नहीं है ।

[ उठकर ]

अर्थात्—मेरा विश्वास है सुपुत्र मैं जब स्त्री से विवाह न करने को कहा है तब आश्चर्य हलमें कोई रहस्य है ।

सुनता—मैं बहुत चुकी हूँ शर्माति । न जाने क्यों सुपुत्र को देखते ही मैं उनसे प्रेम करने लगी ।

अर्थात्—क्या तुम्हारा विश्वास है मेरी शर्माति सुपुत्र से

मिलती है।

सुनुता—हाँ, तुम दोनों की भावना एक-ही है।

धर्माति—तब अवरुध कोई मेरा भाई होगा। हम लोग इस भाव  
वरुन हैं।

सुनुता—तब निश्चय ही वे तुम्हारे भाई होंगे। निश्चय (प्रथम  
होती है।)

धर्माति—किन्तु उनमें से किसी का भी नाम सुशुम्न नहीं है।

सुनुता—निश्चय ही उसका नाम सुशुम्न है। मुझे अशुभी तरह याद  
है। सुशुम्न ही, वही नाम तो है।

धर्माति—मैं सुशुम्न को एक बार देखना चाहता हूँ सुनुता।

सुनुता—मे अमी-अमी तो आया सुशु के साथ इत और आये हैं।

धर्माति—बसो हूँ दे।

सुनुता—रक्त के मनुष्य बड़े रहस्यमय होते हैं शर्माति प तो।

धर्माति—उहरो, मैं एक बात कहना चाहता हूँ।

सुनुता—क्या ? कहो, शीघ्र कहो, विलंब हो रहा है, मैं जानना चाहती  
हूँ कि वे दोनों कहाँ बसो गये ?

धर्माति—तो क्या तुम सुशुम्न के साथ विवाह करना चाहती हो ?  
यदि वह म करे तो।

सुनुता—तो भी मैं चाहती हूँ कि वह मेरे साथ विवाह करें। मैं  
उनको चाहती हूँ शर्माति, मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकती।

धर्माति—इसी प्रकार यदि कोई सुशुम्न किसी कन्या के साथ विवाह  
किये बिना जीवित न रह सकता हो तो।

सुनुता—तो उस कन्या को चाहिए कि ऐसा प्रेमी से अवरुध विवाह  
करे। किन्तु यह क्या, तुम ऐसी बातें क्यों कह रहे हो ?

धर्माति—तुनो सुनुता, मैंने जब से तुम्हें देखा है तब से मैं तुमसे प्रेम  
करने लगा हूँ।

सुनुता—(अवराव) यह तो बुरी बात है शर्माति। मैं तुम से विवाह



केसे कर लक्ष्मी है ?

धर्माति—तून्ता, आबों का मन अरथान पर कमी नहीं दिगता ।

तून्ता—तुम्हे मुझे विभ्रम में डाल दिया । अबो (मन में) आबों का मन अरथान पर नहीं दिगता । वह कितना ठस है ।

## तीसरा अंक

### पहला दृश्य

[ सिधु के उत बार आबों के भित्तिर । मन बहुत रहे है एक ठीके डिगार  
पर वहाँ से मुड की कुछ भी पतिविधि रिबाई नहीं दे रही है । ]

मनु—(घूमते हुए) आबों को इस विभव में ही तनकी उन्नति,  
उनका विभव निश्चित है । इस लम्बी नाक, विशाल मस्तक, लम्बे मुक  
वाली बुद्धिमान् काति को भीकिय रहना है उसे मुड तो करना ही पड़ेगा ।  
बीज को भी तो पृष्ठी थोड़कर निकलते समय संभर करना पड़ता है ।  
नदी-प्रवाह को पर्वतों के उतर से निकलने के लिए पत्थरों को थोड़-थोड़कर,  
शिला-स्वर्णों, दृष्टों को पीतते, उलाकते हुए आगे बढ़ना पड़ता है ।  
उहि प्रगति का नाम है, जो जीवन को अचिक-से अचिक सुसंगत बना  
सकने पर ही सफल होमी । इत समय आबों के अतिरिक्त कोई ऐसी  
जाति नूतन पर म्ही है जितकी संस्कृति से जाने वाले संवार को लाभ  
हो सके । मुझे स्वर्ण के आनूषण गदकर वहाँ राजाओं के लिए मुकुट  
निर्माण करमे होंगे वहाँ इन शिलाओं की सुन्दर मूर्तियों का भी निर्माण  
करना होगा । मैं काम निर्माण करना है । मेरे पूर्वजों ने मनुष्य को पशु  
से मेद करना सिखाया । उनमें काम, शेष, शोभ, शोह, स्त्री-पुष्प की  
बिबेचना उत्पन्न की, विचार दिये, विचारों के अनुसार अमिम्बजना दी  
और अमिम्बजना के अनुकूल माया की । मैं मनुष्य में कितन शक्ति हूँगा ।  
उनके समक का निर्माण करना मैं काम्य है । कीन ! अरे शर्माति !

[ धर्माति का प्रवेश ]

धर्माति—मिया शबु पूर्व कम सं पराजित हो रहे है । उल्लत एक-

एक करके समाप्त हो रहे हैं। दस्तुओं का साहस एक प्रकार से समाप्त-  
ता है पिता।

मनु—ठीक हो रहा है किन्तु देखो इत्थाकु और गुप से मेरी ओर  
सं कहना कि व्यय की इत्था न करें। जैसे ही शत्रु अस्त्र बाल दें जैसे ही  
हमें बन्दी बना लिया जाय।

धर्माति—ओ आजा। (बाले लपटा है)

मनु—ओर देखो, उस बासुकि ओर विन्न को भीरित पकड़ने की  
आवश्यकता है।

धर्माति—बहुत अच्छा पिता, बहन इत्ता मी मुद्द कर रही हैं।

मनु—अच्छा! यह कन्ना अताधारय है।

धर्माति—आर्ज-गुप तो बड़े भीर निकले। उन्होंने शत्रु के झुके  
सुना दिये।

मनु—अच्छा है। यह न होता तो हमारे लिए कोई स्थान मी तो  
नहीं था।

[ विश्वामित्र का प्रवेश ]

विश्वामित्र—आर्य मनु, इस बार मेरा अतिवस्तु अगुरुक हो गया।  
मैंने मी शत्रुओं का लूट ही दमन किया। (रक्त पोंछते हैं)

धर्माति—श्रुति विश्वामित्र अिष समय मन्त्र पढ़कर बाय्य श्लोकते  
ये उक्त समय राक्षसों में त्राहि त्राहि मन्त्र आती थी। (जाता है)

मनु—यह कन्ना, आपके हृदय से रक्त बह रहा है। सन्ने अत्रियों  
की पहचान रक्त-दान है। वस्तुतः आप अर्हा अर्हा हैं बर्हा राक्षसों मी हैं।  
(उनके रक्त को पोंछते हैं। लूनता बौड़कर अंत जाती है। विश्वामित्र  
एक शिलाछात्र पर बैठ जाते हैं। लूनता उनका रक्त पीती है इत्ती के  
साथ मेवय्य में 'अय अय की प्वनि मुनाई बेती है।) शांत होता है, हम  
लोग पूरा कर से अिअपी हुए।

( बहुत से अत्रिय मनु के सम्मुख आते हैं। 'अय अय' करते हुए  
अपिर में अहाये हुए, अंत अिअत। मनु सबको अिसम्नता की वृष्टि से

देखकर उनका स्वागत करते हैं। सोवामुद्रा, घोषा अथवा तथा अन्य कई ऋषि-अम्हारें घोडाघों की सेवा करती उन्हें से जाती दिखाई देती हैं। इसके पश्चात् मनु के पुत्र बभ्रुवृ, धन्वि आदि ऋषि आते हैं। सब एक स्वर से कहते हुए 'जय हो आर्यों की' 'जय हो मनु की'।)

वन्धुओं, मैं इस विजय पर आप सबको बधाई देता हूँ।

सब—यह आपके ही पुत्रव प्रताप का फल है।

ऋषि—आर्य मनु, वस्तुतः तुमने ही आर्यों को पुनरुद्गीर्णित किया है।

सैनिक—हमारी विजय आपकी विजय है और आपकी विजय आर्य जाति की विजय है।

मनु—मुझे ऋषियों के आशीर्वाद पर और आपके बल पर पूब निश्चाय या वन्धुओं। क्या वे बानुकि और विप्र जीवित हैं।

इस्वाक—हम लोग आपकी आज्ञानुसार दोनों को भीवित पकड़कर लाये हैं। (संकेत करने पर वे जाते जाते हैं।)

मन—(बानुकि और बिल्ल की ओर प्रेन से देखते हुए) तुमने स्वर्ग ही इतना उपद्रव सजा करके हमको तथा अन्य आर्यों को इस परिस्थिति में आका, क्या तुमको इतका कोई लौह नहीं है ?

बानुकि—यह देश हमारा है तुम्हारा नहीं।

बिल्ल—हम इस देश के स्वामी हैं। यह हमारा कृतम्व था कि हम तुमको मारकर अथवा बल करके यहाँ से हटा देते। बही हमने किया।

मनु—तुम यह कैसे कह सकते हो कि यह भूमि तुम्हारी ही है ?

बानुकि—इसलिए कि तुम न आने कहीं से कहीं आ रहे हो। हम लोग इस देश के पुरानेवाली हैं।

मन—यह तुम्हारा भ्रम है भाई ! हम लोग भी इसी भूमि के निवासी हैं। हिमालय इसी भूमि का पर्वत है। हम लोग केवल हिमालय से उतर कर स्थल में आने से विदेशी कैसे हो गये ? बल प्रलय के समय कितनी भूमि आज तुम यहाँ देखते हो वह सब कुछ नहीं थी। हिमालय की

उपलब्ध तब बल ही बल था। उस समय भी मैं महा था। उससे पूर्व भी हमारे आर्य इसी भूमि पर रहते थे।

बिम्ब—किन्तु हमने तो सुना है आर्य लोग बाहर से आये हैं।

मनु—यह तुम्हारा भ्रम है। इसके अतिरिक्त हम तुम पर कोई अत्याचार तो नहीं करते केवल तुम्हारे साथ मिलकर रहना चाहते हैं। तुम्हें इस पृथ्वी को भोगने का उतना ही अधिकार है जितना हमको।

बाबुकि—आर्य लोग बुद्धिमान हैं। हम तुम्हारी अपेक्षा कम जानते हैं। यदि हम तुम लोगों में रहेंगे तो हमारे संस्कार हमारी अति नष्ट हो जायगी। इसीलिए हम आर्यों को इस भूमि पर नहीं रहने देना चाहते।

अग्नि—किन्तु तुम यह तो चाहते हो कि तुम भी आर्यों की तरह बुद्धिमान बन जाओ ?

बिम्ब—हा, क्यों नहीं। किन्तु आपसे हमें मर भी कम नहीं दे।

अग्निष्ठ—जब तुम हम सब साथ-साथ रहेंगे तो तुम में भी वे ही भाव आ जायेंगे जो हम में हैं।

मनु—स्पष्ट तो यह दे कि हम बलवान् होते हुए भी तुम्हारा विनाश नहीं चाहते। यदि तुम्हें हमारे साथ मार मार बनकर रहना हो तो हम उच्छ्रित हैं। अन्वया तुम्हें इस भूमि को छोड़ देना होगा।

बाबुकि—हमको बाल तो न बनाया जायगा ?

मनु—हम तुमको अपमा स्वामी बना लकठे हैं यदि तुम बन लको।

बाबुकि—तो टीक है हम लोग आर्यों के गोत्रों में समानाधिकार भोगते रहेंगे।

मनु—स्वीकार है। तुम्हारे ऊपर कोई अत्याचार न होगा।

बाबुकि—हमारा कार्य क्या होगा।

मनु—जो काम तुम पुनो, जो तुम्हें स्वीकार हो। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे, तुम्हें खान देंगे। तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता होगी कि कृमरी को कष्ट न पहुँचाते हुए तुम से रक्त लवेंगे। न हम तुम्हारे निवासों में बाधा देंगे और

न किसी प्रकार का कष्ट ही तुमको होगा।

बाबुकि—तो हम कभी मुक्त नहीं करेंगे।

बिम्ब—किन्तु मैं तो आसों के साथ नहीं रहना चाहता।

मनु—तो तुम जहाँ इच्छा हो क्या सकते हो।

बिम्ब—आर्थ लोग हमें क्या तो न देंगे।

मनु—यदि तुम उनके मार्ग में आकर लड़े न होगे।

बिम्ब—हम बना में रहेंगे। हम से आसों से कोई सम्बन्ध नहीं।

मनु—पैसी तुम्हारी इच्छा। इच्छा और बुध कहाँ हैं?

इच्छा—मे नहीं आये। न जाने क्या हुआ।

मनु—हा मेरी बेटी इच्छा को लोभो। यही मेरी बुद्धि है इच्छा।

[अप-बोध के साथ सब जाने जाते हैं। मनु लड़े-लड़े सोचते विचार्येते हैं।]

### बृतरा हृदय

[समय—संध्या। वन में एक व्यक्ति मुष्मल पर आराम कर रहा है। मुष्मल लकड़ों के पत्तों के बराबरी कर देता है। इतने में पीछे से एक बसु कुंत लेकर लकड़ों पर दूध पड़ता है कि दोनों में बसु मुड़ होवे लकड़ा है। मुष्मल गिर जाता है। बसु कुंत से मुष्मल का गिर काटना ही चाहता था कि बिजली बुध उभर आ निकलता है और अचानक एक बाल से बसु को मारकर गिरा देता है। फिर भी बिना मुष्मल की और ध्यान दिये ही वह चलने लकड़ा है। किन्तु मुष्मल के कराहने का सब मुष्मल उठी तरह लीकता है। आकर देखता है कि मुष्मल सब बिजल घतक होकर भूमि पर पड़ा है। बुध उठे देखते ही विगित्य होकर]

बुध मुष्मल यह क्या हुआ! (उठे देखता है और पाठ से बल लाकर उसके मुँह में डालकर देखता हुआ) यह मैं क्या स्वप्न देख रहा

हैं ? (बीरे-बीरे से मुस्कराकर बैसता रहता है)

सुघुम्न—(मूर्च्छित अवस्था में) बुध, आर्य्य बुध, प्रियतम !

बुध—( खड़ा होकर प्रसन्नता की बसाता हुआ ) मेरे आदर, तुम बड़े बलवान् हो । यह तो सुघुम्न नहीं आया हवा है । देवी, हवा (बल वासता है शैतनता वाली है)

सुघुम्न—(घाँसों खोलकर मुस्कराता हुआ) तुम कब आये ?

बुध—घामी तुम्हारे कराहने का शब्द सुनकर । एक व्यक्ति तुम्हारे ऊपर आक्रमण कर रहा था न ? उसको मार देने के पर्यात् मैं तो आ रहा था किन्तु तुम्हारी बोली पहचानकर हजर रीबा । आज मैं कितना प्रसन्न हूँ सुघुम्न ?

सुघुम्न—क्यों ?

बुध—इसलिए कि छल का अन्त भी बड़ा मधुर निष्ठा ।

सुघुम्न—छल कैसा छल ?

बुध—छली उठ आनन्द को कहां जान पाया है सुघुम्न, कितना कि यह किस छला जाय ।

सुघुम्न—किन्तु आर्य्य लोग तो कभी किसी से छल नहीं करते । मैं तुम्हारी बात नहीं समझी ।

बुध—'नहीं समझी' इसका सबसे बड़ा प्रमाण है हवा ।

सुघुम्न—( बग़ावती कोच से ) तुम मुझे हवा समझते हो । मैं सुघुम्न हूँ ।

बुध—नहीं, मैं कल्पना करता हूँ कि तुम हवा हो । आज मेरे नेत्र तुमसे नहीं आ सकते, बुद्धि को पहचाना नहीं आ सकता हवा ?

सुघुम्न—तुम क्या कर रहे हो ?

बुध—वही जो तुम हो । (पठता है) हवा देवी !

हवा—प्रियतम, यह शरीर यह आत्मा यह मेरा मानव आज तुम्हारे बरकों में समर्पित है आर्य्य ? इसे स्वीकार करो । ( बरकों पर बिर जाती है । सुघुम्न पठता है । )

बब—मन, प्राण और बुद्धि से मैं तुम्हारा मक हूँ रहा। एत विषय का फल मुझे क्या मचुर मिला। आशाहीन, अभूतपूर्व।

इडा—दो प्राणों का मिलन प्राणों को विजय है।

बुब—दो हृदयों का मिलन तपि को विजय है इडा।

इडा—तुम कितने सुन्दर हो विजयतम।

बुब—तुम कितनी निष्ठुर हो विजयतमे, कि तुम मुझे क्या कृतज्ञ रही। किन्तु नहीं, मैं कहता हूँ—विजयतमे, तुम अद्वितीय हो। अब तुम इसका उत्तर क्या होगी? क्या यह कि विजयतम—मैं तो कुकन हूँ। मैं अपनी तरफ से कहता हूँ—'मैं कितना कुकन, बीन, हीन हूँ विजयतमे!'

इडा—यह मेरा मनुष्य का रूप था। (बोनों हँसते हैं)

बुब—मला तुमने यह पुरुष का रूप क्या रखा?

इडा—एत पराजय मे मुझे कितना विरक्त तथा बुली बना दिया कि दिन-रात एक करके पुरुषों और स्त्रियों को बुद्ध के स्तिप ठकवाती थी। इती बीच एक गोत्र से दूसरे गोत्र में आठे हुए मैंने अज्ञानक पुरुष का बेष धारण कर लिया। बहा उन पुरुषों को मेरे हस्त कम-परिवर्तन से बहा भ्रम हुआ। मेरे झुलने पर हम लोग पहरों हँसते रहे। इतके पम्पात् अज्ञानक उत्थापन की पारी मे उन दिन पुरुष बेष में आ बहुचो। बहा तुम से भेद होगई। फिर तुम से संपक रखने के स्तिप मैंने पुरुष-बेष बनाए रखना उचिन समझा।

बुब—बह मी प्राय लामि को अयथा रात को।

इडा—किन्तु तुम इतने मोले निकले कि स्वर से मी न पहचान लके।

बब—मुझे भ्रम तो होता था किन्तु इस रूप की कल्पना ही नहीं कर सकता था। यह तो मेरे जीवन में नई कल्पना है। यह कितना सुन्दर हुआ इडा? किन्तु मुझे दुल है कि इससे विचारी सूरता का हृदय दूरे आया।

इडा—मैं सूरता का उपाय कर चुकी हूँ। अन्ध, अब हम दोनों

को चलना चाहिए। पिता प्रतीक्षा में होंगे। ( बसे जाते हैं। गर्पति सुपुम्न के बीच में। पीछे से सूनृता का प्रवेश )

सूनृता—सुपुम्न, सुपुम्न तुम हो क्या ? तुमने इडा को देखा है ?

सुपुम्न—नहीं।

[ एक घोर ली म ह खेरकर बैठा रहता है ]

सूनृता—आर्य बुध को ?

सुपुम्न—नहीं।

सूनृता—सुपुम्न, तुम कितने सुन्दर हो ?

सुपुम्न—(बुध)

सूनृता—(इधर-उधर देखकर) तुम बुध क्यों हो ? क्या आर्य बुध की प्रतीक्षा में हो ?

सुपुम्न—नहीं।

सूनृता—तुम बुध क्यों हो ?

सुपुम्न—तुमने सुन्दर, आर्य-बुध का गर्भरं विवाह करने इडा से हो गया।

सूनृता—तुम्हें कैसे बात हुआ ?

सुपुम्न—मैंने अभी ठन दोनों को इस वन से निकलत देखा है।

सूनृता—यह कितनी अच्छी बात है सुपुम्न। तुमसे एक बात कहूँ ?

सुपुम्न—क्या ?

सूनृता—वही कि हम दोनों का विवाह हो जाय तो—

सुपुम्न—नहीं, यह नहीं हो सकता।

सूनृता—क्यों नहीं हो सकता सुपुम्न, क्या मैं कुल्य हूँ ? तुम मेरी ओर देखो।

सुपुम्न—(उसके सामने हो जाती है। सुपुम्न म ह खेरकर) हो ती अच्छी।

सूनृता—निर क्या बात है ?

सुपुम्न—(बुध)



सुमता—कह हो गये ?

सुधुम्न—नहीं ।

सुमता—छि ?

सुधुम्न—एक क्षणिक का शाप है कि सुधुम्न किसी मर्या से विवाह नहीं करे ।

सुमता—हाँ हाँ, कहो सुधुम्न क्यों हो गये ?

सुधुम्न—जाने हो वह तुम को स्वीकार न होया ।

सुमता—मुझ सब स्वीकार है सुधुम्न, तुम जो कुछ कहोगे वही मैं करूँगी । आहा, किन्तु अभी क्या कह दे कि मैंका सुधुम्न का इला के साथ विवाह हो गया । हाँ कहो ?

सुधुम्न—सुधुम्न केवल उसी नारी से विवाह कर सकता है जो विवाह के पश्चात् उसे सुधुम्न कहकर न पुकारे ?

सुमता—विशेष बात है तो क्या कहकर पुकारे ?

सुधुम्न—यह विवाह के पश्चात् निश्चय होया ।

सुमता—स्वीकार है । किन्तु तुम मेरी ओर देखते क्यों नहीं ? हजर देखो मैं वनजल लगाकर आरंभ हूँ ।

सुधुम्न—एक बात और ।

सुमता—क्या ?

सुधुम्न—विवाह होने तक तुम सुधुम्न की ओर न देखोगी । नहीं तो वह मर जायगा ।

सुमता—(मन में) केटी पहिली है । आच्छा स्वीकार है ।

सुधुम्न—एक बात और ।

सुमता—क्या वह भी कहो । क्या तुम्हारे यहाँ विवाह इसी तरह होता है सुधुम्न ?

सुधुम्न—बहा, मैं तुम्हें मन बावली, कर्म से अपना पति स्वीकार करती हूँ ।

सुमता—(कठोर) अब कहूँ तो क्या तुम विवाह न करोगे ?

मुष्ण—नहीं तो विवाह नहीं हो सक्ता, अशुद्धा मैं जाता हूँ।

सुता—महीं मैं करती हूँ। मैं तुम्हें मन, वाणी और कर्म से अपना पति स्वीकार करती हूँ। बल !

मुष्ण—हाँ ठीक है। पहले पहले। देसना मत।

सुता—तुम बड़े नरुण हो मुष्ण ! अशुद्धा बली।

### तीसरा दृश्य

[ मनु और दासवती परस्पर बलघीत कर रहे हैं।

समय—यज्ञ के पश्चात् प्रातःकाल ]

दासवती—पिता, आपने जो बर्षा-विभाग किया है उससे लोग बहुत लज्जित दिखाई देते हैं। इस पुत्र ने क्षत्रियों के महारथ को बड़ा दिया है। जो लोग पहले क्षत्रिय बनना स्वीकार नहीं करते वे अब वर्ष का अनुभव करते हैं। किन्तु वैश्य बनना कोई भी स्वीकार नहीं करता।

मनु—मैंने तुम से कहा न दासवती, कि आवश्यक्ता ही अविष्कार की जननी है। वह समय आने वाला है जब लोग वैश्य-वृत्ति को स्वीकार करेंगे। इसके अतिरिक्त मैं एक और बात सोच रहा हूँ कि राजा का निमाण किया जाय।

दासवती—राजा का कित प्रचार ! क्या जैसे देवताओं में इन्द्र है उस प्रचार !

मनु—हाँ, जो योग्य हो, जिसमें शासन की क्षमता हो, जो प्रजा को पुत्र के समान समझे, वही राजा होने का अविष्कारी है। आज यह बात मैंने जिसकी क्षमियों को प्रकट करके कही थी।

दासवती—यदि राजा अनुत्तरदायी हो और अत्याचार करे तो !

मनु—प्रजा का यह कल्याण होगा कि उसे परदभुत कर दे।

दासवती—प्रजा के हाथ में कौन शक्ति है जो उसे परदभुत कर सकेगी !

मनु—प्रजा ही तो राजा का बल है दासवती।

दासवती—ठीक है।

[ कृष्ण आदिवरों का प्रवेश ]

आदि—जब मनु की ! (बैठते हैं)

मनु—(प्रस्ताव करते) आइये श्रुतिवर !

सब—हम आपसे एक प्रार्थना करने आये हैं कि आप शुद्ध-शासन बनाने काय में लें। हम आपका साथ देंगे।

विश्वामित्र—हम आपको बधाई देंगे।

अश्विष्ठ—अमात्य बनकर हम आपकी सत्यसमर्थ देंगे।

शक्यपति—ठीक है पिता वही मेरे प्रभु का उत्तर है। शक्यपति उचित परामर्श देते हैं तो राजा अन्धकारी न हो सकेगा।

मनु—शक्यपति, अश्विष्ठ और वैश्व तीनों राज्यों के लक्ष्यकार हैं श्रुतिवर। शक्यपति मत्स्य से, अश्विष्ठ बाहुबली से, वैश्व बत से तथा युद्ध सेना द्वारा यदि राज्य की स्थापना करें तभी राज्य की शरीर स्थिर रह सकेगा।

अश्विष्ठ—हम चाहते हैं आप इस दिन प्रतिविम बदती हुई आपकी प्रति को संगठित करने के लिए राज्य होना स्वीकार करें।

अश्विष्ठ—बिना राज्य के व्यवस्था ठीक नहीं रह सकेगी।

[ अश्विष्ठ-बाहुबली बल के बल आकर एकत्र होते हैं ]

मनु—आप ही एकमात्र व्यक्ति हैं जो राज्य शासन भली प्रकार चला सकते हैं। हमारी प्रार्थना है, आप राजा बनें।

सब—(एक स्वर से) मनु ही राजा होने के योग्य हैं। हमारी प्रार्थना है कि आप-जाति की रक्षा के लिए आप राज्य होना स्वीकार करें। वही हम लोगों की इच्छा है।

मनु—(बड़े होकर) आपकी आज्ञा शिरोधार्य है किन्तु आपके मेरे बनाये निबन्धों को प्रत्येक अवस्था में स्वीकार करना होगा।

सब—स्वीकार है।

मनु—मैं कबल वही काम करूँगा जिसमें आपका कल्याण हो।

सब—स्वीकार है।

मनु—मैं बही सोचूँगा जिसमें प्रजा का हित हो ।

सब—आप भय हैं ?

मनु—मेरे लिए सब प्रजा एक-ही होगी ।

सब—बही राजा का कल्प है ।

मनु—मैं तदा न्याय का पद लूँगा और क्या उस न्याय व सामने आप अपने व्यक्तित्व की रक्षि दे सकेंगे ?

सब—आश्चर्य ।

मनु—जैसे माता-पिता के अंग से पुत्र की उत्पत्ति होती है, जैसे पुत्र विचार में, देश में, काल-कलाप में माता-पिता के तरह-धरती का अनुकरण करता है वैसे ही राजा भी प्रजा के विचारों का, क्रिया-कलापों का, देश-काल का उनके सुल-दुल का एक शरीर है । क्या आप ऐसा मानते हैं ?

सब—निःसन्देह ।

मनु—मुझे आप अपने से भिन्न तो नहीं समझेंगे ?

सब—नहीं । कभी नहीं ।

मनु—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ प्रजा का कल्याण मेरा ध्येय होगा ।

अग्नि—राजा ईश्वर का अंग है । हमको ईश्वर क समाम उतकी पूजा करनी चाहिए ।

सब — निःसन्देह ।

[ एक ऊँचे आसन पर बठाकर तथा तिलक करके ]

सब—(प्रणाम करके) महाराज मनु की आज्ञा हो ! विश्व क स्वयं स्वरूप मनु की आज्ञा हो ।

मनु—(उठे होकर) आज्ञा स आप लोग समझें हैं । दृष्टी को राहु रक्षित करके उस स्वर्ग के तम्यन सुल-योग्य बनाना मेरा कार्य है प्रजा का ? आज्ञा स सब संतान मेरी संतान हैं । इक्ष्वाकु, श्यामि नामाय, पूर, नारिपत, प्रागु, नामामोक्षि, कुल, दृगम तथा कुल आदि उपरिष्ठ हैं ।

[ सब हाथ जोड़कर जाइ हो जाते हैं ]

तुमको ज्ञात हुआ कि अब मैं तुम्हारा रिता नहीं राखा हूँ ?  
सब—ज्ञात हुआ महाराज !

मन—मैं तुम सब को इस विजय के उपलक्ष्य में एक-एक भूयय का राजा बनाता हूँ। तुम लोग अपने साथ ब्राह्मणों, क्षत्रियों को लेकर मूल प्रदेश में कैमल जाओ और राज्यों की व्यवस्था करो। याद रखो मन्त्र के बुली होने का अर्थ तुम्हारी अशोभता है।  
सब—सब है महाराज !

मन—ब्राह्मणों का सम्मान करो, क्षत्रियों में बला वृद्धि करो, वैश्य को मुक्तिप्राप्त हो। राज्यों को अपना अंग मानो।  
सम्बती—ब्राह्मण कौन हैं ?

मन—जो बेद-पाठी हो। जमाया हो, यज्ञ करे करावे। तब ही शुभचिन्तन करता हुआ मोक्ष प्राप्ति करे।  
सम्बती—क्षत्रिय ?

मन—जो बुली शीमों की रक्षा करे। ब्रह्म का प्रचार करे। शान दे। पृथ्वी पर सुख का विस्तार करे।  
सम्बती—वैश्य ?

मन—जो कर्म से देश को, राज को और अपने को समृद्ध करे।  
सम्बती—राज ?

मन—जो सेवा करे। तब ही सेवा द्वारा देश को उन्नत करे।  
नागाव—मैं ब्राह्मण बनना चाहता हूँ महाराज !

बुध—तुम्हें क्षत्रियत्व स्वीकार नहीं है। इसमें व्यवस्था की रिता है।  
नारिष्यत—मैं तप करूँगा।  
बुध—तुम्हें राज्य की इच्छा नहीं है। मैं ज्ञान प्राप्त करूँगा।

प्रांगु—मैं केवल वैश्यों का चिन्तन करूँगा।  
पुत्रप्र—मैं संसार से विरक्त होना चाहता हूँ। इस पुत्र ने मेरे विचार बदल दिये हैं।  
मनु—तो क्या तुम सब लोग राज्य नहीं चाहते। सुख नहीं चाहते ?

सब—नहीं।

इस्वाकु—(घागे बढ़कर) मैं क्षत्रिय बनना चाहता हूँ ? मैं राज्य करूँगा।

नागलोहित—मैं क्षत्रिय हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये।

धर्मति—मैं भी क्षत्रिय हूँ महाराज।

मनु—महाराज ! आप लोगों ने देखा मेरे लो पुत्रों में कुछ ब्राह्मण हो गये हैं। वे धारम-वितन द्वारा मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं और कुछ क्षत्रिय बनकर राज-धर्म का पालन। मैं अपने ब्राह्मण पुत्रों को आज्ञा देता हूँ कि वे यज्ञ मार्ग का अवलम्बन करें। और क्षत्रिय इस भूमि पर राज्य शासन करें ( ब्राह्मणों से ) भाव लोय इनकी उदात्तता कीजिये। ईश्वर तबका वस्त्राण करें।

[ इडा और युव का प,प घाना ]

इडा—मैंने आर्ष युव को अपना पति स्वीकार कर लिया है। हम दोनों ने गर्भर्व विवाह कर लिया है। हमको आशीर्वाद दजिये।

मनु—(हसकर) पुत्रि, तुम दोनों का कस्तार हो।

[ सूनता और श्याति का प्रवेश ]

सूनता—मैंने भी सुगुम्न के साथ गर्भर्व विवाह कर लिया है महाराज।

मनु—सुगुम्न कौन है ?

श्याति—(घागे बढ़कर) मैं हूँ सुगुम्न।

सूनता—(बेबाकर) तुम सुगुम्न हो अथवा श्याति ?

इडा—(घागे बढ़कर) यह भी एक कथा है। वस्तुतः सुगुम्न नाम मैंने अपना पुत्र्य भण धारण करते हुए रखा था। सूनता मेरे वध पर आतक थी। इतलिय यह विवाह सुगुम्न रूप स श्याति क साथ हुआ है। सूनता ने स्वयं स्वीकार किया है ?

मनु—कथा सुनते यह विवाह स्वीकार है ?

युव—इडा का पुत्र्य रूप श्याति है। सुगुम्न नही। मैं (सूनता से)

विराजत करता हूँ कि इसे कोई आपत्ति न होगी।

सुनुता—आश्चर्य है !

मनु—तो तुमको स्वीकार है ज्ञानवा नहीं ?

सुनुता—(अर्पण की ओर देखकर मस्कराती हुई) हाँ—

इक्ष्वाकु—शरवती को मुझे अपनी पत्नी-रूप में स्वीकार करने की आज्ञा दीजिये।

मनु—(हँसकर) मुझे प्रसन्नता है, मेरे राजा होते ही विवाह होने लगे। मैं शरवती को इक्ष्वाकु की पत्नी देखकर प्रसन्न हूँ।

[ हर्ष घोष ]

एक ऋषि—मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरी पत्नी आपका मुझे स्वीकार करे।

अपाजा—मैं अब विवाह-बंधन में नहीं रहना चाहती। भ्राता जी संसार से ऊब गया है।

मनु—अपाजा को तुम पत्नी रूप में रखने के लिए बाधित नहीं कर सकते ऋषियर !

ब्रह्मिष्ठ—संघर्ष विवाह की प्रथा कन्ध होनी चाहिए महाराज !

मनु—हाँ, आप ठीक करते हैं। तत्पश्चात् अवस्था में बेर-झणों द्वारा ही प्रतिष्ठा करके आपको विवाह-बंधन में बंधन्य चाहिए। परन्तु संवत्त वह बंधन नहीं किया जा सकता। विवाह दो प्राणियों का बंधन है जिसका पुरोधित स्नेह है।

मनु—मैं आज एक बात और कहना चाहता हूँ। (उस क्षणिकता से उठकर बैठते हैं) आज से इत दूर का माम 'आयोवर्त' है।

तत्र—आयोवर्त की अब ! महाराज मनु की अब !

बाहुकि—(आगे बढ़कर) महाराज ! हम सब आयोवर्त स्वीकार करते हैं।

मनु—मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ बाहुकि। आज से तुम हमारे साथ हुए। तुम्हारे साथ किसी प्रकार का भेद भाव न रहेगा। विभक्त है !

बानुकि—वह अपने लायियों के साथ इदिया की ओर चला गया ।  
उत्तम विश्वास है कि हम लोग आबों के साथ मिलाकर नहीं रह सकते ।

मनु—उत्तमो भ्रम है । धार्य-धर्म विश्व का धर्म है । उसी में संसार  
का अस्तित्व है बानुकि । धार्य-संस्कृति मानव की वास्तविक संस्कृति है ।  
उत्तम प्रकाश जीवन का प्रकाश है । उत्तमो भवोति आत्मा की, ईश्वर की,  
स्मृति है । आओ हम सब लोग प्रायना करें—

[ सब खड़े होकर ]

धमृत मधुर सा विश्व-धन्य हो ।

बहरी अंबर तारक में भी महा-प्राण का निहित नाद है  
वही तरंग जीवन का तापी तीन काम में भी प्रकाश है  
पीछे स्वार्थ करण सम्मुख हो जीवन में अर्तय विनय हो  
धमृत मधुरमय विश्व धन्य हो ।

प्राण प्राण में हृदय हृदय में मुझे धार्य-जाति का पावन  
रोम रोम में व्याप्त विश्व के बुद्धों का हो सतत पलायन  
मंतर मंतर में स्वर गूँजे यह जय तुल्यमय जीवनमय हो  
धमृत मधुरमय विश्व-धन्य हो ।



## मनु और मानव

उपसंहार

[ नेत्रम्य से ]

इसके पश्चात् मनु के पुत्र इक्ष्वाकु ने बशिष्ठ को अपना पुरोहित बनाकर अयोध्या के राजवंश की नींव डाली। उनके विकुटि, निमि, दशरथ तीन पुत्र हुए। इन्हें पूर्ववंश निकला।

दूसरे पुत्र नामागोक्षि ने बैराली राज्यवंश स्थापित किया।

तीसरे पुत्र शर्वाति से आनर्ष (गुजरात) में राजवंश की स्थापना की।

चौथे पुत्र नामाग ने रघीरारा में अपना राज्य स्थापित किया।

इन चारों पुत्रों से सूर्यवंश और कुश के संयोग से इडा में ऐस-  
(अश्व) वंश की नींव पड़ी। इडा के पुरुवत पुत्र हुआ। शेष मारिभ्यन्त  
प्राणु. नामागोक्षि, कुस्य, पृथग् वेद-पाठी होने के कारण ब्राह्मण बन गये।  
वही प्रारम्भिक आर्य-संस्कृति की कहानी है।

# कुमार-सम्भव

[ मध्यकाशीन संस्कृति का एक चित्र ]

## पात्र-परिचय

तरावती

सिंध

पार्वती

बनम

महाराज अश्वपुत्र

कानिवास

पार्वतरि

राजापुत्र

पल्लव

हरवत्

प्रभवेदी, कुबेर नाथ, प्रभावती विलासवती आदि

स्वान—द्विधामय-संबंधिका ।

समाप्त

कवि

बंध

महापद्मी

नाट्य-नेपाल

१

[ दो शासकों के बीच में एक उद्योग । उद्योग में कबली फल मारंगी ताल तबाल द्विताल चंपक, अशोक घास आमुन के फूल हैं । अशोपुष्पी, नायक तु बरी की लताएँ, चंपा नासती गेदा, पुबिका राजनीगंधा के पौधे हैं । बीच में एकदिक-निर्मित लघु तार हैं जिनमें नील, रक्त इवैत नील कमल जिते हुए हैं । तरोवर के चारों घोर बंधने की एकदिक शिलाएँ, उत्तर की तरफ लतामण्डप पूर्व घोर

बकिचम में बाबिका-बिहार बने हैं । सरोवर के पास तारल, हुंस बतर्भों के बोड़े घूम रहे हैं । अंक धीरे सीमी की बनी हुई । प्रतोली में से रात्र परिवारिकार्ण निम्न प्रकार के कौसेय बसब, अर्चकार भारल द्विजे धा-आ रही हैं । परिवारिकार्णों की बेली नितम्ब तक लटकती । अंबुकी से स्तन बोधे हुए । नीचे कौसेय पट्ट । मस्तक में कस्तुरी का तिलक, घुमाघों में अंबर बलक मल्लिकान्य मले में रीवेकक । बरों में अपनी की तरह बाबबाल । अंगुलिघों में रानकवित्त मुद्रायें । एक प्रासाद से बुन्दे प्रम्पार तक जाने में बोडा ही मार्ग बार करना बढ़ता है । एक प्रासाद महाराज अत्रबुप्त बिक्रमावित्त का है बुत्तरा महारानी प्रुबदेवी का । वो परि वारिकार्ण हाबों में कुल, निप्यज्जल तथा घाटकों से अण्ड बडे हुए बाल लिये घाती हैं । वो प्रासाद के सामारल द्वार हैं । महान्दार बर्षी । बोबों द्वारों के पास वो प्रतिहारी बडे हैं । दूर से बाघों की ध्वनि आ रही है बिल्लने कई स्वर लजवेत है । बहली परिवारिका कोषेय-साटिका से बेर वलक यवे ह् धीरे पिरना ही बाधती है । समय-मात-काल बल बबे । ]

दूसरी परिवारिका—आरे बासन्ती, लमिक देखकर तो बसो । क्या सीन्दर्ब इलता बुर्बह हा मबा है ? बोबन ही जो ठरर । (हँसती है)

बासन्ती—सखि ! क्या बहाई, तुम नहीं जानती यह कोषेय पत्र मेरे लिए मार हो गया है । बोबन तो मजा क्या मार होगा ?

मधुरिका—यह हाथ में क्या सामग्री है ?

बासन्ती—आज कुमार का आलीसर्वा दिवस है, महारानी का नू गार हो रहा है, इसीलिए ये आकपट्टक लिये का रही हैं ।

मधुरिका—ओह समझी । महाराजी की परिवारिक का गौरव भी बोका मझी है । क्या इसीलिए आज नवपरिवान मिला है ?

बासन्ती—तब परिवारिकार्णों को महाराज की ओर से एक-एक रत्नहार दिये जाने की भी घोषणा हुई है न ?

मधुरिका—तुनती तो हैं । आद किठना बुन्दर दिन है । आज तुम भी

तो बहुत मुन्दर लग रही हो !

पहला प्रतिहारी—धुबि फूटी पक रही है साक्षात् म्मारवेता हो जैसे ।

दूसरा प्रतिहारी—अरमीर किन्नरी जो दुर्ग । एक वे हैं कौक्य की भीमती सर्वगतता ।

मचरिका—(तीक्ष्ण दृष्टि से देखती हुई) अपना का तो देखो, जैसे बाँस को यत्न पहना दिखे गये हों ।

पहला प्रतिहारी—यह बसि आव शीघ्र ही मुहारी की सीक हो जाने वाला है ।

दूसरा प्रतिहारी—प्रतीक्षा की भी कोई सीमा है यावन्ती ! स्वर्ग महाराज भी जब अमुरोध करके दार गए तब मेरी क्या सामर्थ्य है कि मधुरेण को मना सकूँ । हा यदि मुझे एक क्षण को मा कविबर काशिदास का रूप मिश्र जात फिर देखता ह्येन भुवनमोहिनी मुक्त स पूर मागती है ।

पहला प्रतिहारी—बबूसा का पेड़ कमी भी दाढ़ा बसन्तरी नहीं हो सकता ।

दूसरा प्रतिहारी—आज दस बर्ग स तर कर रहा हूँ ।

पहला प्रतिहारी—तर का पल मीन होता है मन्वरक । घेय धारण करो ।

ब लम्बी—मुझे मुना मनी ! आज कविबर महाराज और महाराज की वह प्रन्परण भेंट करने वाले हैं जो उन्दीने कुमार क अन्मोत्सव पर सिगा है । आज सायंकाल को यह हृय सग्न्य होगा ।

मचरिका—हा अभी अभी मुना है परम महारक महाराज राजामाय स कह रहे हैं कि कविबर स्वयं उन प्रन्य का बुद्ध शंश हमको मुनाबेंगे । आज ही प्रन्य समाप्त होगा न, उधी के निमित्त आज उावध हो रहा है । छोद कितने महान् कवि हैं काशिदाम !

ब लम्बी—साक्षात् सम्बनी उनके मुन्य स कोलती है । मेरे देय

आरमीर में एक-से एक मदा पब्लिश हैं, कवि हैं किन्तु ऐसा रथ तो कितनी की कविता में नहीं पाया। उठ दिन में महाराज को 'कुमार-सम्पन्न' के कुछ अर्थ सुना रहे थे।

पहला प्रतिहारि—बह मछली वाला अर्थ क्या? बाह, किन्तु सुन्दर है।

बासन्ती—हाँ बही। सुनकर मेरी आत्मा से तो भर भर अन्तु-पाठ होने लगा। पार्वती का किन्तु सुन्दर वर्णन है मधुरिका, आर पाठ मधुर्य मानो सरस्वती वीणा पर गा रही हो। इतना रस, परामिर्षादि, सरसता। मैंने देखा स्वयं महाराज उठे सुनकर कभी-कभी मस्फूर्द हो उठते थे।

मधुरिका—कायन को रत्न मिला गया है। हमारे महाराज का परम सौभाग्य है कि ऐसे महान् कवि उनके राज्य में हैं।

द्वितीया प्रतिहारि—तो हमारे महाराज क्या कम हैं? छठार में ऐसा महान् सम्राट् हुआ ही कौन है?

बासन्ती—सम्राट् तो ऐसे हो गये हाने, किन्तु कवि तो ऐसा हुआ ही नहीं।

[ महाराज और अमात्य का प्रवेश ]

अन्तमुत्त—हा बासन्ती, तुम ठोक करती हो। सम्राट् तो मेरे-जैसं कई हो गये किन्तु अखिर-अखिर कोई कवि नहीं हुआ। (महाराज को आया जाल सब चुपके-से इतर-उतर जाती जाती है) क्यों राज्यात्म्य ?

राजापत्य—क्या निवेदन करूं महाराज को मोहक होनें ही अमृत-नगुर।

अन्तमुत्त—मही राज्यात्म्य, बासन्ती यकाय कर रही है। बह मेरा सौभाग्य है। अन्तु देलो, आज हमारा समा में कुछ असामान्य व्यक्ति ही आ सकेंगे, इतका ध्यान रखना। कविबर आज बह प्रथम सम्पन्न करके लाने वाले हैं। महाराज भी होगी।

राजामात्य—वयाव है प्रभो ! इसके अतिरिक्त एक निवेदन यह है कि वृद्धिला, स्वात, पञ्चनद, मगध, उदयगिरि में कुमार कर्म का उत्सव बड़े समारोह से मनाया गया है।

बन्धुवृत्त—ठीक है, राजा प्रजा की सम्पत्ति है। महामात्य कञ्चु और सिन्धु के विद्रोह की क्या आवश्यकता है ?

राजामात्य—महाराज विष्णुदास के पुत्र सनकानिक बंशी को तप में रामू का दमन करने भेजा है। उसका सन्देश है कि प्रजा ने परम महारथ की प्रज्ञा होना स्वीकार कर लिया है। स्वयं महाराज सनकानिक को प्रजा ने सहायता दी है। छात्ती के आज्ञाकारक नामक व्यक्ति ने कुमार-कर्मोत्सव के उपलक्ष्य में अनेक संपन्नताएँ बनाए हैं।

बन्धुवृत्त—बौद्ध और वैष्णव दो घोड़े ही हैं। मेरे राज्य में सब एक एक समान हैं। महाकवि के ग्रन्थ के उपलक्ष्य में उम्बकिनी की चमू, चमूर बलाभिकृत महाबलाभिकृत बलात्पञ्च महाबलाभ्यञ्च, समस्त सेनाप्रेषर रथमायहागाराभिकरथ तथा महासेनापति को एक मास का केन अधिक दिया जाय। कृपकों का एक मास का कर समा किया जाय।

राजामात्य—ओ आहा, प्रभो !

बन्धुवृत्त—संग्रह पारिषदों को बीरोय-यद् तथा एक एक रत्नहार भी। महामात्य ! ( कथ वबास हो जाता है )

राजामात्य—महाराज कुछ चिन्तित हैं क्या ?

बन्धुवृत्त—हाँ मंत्री, अभी प्रातःकाल एक स्वप्न देखा। तभी से भ्रम है।

राजामात्य—बराहमिहिर क्या कहते हैं ?

बन्धुवृत्त—ये कहते हैं स्वप्न सत्य होता।

राजामात्य—यह क्या कह ! महाराज का तो प्रताप ऐसा है कि दुःस्वप्न रह ही नहीं सकते। क्या था वह ?

बन्धुवृत्त—देखता हूँ, हमने उत्सव की आयोजना की है। इस समय

एक मुनि आए हैं।

राजामात्य—मुनि का दर्शन मुझकर है।

बन्धुपुत्र—नारद हैं मानो। आठ ही बोले—‘बन्धुवत् हो राजन्।  
और देखो, उठ तमब ठाठव का भी वशुष आयोजन हो।

राजामात्य—यह तो उन्होंने उचित ही कहा। ठाठव का आयोजन  
अवश्य होना महाराज।

बन्धुपुत्र—हा, मैंने कहा—‘महामुने, प्रसाम करवा हूँ।’

—मैंने पूछा—‘कहाँ से प्यारे! वे बोले—‘आज कैसा ठाठव है  
महाराज! मैं ऐस ही बूझा क्या आया। तुम्हारे राज्य में सब प्रसन्न  
प्रसन्न है। तुम बन्धु हो राजन्।’

मैंने कहा—‘मुनिवर आपकी कृपा है। हां, आज कुमार की उत्सव  
का चासीठवा दिन है। आज महाकवि कालिदास, महाराज्ञी भुवदेवी का  
‘कुमार-वन्दन’ घेंट करने वाली है, उसी का उत्सव है महामुने। आपने  
यह महाकव्य सुना? क्या सुन्दर का व है मुनिर्घोष! कीर्तन में जो  
विजय मैंने प्राप्त की है वो भूषण कार्य किम है, वह कालिदास के एक  
श्लोक की बराबरी नहीं कर सकते। वे साक्षात् वरस्वती के अवतार हैं।  
घण्टी पन्द्रह दिन हुए में कुछ अल इमघो सुना गये थे, आज वह समाप्त  
करने वाली है। इस पर मुनि बोले—

‘यह कव्य तो स्यापि कार्तिकेय के जन्म से सम्बन्ध रखता है न। मैंने  
उसके कुछ अल वरस्वती से स्वयं सुने है। उस दिन वे भगवान् शंकर  
और पार्वती को सुना रही थी। मुझे क्या आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—‘हं,  
देखा फिर उन्होंने क्या कहा?’ मुनि बोले—

‘यह कहा होगा राजन्। तुम क्या समझते हो? इस पर मैंने  
कहा—‘भगवान् शंकर तो अवश्य प्रसन्न हुए होंगे। वह रचना ही ऐसी  
है। और कालिदास स्वयं शंकर के उपासक है। मुनि एक दम उदास से  
होकर करने लगे—

हुं, रचना ऐसी ही है, हा अन्वी है। मैं इसके बाद आध

किया—'हृषा करके बठाहूँ आपकी क्या सम्मति है ! इस पर मुनि मेरी बात का उत्तर न देकर बोले—

'राजनू ! मैं सरस्वती को खोज रहा हूँ । इधर वे कई दिनों से मिली नहीं हैं । ब्रह्मा, हमारे पिता उनसे मिलने के लिए चिन्तित हैं । स्वर्ग में वह कहीं नहीं मिल रही हैं । न जाने कहाँ चली गईं, यहा भी नहीं हैं । कालिदास के आश्रम में भी नहीं हैं । और कालिदास पिछले एक सप्ताह से ध्यान-मग्न हैं ।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये । उसके बाद निद्रा भंग हो गई । संभ्रम संज्ञा प्राप्त करके मैंने सोचा—वह मैंने क्या देखा ? वह कौन थे—नारद ? कालिदास एक सप्ताह से ध्यान-मग्न हैं । प्रतिहारी से बात हुआ सबमुच वे ध्यान मग्न हैं ।

(घुमते हुए लौटकर) मैं कालिदास को देखना चाहता हूँ ।

राजामात्य—मैं संदेश भेजता हूँ, पूष्पीनाथ !

अग्रमुत्त—नहीं, मैं स्वयं जाऊँगा और देखूँगा इस स्वप्न का क्या अर्थ कबि पर पड़ा है । वस्तुतः राजामात्य लौकिक साहित्य को प्रोत्साहन देना भी मेरे जीवन का एक लक्ष्य है । मैंने कबिचर से कहा है कि वे कुछ नाटक भी लिखें । इस समय तक जो नाटक लिखे गये हैं वे मुझे संतुष्ट न कर सके ।

राजामात्य—भास के नाटकों में चरित्र-विकास, संवाद सौन्दर्य होते हुए भी रस-परिपाक की श्रुति है, ऐसा मैंने अनुभव किया है ।

अग्रमुत्त—मैं पारता हूँ कि कालिदास दो नाटक लिखें । निश्चय ही उनके नाटक महाकवि भास के नाटकों से भेद होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है ।

राजामात्य—उस दिन जैसे जान वाले उनके नाटक के निश्चय को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ । एक तरह से 'स्वप्न बासवन्ता' में जीवन आ गया ।

अग्रमुत्त—मायिकत्व सब जगह बसकता है राजामात्य ! उनकी कविता में कितनी स्वामाविष्कता है, कितना रस-परिपाक है, कितना प्रवाह



है, वह मुझे बहुत कम सम्मान मिला है राजामाव !

राजामाव्य—ठनधी कबिता को मुनकर देसा ज्ञात होता है, माने कोरं अदरय राखि बोला रही है । ये स्वयं पदते-पदते कमव हो ठठते हैं ।

बग्नपुत्र—ये अपूर्ण हैं ।

[ जाने जाते हैं ]

२

[ कैलाश-शिखर के ऊपर बेधराफ-निर्मित एक कुटीर । उसके बाहर गुलासन पर पार्वती बैठी हैं । सामने बसेस उनके पुत्रों से लये झेंप रहे हैं । कभी-कभी सूट उठाकर इपर-उपर हिला देते हैं कभी मूत्र —

हैं । कुछ दूर पर सरस्वती बैठी है । सामने का शिम-कण्ड रिक्त शिव का बिह्वलन है । ज्ञात होता है दोनों में कुछ परमापरम हो चुका है । ज्ञात बड़ जाने पर बसेस की निद्रा भंग हो जाती है उठाकर इपर-उपर देखने लयते हैं और कोई बिघ्न न जान झेंपने लयते हैं । कभी-कभी बीरभद्र विभूत लेकर इपर-उपर जाते ह और पार्वती के सामने घबने घस्तित्व का ज्ञान कराव जाते ह । दूर पर बैठा तिरु कभी-कभी एक बहाड़ लपटा हुआ मुँह बलाकर धाला हो जाता है । पार्वती व-मुप के चर्म का रं पीके हैं जो कोरों से बोना हुआ है । काले मूत्र के चर्म से उनकी सोना विगुणित हो रही है । शिव के बाल बिलारे हुए । रत्नों की पाले में । इससे पूर्व के प्रकता में वह पाता कभी-कभी इतनी । जाती है कि पार्वती का मुँह मझा-अकाश के धतिरिक्त कुछ भी बीक करता । सरस्वती रक्ष्य कोशेय की साक्षिका पड़ने धामूबठ सुतगिमत । पार्वती का सोना सरस्वती को कमल का पुष्प-गुण्य ज्ञान उन्हें बबाने तथा बबाने बीक करता है । पार्वती जते हुआ देती हैं । मूत्र-म्रेतों की बस्तकीत की प्रस्पण्य प्पनि मुनाई दे रही है । ]

पार्वती—तुम्ही लोपो जितने मेरे सम्मान में ऐसा बर्खन किया उसे मैं कैसे क्षमा कर सकती हूँ । या है वह स्वयं इन्द्र ही क्यों न हों ?

सरस्वती—किन्तु तुम्हें अगम्यता भी तो उसने माना है। मुझे दुःख है तुम स्वयं ही नारद की बातों में आ गई, उसका तो स्वयं ही परस्पर भ्रमझ कराना है माँ।

पार्वती—इसमें नारद का कोई दोष नहीं है। यह तो स्पष्ट सत्य है। क्या तुम उचित समझती हो कि किसी के सम्बन्ध में इतना गृ गार बर्णित किया जाय और वह अनुचित न माने।

सरस्वती—सुन्दर को सुन्दर कहने में दोष क्या है, यही मैं नहीं जान सकती। रभी के जीवन की सार्थकता उसके रूप में उसके लौकिक में उसके विश्वास में है। ( बुद्ध के जीवन में भीरत्व है साहस है कठिन-संकठिन कर्म करने की क्षमता है; किन्तु रभी की अरम सार्थकता मत्तुत्व में है और मत्तुत्व से पहले जीवन की उद्दाम प्रवृत्ति का बही रूप है जिसके लिए प्रत्येक लज्जा अम्-अम् से आकांक्षा करती है अरवान् माँगती है। ) इसके अतिरिक्त तुम्हारे विवाह के द्वारा स्कन्द की उत्पत्ति के लिए निरव को अङ्ग-नेशन, अजर अमर समी शक्तियों के किठनी घोर प्राप्ति की है वह भी तो किसी से छिपा नहीं है। मैं तुमसे सत्य करती हूँ कि अस्तिदात की यह रचना आप्रत्य अमर रहेगी। कंसका एक बार तुम्हारे प्रसन्न होने की आकांक्षा है माँ।

पार्वती—मैं अस्तिदात को जानती हूँ। कई बार हम दोनों ने उसकी श्रुति से प्रसन्न होकर उसे दृशन दिया है, और मगधान् तो उन पर इतने प्रसन्न हैं कि उषा, बाह्योकि के बाद उन्हें ही स्मरण करते हैं।

सरस्वती—यह मगधान् का महान् अनुग्रह है। उस दिन 'कुमार सम्भय' का प्रथम और दूसरा सर्ग जब मैंने सुनाया तो वे गद्गद् हो उठे और तुम भी कम प्रसन्न नहीं थीं।

पार्वती—तुम्हें शायद है विधाता, तुम्हारे पिता अस्तिदात को उत्पन्न करने के कितने विस्मय हैं।

सरस्वती—ये तो हुए बूढ़। उनसे कोई क्या कह, उस अवि का होना निरव-अस्तिदात के लिए परम आवश्यक है।

है, वह मुझे बहुत कम सम्मान मिला है राजामात्य ।

राजामात्य—उनकी कविता को मुनकर ऐसा अट होता है, मानो कोई अदृश्य शक्ति बोल रही है । वे स्वयं पढ़ते-पढ़ते ठन्गप हो उठते हैं ।  
अश्वत्थ—ये अपूर्व हैं !

[ चले जाते हैं ]

२

[ कंसाल-शिकार के अन्तरे बेबबाह-निमित्त एक कड़ीर । उसके बाहर तुलाधन पर पार्वती बैठी है । सामने बनेछ उनके चुटनों से सारे अँधेरे हैं । कभी-कभी लू उठकर इधर-उधर झिंझा बेटे हैं कभी मुह चलाते हैं । कृष्ण दूर पर सरस्वती बैठी है सामने का शिखर-सम्बद्ध रिक्त है । वह शिखर का सिंहासन है । जात होता है दोनों में कस्य बरपावरम विवाह हो चुका है । बस बड़ जाने पर बनेछ की मित्रा भव हो जाती है वे शिर उठाकर इधर-उधर देखने सकते हैं और कोई बिना न जानकर फिर अँधेरे सकते हैं । कभी-कभी बीरमह विद्युत् सेकर इधर-उधर निकल पाते हैं और पार्वती के सामने अपने अस्तित्व का नाम कराकर चले जाते हैं । दूर पर बंदा सिंह कभी-कभी एक बहाइ जपाता हुआ अपना मुह चलाकर आता हो जाता है । पार्वती च-मूय के चर्म का परिचाल छोड़े हैं जो कोरों से बँबा हुआ है । काले मृग के चर्म से उनकी मछ सीमा विपुलित हो रही है । शिर के बाल बिखरे हुए । रत्नों की माला बने नें । इतने पूर्व के प्रकाश में वह माना कभी-कभी इतनी कमल जाती है कि पार्वती का मुह महा प्रकाश के प्रतिरिक्त कुछ भी नहीं बीच पड़ता । सरस्वती रक्त कीशेय को आश्रिका पहले आश्रुपत्नों से लुप्तचित्त । पार्वती का शोभा सरस्वती को कमल का मुख्य-मुख्य आवकर उन्हें बनाने तथा आदने बौड़ पड़ता है । पार्वती उसे हवा देती है । दूर जूल-मैतों की बसतीय की अल्पव्य व्यलि लुनाई है रही है । ]

पार्वती—तुम्हीं छोटो, किसने मेरे सम्बन्ध में ऐसा बर्णन किया हो उसे मैं कैसे क्षमा कर सकती हूँ चाहे वह स्वयं इन्द्र ही क्या न हों !

सरस्वती—किन्तु तुम्हें आगम्यता भी तो ठकने माना है। मुझे दुःख है तुम स्वयं ही नारद की बातों में आ गई, उसका तो स्वयं ही परस्पर क्लेश करना है माँ।

पार्वती—इसमें नारद का कोई दोष नहीं है। यह तो सब सत्य है। क्या तुम उचित समझती हो कि किसी के सम्मुख में इतना मृ गार बर्णित किया जाय और वह अनुचित न माने।

सरस्वती—सुन्दर को सुन्दर करने में दोष क्या है, यही मैं नहीं जान सकती। स्त्री के जीवन की सार्थकता उसके रूप में उसके लौक्य में उसके विश्वास में है। (पुरुष के जीवन में बीरत्व है साहस है कठिन-से-कठिन कार्य करने की क्षमता है; किन्तु स्त्री की चरम सार्थकता मानवत्व में है और मानवत्व से पहले जीवन की उद्धार प्रवृत्ति का वही रूप है जिसके लिए प्रत्येक सत्ता जन्म-जन्म से आकांक्षा करती है। बरदान मांगती है।) इसके अतिरिक्त तुम्हारे विवाह के द्वारा स्कन्द की उत्पत्ति के लिए विश्व का अङ्ग-वेतन, अक्षर अक्षर सभी शक्तियों न किठनी घोर प्रायना की है, यह भी तो किसी से किया नहीं है। मैं तुमसे सब कहती हूँ कि अस्मिता की यह रचना आप्रत्यक्ष अक्षर रहेगी। जबल एक पार तुम्हारे प्रसन्न होने की आवश्यकता है माँ।

पार्वती—मैं आदिशक्त को जानती हूँ। कई बार हम दोनों ने उगड़ी स्तुति से प्रसन्न होकर उसे दान दिया है, और मगवान् तो उन पर इतने प्रसन्न हैं कि अश्व, बाह्यमार्ग के बाद उन्हें ही स्मरण करते हैं।

सरस्वती—यह मगवान् का महान् अनुग्रह है। उस दिन 'कुमार सम्भोग' का प्रथम और दूसरा सर्ग जब मैंने सुनाया तो वे गद्गद् हो उठे और तुम भी कम प्रसन्न नहीं थी।

पार्वती—तुम्हें बात है विधाता, तुम्हारे पिता अस्मिता को उत्पन्न करने के विषये विच्छिन्न है।

सरस्वती—यह तो दुःख बृह। उनसे कोई क्या कह, उस कवि का होना विश्व-कल्याण के लिए परम आवश्यक है।

पार्वती—नहीं कहते ये ब्यास और वास्मीकि के बाद उठ कोटि का कोई भी कवि पैदा नहीं किया था सफ़्त।

सरस्वती—किन्तु ब्यास और वास्मीकि से हम उसकी समता ही क्यों कर रहे हैं ? मगवान् वेदव्यास को ठाँ में जानती हूँ वे तो वादात् विष्णु के अवतार हैं।

गणेश—(एकदम बैतन होकर) माँ ब्यास जी का गये क्या ! उनके कद हो मैं तो रहा हूँ। स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। प्रायः ही मृत लिये उन महागुमाश ने तो।

पार्वती—मही पुत्र, उनकी बात पर पकी कपल।

गणेश—नहीं, नहा, मुझ से अब वह काम न होया। उनकी बाखी तो रफ़्ताना जानती ही नहीं। फन के समान अम्बाइत। काल के समन काल परमाशु तथा महता से मुक्त। आन भी अब स्मरत हो जाता है तब मुझ विष्णु को भी एक विष्णु उपरिपठ हो जाता है। तुम जानती हो अब मैं महाभारत लिखने बैठा तब मैंने क्या कहा था।

सरस्वती—देखो मैया अब वह समय नहीं आबेगा। तुम भी तो जानते थे कि मेरे बैठा कोई लेलक नहीं। अमिमान नहीं करना चाहिए।

गणेश—अमिमान की बात नहीं। अब महाभारत लिखने का प्रयत्न आया तो मैंने बोला कि ब्यास जी को बमत्कार दिलाते कर वह अचक्य अचसर है। इतनाप कद बैठा— देखिये, ब्यास जी यदि आप एक मने तो मैं जाने नहीं सिलूँगा।

पार्वती—फिर भी न जाने तुने इतना कैसे लिख लिया। हाय पुत्र गये होगे पुत्र ! (उनके हाथ सहजाली हूँ) हा फिर क्या हुआ !

सरस्वती—आगे का रहस्य मैं बतलाती हूँ। अब गणेश का आनन्द उन्होंने सुना तो खुश हो रहे और मेरी प्रार्थना करने लगे। एक बार मन में आया कि कोई और लेलक लोके। ब्यास को उठ समय कड़ी रक्तानि हुई। अितभी बाखी बेहोँ का विस्तार करते न रुकी, पुत्रकों का उपहृ इत करत न परसत हुई, वे इन गणेश के सामने बैस जा बैठे। मैं उठ समय

पिता के पास बैठी थी। वे एक वाणी से चारों मुल से बोल उठे, 'अब ! महामारत अक्षय लिला जाना चाहिए।' मैंने उत्तर दिया—मैं जाती हूँ। आकर वो मेरे देखा तो ब्यास खुद बैठे प। मैंने कहा—मैं आपकी सहायता करूँगी। कूट बोलिमे और गव्येय से कहिये कि समझकर मिलें। (हँसती है)

गव्येय—कूट वह भी एक भयङ्कर काम था। मुझे एकदम सम्पूर्ण श्रेया को ज्ञान जाना पड़ता था। कभी खूँड से माया बुझलाता, कभी उस दबाठा तब कही आकर श्लोकों के अर्थ समझ में आते। किंतु मैं ब्यास सचमुच ब्यास हैं, वह मानना पड़ेगा। महाभारत में तहसों शब्द तो ऐसे हैं जिनको उन्होंने प्रकृति प्रकथ लगाकर तादृश बनाया है। अन्तः, तो यह आपकी करामत है, अब समझ ? यह बात उस समय स्वत होती तो मैं भी ब्यास को वह चक्रमा होता कि तुम्हें भी आकर ज्ञान स ही पत्तन्य पड़ता।

सरस्वती—यह न कहना भैया, ब्यास से हिंसा ही क्या है उस कासे कसूटे स।

गव्येय—दिर मो मैं तुम से डरता हूँ बीबी ! अब न जाने क्या पचड़ा से नेटी। मामूम है रात भर पिता और माँ मैं बिबाद होता रहा है। भला नारद को क्यों क्रुद्ध हैं ? माँ तो केवल नारद जी के कहन स मुद्ध हैं।

सर्बती—तू क्या जाने कि मैं नारद के कहने स ही क्रुद्ध हूँ। प्रत्येक को अपनी मान-मवादा प्रिय होती है पुत्र।

सरस्वती—मुझे तो यह खेद है कि पिता मुन्दर काश्य अधूरा रह जायगा माँ ?

पावती—और मुझे यह प्रथमता है कि मैंने कवि को उसकी पूतता का खेद दे दिया।

गव्येय—यदि वे मेरा नाम लेते तो मैं कभी एस मुन्दर काश्य को अपूज्य न रहने देता।

सरस्वती—तो फिर तुम्हारा नाम दिलावा हूँ परले ? मैं क्या करूँ ?

पिता की करते हैं कि मैं बूढ़ हो गया संतार का निमाष करते-करते, कोई मेरा बर्खन ही नहीं करता। तुम करते हो मेरा नाम नहीं है। बार रक्तो गशेष मवित की पुस्तकों में, साधारण कथाओं में, पूजा-वाठ के ही तुम अम के हो, महान शार्यों से तुम्हारा क्या सम्बन्ध ?

बबेज—(हँसकर) अम्हा भला नारद क्यों क्रुद हैं ?

पार्वती—नारद मेरा भवत है। मेरा-सौन्दर्य-बर्खन रति-विश्वास उससे नहीं देला गया इसलिये।

बबेज—सिध्दा है। (स्कन्द का प्रवेग। सरस्वती घोर नाँ को प्रहाम करके)

स्कन्द—देसो माँ, नारद की वह बात सुने अम्ही नहीं लगती।

पार्वती—क्या ?

स्कन्द—सुना है तुमने 'कुमार-सम्भव' को अपूर्व रहने का शाप दिया है। मेरे ऊपर एक ही छो काव्य शिला गया और वह भी अपूर्ण। मझ से नारद कह रहे थे कि चन्द्रगुप्त के पुत्र का नाम 'कुमार' रक्ला गया है। एक तरह से तुम्हारी समानता की गई है—वह बुरी बात है। 'क्या चन्द्रगुप्त का पुत्र महादेव के पुत्र स्कन्द के समान हो बायगा ?' इस तरह कहकर सुने उभार रहे थ। किन्तु 'स्कन्द' या 'कुमार' मेरा ही तो नाम मही है। जब मैंने श्रेष में जाकर कश्मिदास के पाठ रकी वह पुस्तक पढ़ी तो मेरा हृदय गद्गद हो गया। सुना है तुम्हें वह श्रु गार के नाम से बहका गये हैं।

पार्वती—तुम सब अपना अपना स्वार्थ देखते हो। स्कन्द इसलिये चाहता है कि उसका ऊपर एक काव्य-निमाष हुआ। गशेष चाहता है कि यदि उसका नाम शिवा जाता तो मेरे शाप के बाद भी प्रन्व पूर्ण हो जाता। सरस्वती इसलिये चाहती है कि वह हुई रक्षिक, कला साहित्य की सोच, इसे साहित्य की अपूर्णता खनिकर नहीं है। मगवान् शंकर अपने मझ का कार्य पूरा करने पर तुले हैं। अब भी ये क्याबिह बर्ही हों।

[ शंकर का प्रवेग ]

शंकर—हाँ देवी, आज एक सप्ताह से काशिकास निमित्त है। आज ही वह मन्व्य चन्द्रगुप्त को मँद किया जायगा। प्रबुद्धदेवी ने अपने पुत्र का नामकरण कुमार ही किया है। मैंने कई बार मन किया कि वह जागे लिल, किन्तु सेलनो रुक जाती है। छुड़ी नहीं बन पाते। वह रस भी नहीं है। मैंने स्वयं एक-दो श्लोक लिखने का वत्न किया तो रेलार्द निश्चर रह गई। तुम उसे क्या करो देवि? (सरस्वती की धोर देख कर) अरे सरस्वती, तुम यहाँ क्या कर रही हो?

सरस्वती—माँ से अभिष्टाय लाटाने की प्राथना करने आर थी किन्तु मे मानती ही नहीं। ( पञ्चेरा धोर स्वर्य तिरपिदाते-से घाग जाती है। )

बाबती—आप गगा को लिय भ्रमण करते रहें, मन्त्रों को बरदान देते रहें। आपको बशा, किली का मान हो आपका अपमान।

सरस्वती—मैं जाती हूँ। आज कवि क ओवन-मरण का प्रन है, रया कीजिये भगवान्।

शंकर—उबबयिना स आठे दुय धान आसा बिष्णु से मिलता बनू। कनाबित् कोई समस्या का समाधान मिल जाय। उन्होंने भी वह काश्य मदा है। और रग्य तो यह है उठके अर्य मुनकर लक्ष्मी को रूँप्या होने लगी कि उनका बण्ण कवि मे क्यों नहीं किया। बिष्णु तो गद्गद् हो उठे हैं। कई रहे य बाकमीकि क बाँ देला काश्य बना ही नहीं। विद्यता को वह कुल है कि काशिकास का निमाण ही क्यों किया गया। इली सं गम्भूय स्वग मे गकरको मची है। येही सरस्वती, बिष्णुता कई रहे य कि उठोम तुम्हारे ही कहम स काशिकास का निमाण किया है।

सरस्वती—तस्य है भगवन् म बाहती की कि लाहिय आर कला का प्रपार करने क लिए मनुष्यों में एक ऐसा ब्रह्मिउत्तमन किया जाय जो लाकिक लाहिय को प्रोसाहन दे सक।

बाबती—मनुष्य सदा से देवताओं का विरोधी रहा है। उनका हमारे प्रति बिद्रोह रककर अपना महत्व रयापन करम का प्रयान किया है। वह देवताओं क नाम पर अपने राजाओं का रगुवि करता है। यह क्या अच्युती



वात है, क्यों नहीं प्र बदेवी का ही उठने बर्तन किया ?

दाँडर—सकार आभव चाहता है, उसकी शक्तिर्वा सलीम है। मृत्यु, जीवन, वरु आपवश उतके हाथ में नहीं हैं। इसीलिये वह बरता है और अक्षिदास तो मेरा परम भक्त है, तुम्हारा भी। तुम अपना शप सौय लो देवि !

पार्वती—नाथ, वह मेरा मृत है, मेरा विश्वास है कि अक्षिदास ने उचित नहीं किया।

सरस्वती—माँ, आप आघातकि हैं विश्वासी हैं अयम्भता हैं। इस संसार का प्रथमन आप स हुआ है। अतएव मानवोचित इन छोटी बातों में आपका नहा आना चाहिए। आप तीनों अल, विप्रकृति हैं फिर राजस से इतना भय क्या ? (आने लगती हैं।)

पार्वती—(मुल्कराकर) सरस्वती नू बड़ी पतुर है। अचक्षा, मैं सोच कर उतर हूँगी।

लंकर—मैं समाधिरम होने का रहा हूँ देवि !

पार्वती—नाथ, क्या अधिभे। ऐसी क्या आचरकता का पकी जो आप समाधिरम होने का रहे हैं ? एक साधारण व्यक्ति के लिये इतना क्या ? अक्षिदास बेस करनेकी जीव सवार में हैं। उनके लिये भी तो (दाँडर बने जाती हैं।)

सरस्वती—(लौककर) आओ, मैं तुम्हें दिखाऊँ। (पार्वती और सरस्वती लड़ी हो जाती हैं। दोनों दूर तक देखती हैं—बुझ बरमता है। एक राजमार्ग) —देखो वह राजमार्ग है। इस समय तुम वर्तमान प्रविण्ड सब दल रही हो। (दोनों देखती हैं। वह सामने मार्ग में कालिदास की मूर्ति है। आघातक की तरह महाराज अन्नभुक्त कालिदास का अक्षि-वादन कर रहे हैं। लोच घाते और प्रत्यान क जाती हैं।)

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—समाट् अन्नभुक्त ! ( फिर अन्नभुक्त घाते हैं। वे भी कालिदास को प्रत्यान करते हैं। )

पार्वती—सद्माद् कुमारगुप्त !

“निप्लानकबुद्धबेलाकम् यस्य निविषया निर-  
तेनेर्ब बरमं बंदमं कानिवासेन शोभितम् ।

—जिस महाकवि की बाली मनु के रत्न से घालुप्त थी उसी कानिवास ने बंदमों की रीति का मार्ग दिखाया है । ( प्रशाम करके बसे जाते हैं । )

पार्वती—यह कौन है ?

सरस्वती—महान् कवि दयडी ।

[ एक व्यक्ति आते हैं कानिवास को प्रणाम करते हुए— ]

“निर्गतासुन वा कस्य कानिवासेन सुविषय  
प्रीतिर्मेपुर साहास पञ्चरीष्विय जाम्भते ।”

—कविबर कानिवास को घाफ्र-मंजरी के समान मीठी और सरस मूर्तियों को सुनकर किसके हृदय में घातक का उदक नहीं होता ?

पार्वती—यह कौन है ?

सरस्वती—बिनाके वयन के सामने समार अ बर्सान ठण्डिए दे, ये महाकवि बाण ।

[ एक और व्यक्ति आते हैं ]

अस्मिन्निति विवित्र कवि परंपरा बाह्निर्न बंसारे  
कानिवास प्रभृतयो द्विजाः पंचया वा महाकवय पच्यन्ते ।

—इस विवित्र कवि-परंपरायुक्त संसार में कानिवास के समान दो तीन या अधिक-से अधिक पांच-छ कवि ही गिने जा सकते हैं ।

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—अम्बालाक के रचयिता आनंदबधन ।

[ एक और व्यक्ति आते हैं प्रणाम करके— ]

“पुरा कवीनां गणना प्रसवे कनिष्ठिकाविठिल कानिवासः  
प्रघाति तत्स्य कवेरभावावनामिका सार्ववती बभूव ।”

—पहिले कवियों की गणना करने पर कानिवास का नाम

कनिष्ठिका जैवली पर लिखा जाता था और घाब उनके समान किसी के न होने से वह प्रणामिका के समान (प्रद्वितीय) हो बनें हैं।

[ एक और पण्डित प्रह्लाद करके— ]

“एकोऽपि जीवते ह्येत कालिदासो न केनचित्  
शृंगारे सन्तिलोष्यारे कालिदास प्रदी किम ?

[ संसार कालिदास की एक बात में भी समता नहीं कर सकना  
शृंगार और मुललित पद्य-रचना में तो उनका कहना ही क्या ? ]

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—आम्ब-मीमांसाकर राजनेतर ।

[ एक ईद बूट, पतनूनवापी स्थित घाकर प्रह्लाद करके— ]

“वातर्षं कुतुम् कर्त्तुं च पुनश्च प्रीम्नास्व सर्वं च फल,  
परिचाप्यभनतो रसायन मतः सत्सर्वं मोहनम्  
एकीभूतमभूत् पूर्वमपचा स्वर्लोके मूलोक्तयो ।

ऐश्वर्यं यदि वाञ्छसि मिय सखे साकन्तलम् ऐश्वर्याम् ।”

(श्रीभूष और बसन्त के पुष्प और फल तथा मत्त को प्रसन्न करने  
वाले मोहक बितने रस हैं उनको तथा स्वर्नलोक तथा भूलोक के प्रभूत  
पुत्र ऐश्वर्य को हे मित्र यदि तुम एकत्र देखना चाहते हो तो कालिदास  
के नाटक साकन्तला को पढ़ो ।

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—कमनी के कवि गेते । यह देखो अठबको नूर-नारिकी,  
बालकों-बुद्धों के करों में आदिशस की पुस्तकें हैं, बैठक पढ़ते आ रहे हैं ।

पार्वती—मैं समझती थी यह साधारण व्यक्ति होगा । यह तो सब  
मुझ महान् है ।

[ एक स्थित हाथ जोड़कर कहा है— ]

अनोहारिणीं कुमार-संभव कथां वापता पावती,  
सुपेते स्म कवीन्धर ? भवता पीरी विरीची भवन्ती ।



अप्य अधूरा रहकर भी विश्व-साहित्य का उज्ज्वल रत्न होगा। काबिराज तुम महान् हो।

सरस्वती—(सोचती हुई) चलो, यह मेरा काम है तुम्हारा नहीं।

[ काबिराज का निवास-प्रस्ताव। पहले बुध में विलाप बने उद्यान के समान। जहाँ जहाँ अक्षुर्ष निवास करती है। उद्यान में अनेक प्रकार के पुष्पों फलों से लबे बूझ। पास ही बाटिका। उत्तर की घोर शीत-पर्वत पर्व की घाट बापी तथा अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों से युक्त शीत-पर्वत के नीचे लताज्जावित बाटिका में महाकवि वर्तमान है। लता की बचनिका बनी हुई है। जो दूर से दिखाई देती है परन्तु कुछ दूर हटकर स्वर्ण-स्वदिका पर विलासवती भीम उवाच बंधी है। विलासवती कैथर के रंज-सी मधुर, लज्ज-घरीर वाली रमली है। लज्ज जिस पत्थो विलास ने विद्योव क्य से पढ़कर बनाए हैं। कैथ-राशि विद्यारी हुई। नैव ज्योतिहीन फिर भी मनोज्ञ। कभी विलासिन्य के कारण जमल करने लपती है, कभी बँड जाती है। परिचारिका मधु-पान लिये आई है। ]

परिचारिका—(कुछ धामे बढ़कर) लीजिये, थोड़ा-सा मधु-पान कर लीजिये। जिस स्वस्थ हो अन्नगा देखे। आपन्न स्वास्थ्य ठीक नहीं है।

विलासवती—नहीं, मदनिके से बा। मेरा जिस स्वस्थ नहीं है। न जाने कबिबर को क्या हो गया है। वे विद्योव उवाच से बहुत ध्यान मग्न हैं।

परिचारिका—यह तो मैं देख रही हूँ। मेघराज अन्तरि ने कोई उपचार नहीं बताया।

विलासवती—तब कुछ कर चुकी हूँ, सब उपाय ध्वंस गये। वे उन्मत्त हैं सोचते भी नहीं। मैं जीवित न रह सकूँगी मदनिक, यदि कवि को कुछ हो गया। ज्योः ऐसी कल्पना करते भी प्रत्य निकले बा रहे हैं। ( बीका तुषा प्रतिहारी आता है। )

प्रतिहारी—महाराज महाराज प बार रहे हैं वही।

विलासवती—महाराज ! (पठकर) कहाँ हैं ?

परिवारिका—( मधु-वाग्वज्रता की ओर में रखकर पड़ी हो जाती है, महाराज धन्वन्तरि बंध के साथ आते हैं । बिलासवती भीर परिवारिका दोनों मतमस्तक होकर खड़ी हो जाती है । )

अश्वपुत्र—कहाँ है कवि ?

[ बिलासवती ललाटव्याधित बाटिका की ओर संकेत करती है ]

अश्वपुत्र—मैं कवि का दर्शन करना चाहता हूँ ।

बिलासवती—देवाभिवेद, आशा नहीं है । कवि म्रुत हैं ।

अश्वपुत्र—आशा नहीं है, कितकी आका नहीं है ?

बिलासवती—सुमा कौबिदे देव, कवि कित्ती से मिलना नहीं पाहते ।

अश्वपुत्र—किन्तु मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ ।

[ बिलासवती चुप रहती है । अश्वपुत्र स्वर्णिका पर बँड जाते हैं ]

अश्वपुत्र—दुम जानती हो, आज कविबर महासम्राज्ञी को बह रन्य भेद करन वाले हैं ?

बिलासवती—जानती हूँ देव ।

अश्वपुत्र—मैं जानना चाहता हूँ उस काव्य का क्या दुमा ?

बिलासवती—बह अपुत्र है ।

अश्वपुत्र—(आश्चर्य से) अपुत्र है ?

बिलासवती—जी उठी के करण के आज एक लप्ताह स अस्वय है ।

धन्वन्तरि—महाराज ! मैं निवेदन कर चुका हूँ कि काण्डिदास को कोर शारीरिक बध नहीं दे, केवल को मानसिक चिन्ता है । उनके लिए मैंन बह प्रयोग दिये किन्तु सब व्यर्थ हुए ।

अश्वपुत्र—( लोचकर ) अश्वदा देखो, कवि पित दसा में दे ?

[ बिलासवती जाती है और लौटकर ]

बिलासवती—(सप्रसन्न) महाराज ! ये लितरद हैं । मेरे पशुवन को आह भी उन्देल नहीं गुनी ।

बन्धुमुष्ण—हीनते तो स्वरय ध न ।

बिलासवती—मुख तो प्रसन्न दिखाइ देता था । ओ- वै तो लजमुच इस समय पूजाकरणा में दिखाई दिय । झल होता है, काम्य शिला का रहा है । महाराज, मैं विद्वलै एक सपनाइ से एक क्षण के लिए भी उनक पास सं नहीं हूँ । जब व भिन्ता करने का सिलसले की श्रेया करते तो उनके मुख पर स्फंद-विष्णु भ्रमक उठते, तब मैं स्वयं उन्हें पोंछ देती थी । क्या समय मधु अपने करो से विजाती रही हूँ देव ।

बन्धुमुष्ण—देवि, तुम क्या हो बिलने कवि को इतना प्रार्थन किया है ।

बिलासवती—आः महाराज, वह किटना मुख का समय होया जब मैं उनके बीया-विनन्दित स्वर से आगे की कथा सुनूँगी । महाराज ! यह न-जाने मेरे पूर्व-जन्म के कौनसे सौभाग्य का फल है कि मेरे अमर कवि वर ने अपने हृय-कण्ड बरसाय ।

बन्धुमुष्ण—यै स्वयं तो-बकर मबोन्मल हो उठता हूँ कि कश्चित्त मेरे उम्र में है । यह मेरा छोरे इत युग का सोम्याय है ।

[ कालिदास कुमार-सम्भव का एक श्लोक मुखमुतावे हूँ ]

“हृदये बसतीतिमरिप्रयं यदबो व स्तवर्बेनिर्भयत्नम्,  
उपचार एवं न वैदिवं स्वधनेय, कचमजस्ता रतिः ।”

—वति कामदेव के भ्रम होने पर बिलास करती हुई रति कहती हूँ—  
‘तुम तो कहा करते थे तु मेरे हृदय में लया बसती हूँ परन्तु अब मझे ज्ञात हुआ कि वे सब बलावही जालें थीं । केवल लम्बे प्रसन्न करने के लिए कहते व नहीं तो प्रायके कष्ट हो जाने वर मैं कैसे बसती रहूँगी ?

बन्धुमुष्ण—(सस्वर पाठ सुनकर) किटना सुन्दर श्लोक है ।

बिलासवती—(प्रामूर्ति करके)

“हृदये बसतीतिमरिप्रयं यदबो व स्तवर्बेनिर्भयत्नम्,  
उपचार एवं न वैदिवं स्वधनेय, कचमजस्ता रतिः ।”

धर्मतरि—प्रवाद खल पड़ा है। महाराज कवि का स्वारस्य उलझी कविता है। यह भी एक प्रकार का स्वर है जब तक उद्गार के रूप में वह निकल नहीं जाता तब तक उसे शांत नहीं मिलती।

ब्रह्मपुत्र—तुम ठीक कहते हो धर्मतरि। कविता निम्नरिची के मान है, जो बहने के पश्चात् ही शांत होती है। बिलासवती, मैं कवि से मिलूँगा।

धर्मतरि—महाराज! अपराध क्षमा हो। यह अक्षर उनके पास जाने का नहीं है। ये कविता प्रत्ययन में मग्न हैं।

ब्रह्मपुत्र—(उदास होकर) अन्ध्रा बिलासवती कवि का विशेष ध्यान रखना। इसके अतिरिक्त आज तुम्हारा रुस्य होगा। मैं तुम्हें सादर निमंत्रित करता हूँ।

बिलासवती—किन्तु किन्तु मैं तो क्षमा चाहती हूँ देव!

ब्रह्मपुत्र—मैं सब जानता हूँ। तुम्हें किसी रूप में भी क्षमा नहीं किया जा सकता। किन्तु इस प्रश्न के उपलक्ष्य में होन वाले उत्सव-द्वय में क्या तुम्हें कोर आपत्ति है? यह स्वयं कालिदास का सम्मान है देखि।

धर्मतरि—महाराज का अनुरोध है देखि।

बिलासवती—(सोचकर) मैं अक्षर्य चाजूँगी।

ब्रह्मपुत्र—मुझ प्रसन्नता होगी। (दोनों जाने जाते हैं।)

बिलासवती—(मग्न-भाव करके एक वृत्त तोड़कर सूर्यतो हुई) मेरे जीवन के प्रिय सदन मेरे हृदय के आनन्द तुम्हारी तरारवती इसी तरह मधुकरवाती रहे यही मेरी आकांक्षा है। (कुमार-सम्भव का एक श्लोक पदमुनाती है। इतने में एक मग्न-छोना धारक बिलासवती का वस्त्र बरफू लैता है। बिलासवती देवकर ध्यान में मग्न होकर उसे उठा लेती है।) धातुर, तुम सधमुय बहुत धातुर हो। (प्यार करके उसे धौड़ देती है। मग्न हृदय पर पाठ सड़ा हो जाता है।)

बहनिष्ठा—आज प्रातः काल से यह मग्न-छोना बार-बार लतामरुधन में कवि के पाठ आता है और निराश-ना शौट आता है देखि।



बिलासबती—जात होता है, स्थान-मन होने के कारण अब स इस प्यार नहीं मिला। मैं स्वयं बहुत विद्वान हो जाती हूँ कमी-कमी मदनिक। जीवन में मैंने एक ही व्यक्ति को हृदय दिया है, एक ही को प्राण-दान किया है और वे हैं कालिदास। देख तो लड़ी ने क्या कर रहे हैं ? (इतने में कौशेय पट्ट धारण किये नव्य मूर्ति कालिदास पुनःपुनः आते हैं) ओ ! (प्रसन्नता बिखाती हुई) क्या आप सिल चुके ?

कालिदास—(द्वितीया की आँखों में भर का पतार झलक रहा है फिर भी मोहक) तुम्हारे बिना मैं कुछ सिल सकता हूँ क्या ? एक मधु-माष ।

बिलासबती—(मधुमाष लेकर) लीजिये। मैं वहीं पहुँचा देती। मैंने समझ कि आप सिल रहे हैं इसलिए ।

कालिदास—जात होता है मगध की पार्वती ने मुझे उनके मृगार बधन के अपराध में शाप दिया है। इसी कारण मैं बल करके भी कुछ नहीं सिल पा रहा हूँ। कुमार-सम्पन्न पुर्यं न होया इत्यादि मुझे खेद है। (मधुमाष करके) क्षुब्ध की उत्पत्ति का मुझ कारण रति-रस किसी प्रकार भी गल हो सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आता।

बिलासबती—इस लोग समझ है न ? सब प्रत्यक्ष अनुमानात्मक होते हुए भी एक सीमा तक तो हमें जाना होगा। किन्तु पार्वती के रति बधन में मुझे तो कोई भी रूप धारण दिखाई नहीं देता। वह तो इतना मनोहर है कि पढ़कर रोमान हो जाता है। कवि, तुम्हारे वासी में कितना रस है ?

कालिदास—प्रकृति तो तुम्हीं हो बिलासबती एक प्रेरणा जीवन की प्रेरणा, प्राणों का रस। (कौशेय वाले हैं। बीच में छोड़कर कालिदास बिलासबती की आँखों पर स्तिर रखकर बैठ जाते हैं। बिलासबती उनके बालों में हाथ फेरती है। नवनिष्ठा पंथा चलती है।) मनुष्य धार प्रकृति दोनों में संपन्न चल रहा है कि कौन जगत्क सुन्दर है। मैथ, बिजली, तारक, पूर्वाभिषा, नदी मूषक, कुमुद एक-एक-एक सुन्दर एक-एक अधिक मोहक हैं। मानो संपूर्ण विश्व का रस, आनन्द एक-एक में आकर

एक हो गया है। किन्तु—

बिलासबती—किन्तु

कालिदास—मनुष्य इससे भी सुन्दर है। बही तो उस लोभ्य का परिहास है। यदि मनुष्य न हाँसा तो कैसा लगता प्रिये ?

बिलासबती—जैसे तुम्हारे बिना मैं ? ( हँसती है )

कालिदास—और तुम्हारे बिना मैं कैसा होता जानती हो ?

बिलासबती—जानती हूँ।

कालिदास—बताओ ! ( उठ बैठते हैं। धीमे धीमे आँसू डालकर ) बोलो प्रिये ?

बिलासबती—आइए, कविता लिखिये। मैं नहीं जानती ( हँसती हुई झुलने लगती है )

कालिदास—तुमने ठीक संकेत दिया। न मैं कवि हाँसा न कुछ, मेरे पगला। बही न ?

बिलासबती—( बौझकर ) नहीं, यह मेरा आशय नहीं प्रयास्यार।

कालिदास—यह विश्व समकण्ठित स्वर्ण-सखर होता, जो लान से निकलता। स्वर्ण, सब स्वर्ण।

बिलासबती—( पात खाकर ) क्या न जाने कैसे इतना सुन्दर मिल जाते हैं फल पर बात में बात करके भी नहीं जान पाए।

कालिदास—इसमें जानने की क्या बात है। वह भी एक पेग है। मस्तिष्क हृदय से मिला हुआ प्राणों का वेग कितना रस की प्रति माया है। जैसे तुम्हें देखकर हृदय में एक प्रखर की पुस्तक, एक प्रखर की प्रसन्नता होती है उसी प्रखर प्रकृति का लोभ्य, उसका बिलास देखकर मन में एक प्रखर का आह्लास होता है। उस आह्लास को, उस लोभ्य को ६५ शब्दों में उठार देना का नाम 'कविता' है। जो कवि कितनी वक्ष भ्रमना को लम्पता के साथ, आत्मा में स्थापित रस को पचाकर शब्दों के विचित्रों द्वारा, कल्पना की कृत्रिमता से मानव के हृदय-परत पर प्रत्येक हाव-भाव पेशा स मुक्त लीन लकटा है वह उठना ही मदान् कवि है !

बिलासबती—ठीक है। अभी आप प्रकृति और पुरुष के संघर्ष की बात कह रहे थे न ?

कालिदास—हाँ, बस्तुतः पुरुष के भीतर जो सौन्दर्य की एवं प्राण-प्राण्य की भावना आर है वह प्रकृति के कारण ही तो। पुरुष प्रकृति से ही परलभित हुआ है। उसके अन्त का प्रसार प्रकृति है। इसीलिए लौकिक जीवन में प्रकृति मुख्य है।

बिलासबती—आपने एक ब्यह कहा है मरत्य प्रकृति है और जीवन विकृति। यह क्या है ?

कालिदास—यह वृत्ती बात है। वहाँ प्रकृति का अर्थ वास्तविकता है। मृत्यु या मूल-रूप तब है और जीवन तब का विकार। जैसे कुसुम बीज की विकृति है इस प्रकार। महाराज चाहते हैं कि प्रभावती के विवाह के लिए एक नाटक लिखा जाय। मैं सोचता हूँ यह कैसा नाटक हो ?

बिलासबती—रत्न से छुटाक्यावा हुआ, आनन्द से विमोह कर देने वाला और कैसा प्रियतम ? जिसमें भरने की तरह अखण्ड गति से आनन्द यह निकले ?

कालिदास—तुम्हारा कम मैं उसमें डूंगा बिलासबती तुम्हारे कम की भावकता उसमें होगी, तुम्हारे रूप की विशालता उसमें चमकेगी। दर्शक और पाठक कह उठेंगे कि साक्षात् तुम्हीं प्रमुक्त प्राप्त हो।

बिलासबती—( प्रसन्न होकर ) किन्तु मैं तुम्हारे बिना उसमें कम चमक उठूँगी कबि ?

[ कालिदास एकदम किसी बात का ध्यान करते ही चुप हो जाते हैं। बिलासबती उनको उस क्षण में देखकर सोलना बन्द कर देती है। मरबिका मधुपान लेकर आती है। कबि मधु-पान करते वही लिखना प्रारम्भ कर देते हैं। लिखते रहते हैं। बिलासबती पंखा करती है और रत्न-बारे बेनी से उनकी ओर देखती रहती है। ]

४

[ महाराज अन्नमुप्त का प्रासन । उस दिन विशेष रूप से सुसज्जित । रात्रि का समय । महामती कालीनों और स्तुतोपचारों से युक्त । प्रयेक व्यक्ति के प्रासन बने हुए हैं । बीच में महाराज का पारवीड उसके बाय बाय में महारानी प्रुबदेवी का प्रासन । तदनसार कुंवर नागा उनकी दूतरी पत्नी का स्थान । बाईं ओर कानिवास तथा शय्य लोचों के बैठने की जगह । सामने बादिबों के साथ बिलासवती के बैठने की जगह । प्रासन में मछि-बचकों में बीच बल रहे हैं । कक्ष में प्रपदगंध करतुरी की बत्तियाँ जल रही हैं । बीरे-बीरे बादिबों के साथ बिलासवती प्राप्ती है । उसके बाद राजामात्य तथा शय्य कवि । प्रमावती कम्पा कबेर नागा के पास । फिर प्र बदेवी शय-शोच के साथ पपारती है । प्रुबदेवी तथा कबेर नागा के हाथ में नील-कमल कैश-यात्र में बालकृष्ण मुकुट पर लोम-पुष्प का कुर्म कुर्णों में कुरबक-मुहर, कानों में शिरीष-पुष्प मये हुए हैं । एक परिवारिका कुमारपुप्त को लिए उनके पीछे प्राप्ती है । दो परिवारिकार्य्यजन करती हुई पीछे चलती हैं । बीरे-बीरे सब लोच प्राकर बैठ जाती हैं । केवल महाराज और कानिवास का स्थान रिक्त है । ]

राजामात्य—कविवर नहीं आय, क्या कारण है ? महाराज आया ही चाहते हैं ।

धर्मतरि—कवि आज सर्वथा स्वयं हैं, अब तक आ तो जाना चाहिए ।

बिलासवती—वे आ ही रहे होंगे महामतिन् ।

प्र बदेवी—बिलासवती, तुम कविवर को प्रेमगत्री हो । आज कवि बिल प्रय को जेंट करना चाहते हैं, उसके उपलक्ष में तुम्हारा नृत्य ही उपयुक्त होता इसलिए महाराज से आग्रह करके तुम्हें बुलाया है ।

पणवास—बिलासवती कहीं भी नृत्य नहीं करती, केवल महानेव के सामने ही ये नृत्य करती हैं किन्तु महाराज क आग्रह सही इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा रंग की है महाराजकी । ये देखवाती है ।

प्रबोधी—उबा मी तो बेवता होता है, गणदास ।

हरदत्त—मेरी शिष्या माधवी मी बेवताद मे ही नृत्य करती थी, किन्तु महाराज ने उसकी नृत्य कला को सर्वप्रथम स्थान दिया, इसलिए उसने महाराज के सम्मुख नृत्य करना स्वीकार किया । वह मी ऐसी-वैसी नहीं है ।

बलदास—वह सब अश्रमसंगिक कार्यान्वय है हरदत्त । माधवी का इस समय नहीं क्या काम ?

हरदत्त—यदि वह आज अस्वस्थ न होती तो विज्ञातवती को आकरकता मी नहीं भी गणदास ।

प्रबोधी—नहीं नहीं, मेरे विद्येय अनुरोध से ही विज्ञातवती को सादर आमन्त्रित किया गया है ।

राजामात्य—( अपनी झेल बाड़ी पर हाथ केरते हुए ) महाराजी पधार्य कहती हैं हरदत्त ।

[ अय-धोत्र के साथ महाराज आते हैं । सब खड़े हो जाते हैं । अग्रगुप्त खड़े हैं । ]

अग्रगुप्त—कालिदास नहीं आय ?

राजामात्य—महाप्रभु आ रहे हैं ।

[ महाराज के संकेत से विज्ञातवती नृत्य करती हैं । इसी समय कालिदास आ जाते हैं । धुंभक बजाते ही सब व्यक्ति उत्कर्ष हो खड़े हैं—दुन्दुभ्यम नृत्य-ध्वनि ]

जम जम जम जम—!

जमज जमज जम—जम जम जम ।

भूम भूम भूम भूम भूमि भूम नम भूम

पति जम स्वर जम नय जम तान जम

मूर्च्छना-विमूर्च्छना प्ररोह-अवरोह जम

पति पति जम जम ध्वनि जम, जम, जम

पवन मी गई जम हृदय की पति जम

विरति नें जम, जम पति-पति जम ।

[ ताण्डव का मेघ के पक्षम के साथ नृत्य ]

लित्त के डमक तम मेघ की वरक मम  
 डम डम डम डम पमक डमक धम ।  
 धम, धम धम धम धम धम,  
 धमध धमध धम-धम धम धम ।

[ इसकी पुनरावृत्ति होती है । मधोम्मत्त-के सब कारियद्य मध्य मध्य कह बैठते हैं नृत्य समाप्त होता है, सभा में निस्तम्भता छा जाती है । बहुत देर बाद ]

बभ्रुपुत्र—अप्य है बिलासवती ! अप्य है ! ऐसा राव तो आज तक नहीं देखा ।

मृ.बदेवी—साक्षात् शिव सायबब ! मेघ भी फिर आर, बिल्ली मी बमकन लागी ।

[ एक-एक करके महाराज महाराज्ञी तथा राज्ञी कुबरनामा अपना-अपना रत्नहार बिलासवती को भेंट करती हैं ]

बभ्रुपुत्र—कबिबर, मध्य तो समाप्त होगया न !

कालिदास—( उदात्त होकर ) आगे की कवा नहीं लिख सकता, देवि !

बभ्रुपुत्र—क्यों ?

कालिदास—ठग्मभ नहीं है, सेखनी मूक हो गई है, बल करके भी नहीं लिख पाया ।

बभ्रुपुत्र—कारण ?

कालिदास—कारण मैं स्वयं नहीं ब्यनता । क्लिप्तन श्रेयता हूँ तो सेखनी रुक जाती है ।

मृ.बदेवी—बल करो कबिबर, मेरे पुत्र को दिया जाने वाला मध्य पूरा होना ही चाहिए ।

कालिदास—इस मध्य की अपुण्यता ही मूर्खता है । किरात की बिय

देवि कुमार-सम्भव इससे आगे नहीं लिखा जा सकता ।

ब्रह्मबुध्—आश्चर्य है, इतना सुन्दर काव्य और पूरा न हुआ ।

प्रबोधी—कविवर आप कवि हैं । कवि भूत मणिष्यत्, वर्तमान का द्रष्टा होता है । क्या करण्य है जो आप इसे पूर्ण नहीं कर सके ?

ब्रह्मबुध्—विश्वास नहीं होता । जो आप चाहें वह न हो । आपके सचेतों पर राज्यों में परिवर्तन प्रकाश में नया विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है ।

प्रबोधी—तो क्या करण्य है ?

कालिदास—कारण्य करण्य कवि स्वयं नहीं जानता ।

प्रबोधी—मेरी प्रार्थना है काव्य पूरा कीजिये । आपूर्ण काव्य मेरे कुमार का अपमान है ।

कालिदास—मानापमान मैं कुछ नहीं जानता । कविता प्रेरणा है न जाने क्यों मेरी प्रेरणा कु ठिठ हो गई है । मुझे बात हो गया इस काव्य का आगे लिखा जाना असम्भव है ।

प्रबोधी—तो मानना होगा आपका कवित्व समाप्त हो गया !

ब्रह्मबुध्—नहीं, ऐसा मत कहो । रघुवंश लिखा जा रहा है । उसकी गति में कोई भ्रमभान नहीं है ।

कालिदास—ह, रघुवंश लिखने की प्रेरणा बराबर बढ़ रही है ! जब-जब कुमार-सम्भव लिखने बैठा तभी रघुवंश के जन्म, कथा लिख जाता रहा हूँ । लीजिये यह आपकी गैट है ।

प्रबोधी—अपुन्य मन्य मैं स्वीकार नहीं कर सकती । ( अनाक वाक्य रोने लगता है ) मैंने बड़े आग्रह के साथ आपसे प्राथना की थी, किन्तु आपने उसे दुहरा दिया, कविवर ।

कालिदास—( बुझता से ) देवि मैं विवश हूँ । कवि की भाषा हर काव्य के सम्बन्ध में मूढ़ हो गई है । ( कालिदास का स्वर बृह । नेत्रों से क्षीयित-स्फुल्लित निकलते हैं । तभी वे नेत्र बन्द कर लेते हैं )

प्रबोधी—तो रहने दीजिये मुझे, वह स्वीकार नहीं है, कविवर !

( इतना कहते ही बालक बच से रोने लगता है । प्र बदेवी को परिचारिका के छुप कराने तथा पुचकारने पर भी बालक पला काड़-काड़कर रोता ही रहता है । प्र बदेवी परिचारिका के साथ बालक को लेकर जाती जाती है बासक के रोने की धाबाज धाती रहती है । प्र बदेवी फिर लौट जाती है । ) न जाने कुमार को क्या हा गया ?

वराहमिहिर—देवि, इमको कवि का प्रय स्वोकार करना ही होगा । इती मे बालक का कस्याय है ।

प्र बदेवी—(बुप)

कुबेर भाषा—महारानी ! सरस्वती का, कवि का अपमान मत कीजिय । (बालक के रोने की ध्वनि) परिचारिका ।

परिचारिका—कुमार बहुत रो रहे हैं, उनका स्वर राते-रोते बैठ गया है ।

बभ्रुगुप्त—देवि, विभ्यता की इच्छा है कि प्रय को अशोकर न किया जाय । (कासिदास जाने मयते हैं) ठहरिये कविवर, इसम आत्म शोष मत है ।

परिचारिका—महारानी ! बालक घसठ हो रहा है । (प्र बदेवी जाती जाती है)

वराहमिहिर—महाराज ! ( पात जाकर ) यदि यह प्रय कुमार को न किया गया तो अनर्थ हो जायगा । यह कवि का नहीं मगबती सरस्वती का अपमान है ।

राजामास्य—महाराज ! आपन जो स्वप्न देना था यह उसी का प्रमाण है । नारद स्वयं कह यव धे कि काव्य क पूर्ण होने को सम्पन्न है ।

वराहमिहिर—यदि सरस्वती कठ जाती तो शुद्ध भी अगुण रहना चाहिये । यह मैरी समझ में नहीं आता । कासिदास झूठ नहीं कहते । महाराज, इती मे राजामस्य का कस्याय है कि प्रय कुमार को भेंट किया जाय ।



अन्नपुत्र—बराहमिहिर, मैं क्या कहूँ महारानी नहीं चाहती।

बराहमिहिर—महारानी को चाहना होगा। बालक उस समय तक रोना बन्द नहीं करेगा जब तक प्रमथ उसे भेंट नहीं किया जायगा। (रोने की ध्वनि जाती है)

अन्नपुत्र—बड़ा आश्चर्य है, बराहमिहिर !

राजामाता—बड़ा आश्चर्य है, महाप्रभु ! (कानिवास जाने लगते हैं)

अन्नपुत्र—ठहरिये कविवर ! ( बालक को लिये हुए अश्वेयी जाती है )

अश्वेयी—महाराज, न जाने कुमार को क्या हो गया !

अन्नपुत्र—देवी हमको यह प्रमथ स्वीकार करना ही होगा, इसी में बालक का कल्याण है।

[ अश्वेयी चुप रहती है ]

कुबेर नाया—महारानी, इस तरह कवि का अपमान मत कीजिये, क्षतिप ।

अश्वेयी—(पास जाकर) कविवर, मैं आपका प्रमथ सहर्ष स्वीकार करती हूँ ।

अन्नपुत्र—यही उचित है, देवि ।

[प्रमथ लेकर प्रागे बढ़ते ही बालक चुप हो जाता है। कवि बालक को प्रमथ-स्पर्श कराकर अश्वेयी को भेंट करते हैं। प्राकाश में मेघ बरसने लगते हैं, बिजली कड़कती है। कानिवास प्रमथ भेंट करते हुए बेच बन्ध करके चले हैं—

“अनवाप्तमवाप्तव्यं न किञ्चन हि विद्यते

लोकानुग्रहं पूर्वो हेतुस्ते जग्मकर्मसो ।”

अश्वेयी बालक को मोद में लेकर प्रमथ स्वीकार करती है अन्नपुत्र सिध मुकण्ड चढ़े हो जाते हैं। अय-बोय होता है—कविवर कानिवास की अय । ]

[ परधा बिप्लव है ]

५

# क्रातिकारी विश्वामित्र

( वैदिक युग का एक चित्र )

## पात्र-परिचय

लोपामुद्रा  
 विश्वामित्र  
 बलिष्ठ  
 अमरग्निस  
 अनास्य  
 अग्निरस  
 धृतःश्रेय  
 हरिश्चन्द्र  
 रोहित  
 राजमहिषी  
 अवीर्गर्त  
 अन्ध

[समय—प्रातःकाल दो घड़ी दिन बढ़े । यज्ञ-वैदिका से मग्न-भूम उठ रहा है । ज्ञात होता है प्रसन्नकाल का अग्निहोत्र अभी समाप्त हुआ है । सामग्री इधर-उधर बिखर रही है । बुझासन भी अभी तक जहाँ-तहाँ बिछे हैं । उसी के पास अवलम्बित भूमि के चारों ओर घातवालों में कुछ तुलसी के लोभे लगे हैं । स्थान-स्थान पर काष्ठ-शिला बट्टकों पर मृग चर्म बिछे हैं । महाराज हरिश्चन्द्र एक पलक दर बड़ा उपवास लमाये मग्न-चर्म दर सेटे हैं । कभी-कभी वे उठकर बैठ जाते हैं । उनके घातन के

सामने कुछ दूरी पर हिरण बिचर रहे हूँ। हरिश्चन्द्र की बयसू लपनग  
 ४ बय। बड़े-बड़े तिर के बाल मस्तक पर तिलक बाड़ी घीर मूँछें।  
 घीर बर्ष भव्य लेखती घाहूति बलपूर्व घरीर। कसे पर उलरीय। बाहुओं  
 में अंगर। कौयेय-बद पहिने। बिन्तलुर घाहूति। बंती कियोर घाहूति  
 में पग्रह बर्ष का रोहित उनके सामने बड़ा है। हरिश्चन्द्र उसे ललबाई  
 भाँकों से देख रहे हैं। ]

रोहित—मैं भी आज मृगया के लिए बरतूंगा पिताजी! यह देखिए,  
 (दूखीर में बाण घीर कसे का बन्य दिखाकर) मुझे आज दीखिये।  
 हरिश्चन्द्र—गुन्दर है। तो किसी अंगरघक को साथ ले जाओ  
 पुत्र!

रोहित—मेरे ठहाप्याबी साथ हैं। हम लोगों ने निरूप्य किया है  
 कि बिना तिर की मृगया किसे न लौटेंगे।

हरिश्चन्द्र—तिर शाबक हो न! जाओ। (तली बजाकर। एक  
 अंगरघक से) देखो तुम राजकुमार के पीछे-पीछे जाओ। ध्यान  
 रखना है।

अंगरघक—(तिर बजाकर) ओ आज्ञा। (रोहित को लेकर जाता है)  
 हरिश्चन्द्र—बना कठोर कार्य आकर उपस्थित हुआ है, एक घोर  
 पुत्र का मोह उठके प्रयों की रचा और वृत्ती और प्रतिक्रिया-मालन मैंने  
 अपने जीवन में कभी प्रविष्टा भंग नहीं की, कभी सत्व से पीछे नहीं हटा,  
 किन्तु आज ऐसा लगता है ऐसा लगता है मैं पुत्र के बिना भी न  
 लड़ूँगा, एक पक्ष भी प्राय न रख लूँगा, क्या करूँ ? कोई उपाय  
 नहीं है, कोई भी उपाय नहीं है, तुना है बन्धदेव ने कुछ पुरोहित बलिष्ठ  
 को आज्ञा दी है कि शीघ्र हो यदि रोहित की बलि न दी गई तो हरिश्चन्द्र  
 अतद्योग स पीकित होया, पुत्र । पुत्र रोहित ऊँचा बलवान, अन्ति  
 मान, बतुर, विद्वान और आज्ञाकारी है। उतने बना पाप किया, जो मैं  
 उतकी बलि हूँ। नहीं मैं कष्ट भोगूँगा किन्तु पुत्र-बच नहीं करूँगा। यह  
 महापाप है। (ठहरकर) किन्तु सत्व का पावन, सत्व का पावन तो करना

ही होगा। मैं कष्ट भोगकर, अपने प्राण देकर भी देवता को प्रसन्न करूँगा। ब्रह्मदेव मेरे प्राण ले लें, मैं उष्य हूँ। (राजमहिषी का प्रवेश)

राजमहिषी—महाराज क्या सोच रहे हैं ?

हरिश्चन्द्र—वही कि मैं कष्ट भोगकर, रोगी रहकर, अपने प्राण वृथा, और इत तरह सत्य का पालन करूँगा। इतना मुन्दर पुत्र, आधा उलझे देखते ही अर्धों बमकने लगती हैं, हृदय सन्तुष्ट हो जाता है, प्राण वृष्ट हो उठते हैं। वह मेरे वंश का दीर्घ है, बड़ी वापना-तपस्वा के बाद पाये पुत्र को नहीं नहीं ।

राजमहिषी—हाँ महाराज, ब्रह्मदेव को हम और उपायों से प्रसन्न करेंगे, और आप चिन्ता क्यों करते हैं ? हम ब्रह्मदेव को किसी-नकितो तरह प्रसन्न कर लेंगे।

हरिश्चन्द्र—हाँ, पर वह मेरी छाती में पीड़ा क्यों हो रही है, दर्द बढ़ रहा है, बढ़ता ही जाता है, देखि ओ ओई उपाय करो, उपाय करो। (बककर) यह अपने आप थोड़ी देर में शान्त हो जायेगा, मही मही (बशिष्ठ तथा अन्य व्यक्तियों का प्रवेश) आह, क्या यह रोग किसी तरह भी कम न होगा। आह पीड़ा के मारे प्राण निकलौ जा रहे हैं ! मुनिवर, क्या आप भी ओह जपाव नहीं बता सकते ? बड़ी पीड़ा है देखी ! ओह मैं क्या करूँ, क्या करूँ बशिष्ठ गुरु ?

राजमहिषी—महाराज ! धैर्य रखिये, कष्ट अवर्य शान्त होगा, भगवान् ब्रह्मदेव अवर्य हुगा करेंगे।

हरिश्चन्द्र—नहीं, भगवान् ब्रह्मदेव मेरे प्राण लेना चाहते हैं तो ले लें, किन्तु धरने जाते-बी ओ ओ (मूर्च्छित हो जाते हैं)

बशिष्ठ—मूर्च्छित हो गये !

राजमहिषी—( निहोरे से आबल पत्तारकर) मुनिवर, ओरे उपाय कीजिये ! महाराज के प्राण बचाइय ! मेरे प्राण उपरिष्ठ हैं।

बशिष्ठ—इतका तो एक ही उपाय है, रोहित की बलि, महारानी !

राजमहिषी—वह तो महाराज प्रायः रहते नहीं स्वीकार करना चाहते, किन्तु वे वस्त्रदेव के प्रति अपनी प्रतिष्ठा का पालन करना चाहते हैं। क्या और कोई उपाय नहीं है ?

बसिष्ठ—(पम्पीर होकर) और कोई उपाय नहीं है, महाराज को अपने पुत्र रोहित की बलि देनी ही होगी। वे देवता से बचन-बद्ध हैं। उन्होंने पुत्र की कामना के हेतु जो प्रतिष्ठा की थी, उन्हें स्मरण है ?

राजमहिषी—हाँ महाराज, मुझे स्मरण है। उन्होंने पुत्र की कामना करते हुए वस्त्रदेव से प्रार्थना की थी कि यदि उनके पुत्र हुआ तो उतकी ब्रह्म में वस्त्रदेव को बलि देंगे किन्तु ।

बसिष्ठ—फिर मुझे आपत्ति का कोई कारण नहीं दिखाई देता, धार्मिक उपस्थि हो बचन नहीं करते।

राजमहिषी—मैं महाराज को किस तरह समझाऊँ, वे पुत्र-श्रेष्ठ में अपना अंतना लो बैठे हैं। वे नहीं चाहते कि रोहित की बलि दी जाय। वे कहते हैं कि रोहित की बलि के बाद वे जीवित नहीं रह सकेंगे। उन्हें इस संसार में केवल रोहित के द्वारा ही प्रकाश दिखाई देता है। पुत्र तो आकर पुत्र ही है न मुनिवर !

बसिष्ठ—और तुम क्या करती हो ?

राजमहिषी—मेरी चेतना पश्चिमा है गुह्येव। वे जो कृष्ण लोचने हैं वही मैं सोचती हूँ। वे जो कुछ कहते हैं वही मैं बोलती हूँ, मेरा अपना स्वस्म कुछ भी नहीं है।

बसिष्ठ—ये तुम इस प्रतिष्ठा-मग्न के पाप से भी नहीं बरती !

राजमहिषी—मैं चाहती हूँ वे निष्पाप हों।

बसिष्ठ—ठाँ तुम महाराज को परामर्श दो कि वे पुत्र-श्रेष्ठ त्यागकर अपनी प्रतिष्ठा के लिए रोहित की ब्रह्म में बलि दें।

राजमहिषी—यिहा अपनी आँसुओं के सामने अपने जीवित पुत्र को अग्नि में बलवाने दे, माता अपने प्राण के संस्कार को बलवाने देसती रहे। कोई और उपाय बताइये, आप हमारे पुरोहित हैं बसिष्ठ। आप

केर खानी हैं मंत्रद्वय हैं । आप वरुणदेव से प्राचना कीजिये कि वे हम पर कृपा करें । हम अन्य सभी उपायों से उन्हें प्रसन्न करने को प्रयत्न हैं ।

वसिष्ठ—इस रोग की एकमात्र औषधि पुत्र की वसि है । मैं कोई और उपाय नहीं जानता, महाराज को पुत्र की वसि देनी ही होगी ।

हरिश्चन्द्र—(बैतम्य होकर) ओह ! क्या मेरी वसि से देवता प्रसन्न होगी ?

वसिष्ठ—नहीं ।

राजमहिषी—मैं प्रयत्न हूँ महाराज !

वसिष्ठ—नहीं ।

हरिश्चन्द्र—मेरा यश नष्ट हो जायेगा । यश-वृद्धि के लिए मनुष्य कृपान्तापन्न करता है वसिष्ठ ।

राजमहिषी—ऐसा तो आज तक कभी नहीं हुआ कि आय देवता नर-वसि से प्रसन्न हों ।

वसिष्ठ—एसी प्रतिज्ञा भी आज तक किसी ने नहीं की थी अमात्य !

राजमहिषी—आय देवता तो सर्वमुक्त नर-वसि के पदपाती कभी नहीं तुम गये । क्या वे निरुपय हा मेरे पुत्र की वसि चाहते हैं ?

वसिष्ठ—इसमें तन्वेद के लिए कोई भी स्थान नहीं है, प्रतिज्ञा ( हरिश्चन्द्र पीड़ा से छटपटाने लगते हैं पत्नी विमूर्छने लगती है ) मैं स्वयं महाराज के कष्ट से अभिभूत हूँ, किन्तु विवश हूँ । आप निरन्तर सोलह वर्ष तक अपनी प्रतिज्ञा टकटै रहे हैं इसी कारण देवता आप पर क्रुद्ध हैं । मुझ विश्वास है कि व रोहित की वसि नहीं प्रदत्त करेंगे, फिर भी ठमको बल मैं तृप्य से बाँधना होगा, और

हरिश्चन्द्र—आर क्या 'भयंकर कष्ट है प्रभो ! हे देव ओ पीना पीना 'माश निहरी जा रहे हैं, ओ (किर मूर्च्छित हो जाने हैं)

वसिष्ठ—महाराज फिर मूर्च्छित हो गये । मैं और कुछ भी नहीं जानता । मैंने कभी अठ व भाग्य नहीं किया देवता का यही आदेश है ।

[ हरिश्चन्द्र किर पड़बटाते हैं ]

राजमहिषी—मैं पुत्र की बलि दूंगी, मैं पुत्र की बलि दूंगी

हरिश्चन्द्र—( घिठन होकर ) फिर वही कह फिर वही क्या करूँ । कोई उपाय नहीं है मुनिवर !

वसिष्ठ—कोई उपाय नहीं है, पुत्र की बलि

हरिश्चन्द्र—आपका पौरहित्य फिर स्वयं है, स्वयं है आप ।

वसिष्ठ—( खेप से ) मैं तुम्हारी निर्बलता से ऊपर उठा हूँ हरिश्चन्द्र ! अक्षय्य प्रतिष्ठा निर्बल, बेच-बोही हो तुम मैं कर्महीन मनुष्य का धाम नहीं दे सकता, मैं खाता हूँ । तुम कह मोगो और दिक्ता के श्रेय भाजन बनो । मैं कुछ नहीं कर सकता ।

हरिश्चन्द्र—( भिड़गिड़गकर ) मुनिवर ! मुझ से मूस हुई, बाम कीजिये । ओ कष्ट

राजमहिषी—इवा करे देव ।

वसिष्ठ—आप मेरा वहाँ कोई प्रयोजन नहीं है, मैं आपकी रक्षा नहीं कर सकता, मैं खाता हूँ तुम मोह-मस्त हो ।

हरिश्चन्द्र—(बोड़ी डेर वसिष्ठ को जाते देखते रहकर) बेटी आपकी हस्ता, मैं विश्वामित्र को अपना पुरोहित बनाऊँगा ।

वसिष्ठ—(लौहकर) विश्वामित्र को, उठ धर्मिय श्रुति को, जिसने अपने जीवन को प्रारम्भ स आर्यों की परम्परा के प्रतिकूल अनार्यों से सम्पन्न बनाये रक्ता है, वह अनार्य मठ का प्रवर्तक । (जाते जाते हैं)

[ वही स्थान । वही वृक्ष ]

राजमहिषी—कहो अमात्य, कोई ब्राह्मण कुमार मिला ।

अमात्य—वही अठिमाई से एक ब्राह्मण पुत्रक मिला है देवि, अजी गठ का मध्यम पुत्र ।

राजमहिषी—अगस्त्य से शपथ, जजीगठ का मध्यम पुत्र । कैसे राजी हुआ वह अजीमर्त !

अमात्य—अजीगठ के तीन पुत्र हैं, बड़े को सिता चाहते हैं, छोटे को उकड़ी पत्नी, मध्यम को कोई नहीं । इतलिय ही गाँवें शोक अजीमर्त

ने मरबम पुत्र को दिया है।

राजमहिषी—क्या उठ बालक के लिए किसी के हृदय में मोह नहीं है, जैसे हैं वे माँ बाप। या विचार निस्तेह बालक।

धनराज्य—मरता तो विरोध कर रही थी, किन्तु अन्तिमार्त ही गावों के लोग को न रोक सके। उन्होंने सब के विरोध करते हुए भी उसे दे दिया।

महिषी—क्या तुमने कहा था कि उठ पुत्रक की बलि दी जायेगी ?

धनराज्य—हाँ।

महिषी—उठ बालक को यह मालूम हो गया था। नहीं अमात्य, वह मुझ से नहीं हो सकेगा, न सही मेरा बालक, पर बालक तो है।

धनराज्य—बढ़ि आप मोह में रहेंगी तो महाराज का कष्ट दूर न होगा, और वे प्रतिज्ञा को पूरा न कर सकेगी। इस समय क्या दिग्भ्रम से काम न चलेगा देखि।

महिषी—तुम सब कहते हो अमात्य, किन्तु वह तो क्या अन्त्या है कि हम तो माँ देकर एक बालक के पुत्र की बलि दें।

धनराज्य—स्वार्थ के लिए सब कुछ करना होता है देखि। वह बालक भी नहीं बादता कि उसकी बलि दी जाये।

महिषी—फिर, फिर अमात्य मैं क्या करूँ ? छोड़ क्या कष्ट है ? न जान भयवान् बकशदेव ने ऐसा निश्चय क्यों किया ?

धनराज्य—वह तो महाराज का निश्चय है।

महिषी—(सच्ची सौत लेकर) हाँ अमात्य, महाराज का निश्चय है किन्तु मैं सोचती हूँ क्या कभी ऐसा हुआ है कि जब करके किसी बालक के पुत्र की बलि दी गई हो।

धनराज्य—नहीं ऐसा कभी नहीं हुआ। आज तक किसी भी मनुष्य की बलि नहीं दी गई।

महिषी—मैं पूजनी हूँ फिर अब ऐसा क्यों हो रहा है। बलिदान इतना आसुर क्यों कर रहे थे, और वे क्रोध में भरकर हम लोगों को



झोड़कर भी चले गये।

अमात्य—वह मैं कुछ भी नहीं जानता महारानी।

महिषी—अब यह कौन करायेगा ?

अमात्य—महाराज ने महर्षि विश्वामित्र को धाने का मिश्रण दिया है, वे ही यह करायेंगे।

महिषी—महर्षि विश्वामित्र, वे कसे जानी हैं, परोपकारी भी, मन्त्र उल्टा शासक का नाम क्या है ? वह कहाँ है ?

अमात्य—शुन शेष, वह परिचरों द्वारा खामा का रहा है।

महिषी—शुन-शेष क्या वह मन्त्र-द्रष्टा होने की इच्छा रखने वाला पुत्रक ? नहीं, वह नहीं होगा, मैं स्वयं प्राण्य दे दूँगी, किन्तु उल्टा मन्त्र-द्रष्टा बालक, कुपार की शक्ति न होमे दूँगी। नहीं यह कमी नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। (चिन्तास्ती जाती है)

अमात्य—न धाने क्या होने वाला है ?

[ मार्ग में शुन-शेष चिन्तास्ती हुआ ]

शुन-शेष—अरे मुझे कहाँ ले जा रहे हो मुझे छोड़ दो मार्ग, मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा है ?

पहला व्यक्ति—छोक कैसे दें, तुम्हारे पिता को तुम्हारे बदसे में छो गवें ही हैं न ?

शुन-शेष—उससे मुझे क्या ?

दूसरा व्यक्ति—तुम उसके पुत्र हो या नहीं ?

शुन-शेष—पुत्र होने से क्या मैं उनके पाप पुण्य विचार-अविचार का भी भागी हूँ ?

पहला व्यक्ति—माता पिता का पुत्र पुत्र को भी मोगना होता है शुन-शेष !

अन्य—उनको क्या दुःख है व निरनेही हूँ व मेरे पिता नहीं हैं, कोई पिता अपने पुत्र को नहीं बेचता।

दूसरा व्यक्ति—इस नहीं जानते, तुमको खलना ही होगा। बर्बर से

कहते हैं। (दोनों बाँपते हैं)

[ शुभ-श्रेय चिन्तामणि है ]

शुभ-श्रेय—मुझे कोई बधाओ, ये दुष्ट मुझ बाँपकर बच क लिए से जा रहे हैं। धरे कोई मेरी रक्षा करो। रक्षा करो।

दोनों व्यक्ति—वहाँ तुम्हारा कोई रक्षक नहीं है।

शुभ-श्रेय—किन्तु मैंने क्या पाप किया है माँ, मैं निरपराध हूँ। धरे कोई मुझे बधाओ, यह महान् अनर्थ है कि पिता के कारण मुझ निरपराध भी हत्या हो।

पहला व्यक्ति—जात होता है कि तुम वनिक भी पितृ-भक्त नहीं हो, सोय तो पिता की आज्ञा पर प्रथम तक दे दते हैं।

शुभ-श्रेय—पर मैं श्रुग्धेदकार श्रुति होना चाहता हूँ। मुझ जीवन से माँ, मैं जीना चाहता हूँ। जीवन परम मुल है।

पहला व्यक्ति—तुम्हने पिता के सामने तो कोई आपत्ति नहीं की, उनके लो गोत्रों क स्वीकार करते ही तुम पत्नी प्राये।

शुभ-श्रेय—इसलिए कि मैं बहाँ बहुत ही दुःखी था ये मुझ नहीं पारते थ न जाने क्यों, और मत्ता-पिता का सम्बन्ध केवल प्रथम तक रहता है। मैं मंत्र-द्रष्टा होना चाहता हूँ, मैं जीना चाहता हूँ, मुझ जीवन से।

पहला व्यक्ति—बाँधो, यह ऐसे न पलेगा।

दुःखी व्यक्ति—हाँ मैं हाथ पकड़ता हूँ, तुम वेर बाँध दो। (दोनों बाँधते हैं। शुभ-श्रेय चिन्तामणि है। इसी समय विश्रामिका प्रवेश करते हैं।)

विश्रामिका—क्या है, क्यों इस मुझको बाँधकर ले जा रहे हो ?

पहला व्यक्ति—महर्षि, हरिश्चन्द्र महाराज ने अजीवत से लो गायों के बदले में बत की बलि के लिए उसके मध्यम पुत्र की क्य किया है, हम उनके अनुसर हैं।

विश्रामिका—क्या यह मैं इसकी बलि से जायगी ? नर-बलि ! उत यह के लिए तो महाराज ने मुझ भी निर्मघण दिया है।

शुभ-श्रेय—मुझे क्याहये महर्षि ! यह क्या अग्याय हो रहा है, मेरी

रक्षा करो देव ! (बिम्बास्ता है) मैं मंत्र-ब्रह्मा होना चाहता हूँ ।

बिम्बामित्र—शोक मत करो बस मैं बन्ध्यापति इस यह मे नर  
बलि न होने दूँगा । यह देवाद्या नहीं हो सकती ।

शुनःश्रेय—यह लोग मुझे बाँधकर लिये जा रहे हैं । मुझे छुड़ाइये ।  
मुझे छुड़ाइये ।

पशुना व्यक्ति—हम श्रेय तुम्हें किसी तरह छोड़ नहीं सकते । तुम  
चाहे कितना ही चिन्ताओ ।

बिम्बामित्र—ठहरो ! ठहरो ! तुम ठह पापी अजीगत के मध्यम  
पुत्र हो ।

शुनःश्रेय—मैं शुनःश्रेय हूँ महर्षि !

बिम्बामित्र—शुनःश्रेय, अजीगत का मध्यम पुत्र । (शुनःश्रेय से)  
तुमने, क्या तुम इस युवक को छोड़ नहीं सकते । इसके बरतों में मुझे  
पकड़कर ले बसो ।

पशुना व्यक्ति—नहीं, यही श्रेय है । महाराज ने तो यानों में इसे  
बंदी रखा है, हम को आशा है कि इसे शीघ्र ही महाराज के निकट पहुँचा  
दे, हम और किसी को नहीं ले जा सकते ।

बिम्बामित्र—मैं बलि को तैयार हूँ । तुम मुझे ले बसो, इसे  
छोड़ दो ।

श्रेयों व्यक्ति—महर्षि, आपकी आशा शिरोधार्य है, किन्तु हम  
शुनःश्रेय को छोड़ नहीं सकते । इन्हें तो महाराज के निकट पहुँचाना ही  
होया ।

बिम्बामित्र—क्या किसी तरह भी तुम शुनःश्रेय को बन्धन-मुक्त नहीं  
कर सकते ?

श्रेयों व्यक्ति—नहीं हमारा काम तो इन्हें राजा के पास पहुँचाना  
मर है ।

बिम्बामित्र—(लोचकर जिन मंत्र से) अन्धका शुनःश्रेय, तुम बसो,  
मैं आता हूँ । इन्हें बाँधो मत ! ये स्वयं ही बसो बन्धेगी । मैं आता हूँ महर्षि

अमहमि के साथ, तुम बसो ।

[ सीनों जमे जाते हैं शुनःरोप चिन्ताता रहता है ]

शुनःरोप—मेरी रक्षा कौनियेगा देव ! मैं निरपराध हूँ ! (बला जाता है । धाबाब घाती चकती है)

विश्वामित्र—शुनःरोप अजीगर्त का मध्यम पुत्र, शुनःरोप अजीगर्त नराधम । मैं यह नर-बलि नहीं होने दूँगा । देवता ऐसा कभी नहीं चाहते ! देवता ऐसा कभी नहीं चाह सकते, हम सब ठनकी सम्मान हैं वे हमारे पिता हैं, जनक हैं, जनक पुत्र की हत्या नहीं चाहते । मैं ऐसा न होने दूँगा, यह मेरी परीक्षा का अवसर है । दूसरी परीक्षा—एक बार विश्वकु की मैं रक्षा कर लुद्ध हूँ, शुनःरोप, मैं तुम्हारे लिए प्राण दे दूँगा । नराधम अजीगर्त !

[ अजीगर्त का प्रवेश ]

अजीगर्त—हां ! (हा हा हा प्रवृत्तात करके) हां शुनःरोप अजीगर्त का पुत्र, इसक बदले मैं मुझे लो गायें लो मिलो हैं ।

विश्वामित्र—अजीगर्त, तुम को इस प्रकार अपने पुत्र को बेचते लगना नहीं चाहें ! तुम्हारा हृदय पुत्र की मृत्यु का ध्यान करके कट नहीं गया ! क्या तुम में मनुष्यत्व रह ही नहीं गया अजीगर्त !

अजीगर्त—ओ महर्षि विश्वामित्र, तुम हो । मुझे इसके बदले मैं लो गायें प्राप्त हुए हैं । मैं चिन्ता क्यों करूँ, मेरी कामनाएं पूर्ण होंगी । अगस्त्य के साथ का अन्त होगा, मैं धनी बनूँगा ।

विश्वामित्र—अगस्त्य का साथ ।

अजीगर्त—हां, मुझे महर्षि अगस्त्य ने साथ दिया था । उसी के कारण मैं निरीक्ष हर-हर भटकता फिरता हूँ । मुझे खेर भी अपने आश्रम में रहने नहीं देता, मुझे सम्भव से सब ने पतित कर दिया है ।

विश्वामित्र—तो कैसे ?

अजीगर्त—मैं भी महर्षि अगस्त्य का शिष्य हूँ विश्वामित्र ! एक बार विश्व के बाद मेरे पुत्र की मृत्यु हो गई । सोनामुद्रा ने मुझे आश्रम दी

कि मैं विश्वरथ की पत्नी उमा के पुत्र को उगा लाऊँ और उसके रथान पर अपने मृत पुत्र को रख दूँ, क्योंकि बका होने पर उमा का पुत्र आशों से अपने नाना का बहका लेगा, बिठे तपरिवार अगस्त्य ने आर काया था। सोपामुद्रा ने चाहा कि मैं वह पुत्र उसे दे दूँ, पर मैं ऐसा नहीं कर सका, तब मर्यादा ने मुझे उमा का स पति होने का हाथ दिया।

विश्वामित्र—(अपने धर्म तोड़ते हुए) तो क्या वह शुन-शेन मेरा ही पुत्र है, नहीं तुम झूठ कहते हो, उमा के पुत्र की मृत्यु मेरे सामने हुई थी।

मन्त्रीकृत—आपने अस्तिम समझ उसे नहीं देखा वह मेरा ही पुत्र था।

विश्वामित्र—(आश्चर्य से) वह मेरा पुत्र नहीं था क्या कह रहे हो तुम (नर्मकर बहर्ष) मेरा ही नाम विश्वरथ था, वह दुर्गै अत है।

मन्त्रीकृत—मुझे मालूम है, शबर गच्छत की कन्या उमा से विवाह कर लेने के कारण सब आर्य आप से नाराज हो गये थे, अगस्त्य श्रुति मी।

विश्वामित्र—हाँ मैं चाहता था कि आर्य-अनाथ दोनों परस्पर सहभावना से रहें। निस्व प्रीति का यह-कसह, पुत्र बन्ध हो। तब लोग सुखी हों, देश में सुख शांति रहे।

मन्त्रीकृत—आपके उमा के साथ विवाह करने के प्रस्ताव पर ही कितना नर्मकर विरोध सब लोगों की तरफ से हुआ, कोई भी वैदिक श्रुति नहीं चाहता था कि आर्य अनाथों का मित्रान हो।

विश्वामित्र—किन्तु अन्त में मुझे लजलता मिली, अन्त में मैं ही हो गई। सब आर्यजन अनाथों के साथ मिल-जुल कर रहने लगे।

मन्त्रीकृत—इसी कारण लोग आपको विश्वरथ से विश्वामित्र कहने लगे।

विश्वामित्र—हाँ सभी से मेरा नाम विश्वामित्र हुआ मैंने कम की बर्त-अनकल्या का भी विरोध किया। तब अन्त-अन्त श्रुति गाथि की कल्पान होते हुए मैं अन्त-अन्त का राक्षस त्यागकर मैंने सब किया और

श्राद्धना बना ।

अजीर्ण—आपके आबों-अनामों को मिलाने के प्रयत्नों से कौन अपरिचित है विश्वामित्र ?

विश्वामित्र—(सोचते हुए) तो वह शुन रोप मेरा ही पुत्र है ।

अजीर्ण—हां, तुम्हारा ही पुत्र, राक्षसी का पुत्र, इती से मैंने सी गायों के खोम से उसे बेच दिया है । वह तुम्हारा पुत्र है, उसे लुकाओ ।

विश्वामित्र—(सोचकर) एक व्यक्ति अपने पुत्र के मोह में दूसरे के पुत्र की बलि दे रहा है, दूसरा व्यक्ति पीरोहिरमवश अपने पुत्र की बलि देगा अजीर्ण ! तुम जा सकते हो ।

अजीर्ण—यदि तुम्हें शुन-रोप की बलि देने में कष्ट का अनुभव हो तो मुझ से गावें और देना । मैं उसे शूरा से बंधकर उसका यज्ञ काट कर अग्नि में अदा करूंगा ।

विश्वामित्र—एक पठित व्यक्ति से सब कुछ सम्भव है अजीर्ण !

अजीर्ण—जिसका समाज ने तिरस्कार किया है, जिसे कदा भी आश्रम में स्थान नहीं है, जो कई दिनों तक भूखा रहकर नर मांस भी खाने लगा है उससे तो इतसे अधिक की भी आशा की जा सकती है ।

विश्वामित्र—यदि तुम वह तुष्कर्म छोड़ दो तो मैं तुम्हें शाप-मुक्त कर सकता हूँ । वह अनाचार छोड़ दो तप करो ।

अजीर्ण—मैं पापों में गले तक डूब चुका हूँ, मुझे अब इती में सुल है ।

विश्वामित्र—तुम अथ भी सुपर सकते हो, परजाताप की अग्नि बड़ी पवित्र होती है अजीर्ण !

अजीर्ण—मुझे किसी अग्नि की आबरवकटा नहीं है । मरे स्त्री दे, पुत्र दे, बं भी मेरी तरह नर-मांस बड़े स्वाद से खा लेंगे हैं, फिर मुझे किस बात की चिन्ता है । अकृष्ण मैं यज्ञा मरे पाप तो गावें हैं, मैं बर्नी हो गया हूँ । ( जाता है )

विश्वामित्र—(सींचते हुए) यह भी एक दिन हमारे ही समाज का अंग था, विद्वान मंत्र-द्रष्टा, किन्तु हमने इतका त्याग करके, समाज से बहिष्कृत करके इसे पतित बना दिया और, आज इसे ध्यान मी नहीं है कि यह कभी वैदिक, तपस्वी शासक था। किन्तु क्या पतन है मनुष्य का। सुनो अश्वीमर्त, सुनो एक बार मेरी बात सुनते जाओ।

अश्वीमर्त—( दूर से ही उत्तर देता हुआ ) अश्वीमर्त के कानों में सींचा भर दिया गया है, विश्वामित्र ! वह इतना आगे बढ़कर पीछे नहीं लौट सकता। यदि तो गायें और देवों की श्रद्धा हो तो शून्यःशेष की बलि के लिए मुझे बुला लेना। ( चला जाता है )

विश्वामित्र—ठीक है तुम नहीं लौट सकते, तुम्हारा हृदय उठ पुत्र की तरफ है जो समाज के देरों-ठसे कुपले जाने पर फिर अपना रस नहीं पहचान कर सकता, किन्तु वह उस ब्रह्म की श्राद्ध तो बन सकता है, फिर उठते नये फल उग सकते हैं। क्या तुम मनुष्य नहीं बनोगे अश्वीमर्त ? ( वेच से चले जाते हैं )

[ यज्ञ भूमि में कोनाहूत । सब लोग बैठे हैं । नेपथ्य में ]

अमरवर्णि—आइये विश्वामित्र आज आप बहुत निश्चित दिक्कार दे रहे हैं। विश्वामित्र क्या कर रहा है ?

विश्वामित्र—शुनियर । मैंने सुना है, हरिश्चन्द्र इस यज्ञ में नर बलि दे रहा है !

अमरवर्णि—नर-बलि ! क्यों ?

विश्वामित्र—हरिश्चन्द्र ने पुत्र की कामना के लिए बन्धुदेव से कामना की थी कि पुत्र होने पर वह यज्ञ में अपने पुत्र की बलि देकर बन्धुदेव को प्रसन्न करेगा।

अमरवर्णि—किन्तु वह मैं बलि तो आशुओं की प्रथा नहीं है।

विश्वामित्र—अब उठने पुत्र के बदले में एक शासक पुत्रक की बलि के लिए चुना है।

बनरुनि—यह और भी अनुचित है, मैं उस पक्ष में भाग नहीं ले सकता, जिसमें नर-बलि दी जा रही हो। मुझे हरिश्चन्द्र का निमंत्रण स्वीकार नहीं है।

विरवामित्र—मैं इस पक्ष में केवल इसी उद्देश्य से जा रहा हूँ कि इस अभ्यर्थ प्रथा को रोकूँ। जो हम आ गये।

[ पक्ष-स्वस ने कोलाहल हो उठा है ]

अथास्य—राजा हरिश्चन्द्र, विरवामित्र तो अभी आये नहीं हैं।

अविरल—प्रथम तो प्रश्न यह है कि क्या आपने पुत्र रोहित की अपेक्षा आप और किसी प्राण्य की बलि देकर ब्रह्मदेव को प्रसन्न कर सकते हैं हरिश्चन्द्र ?

अथास्य—ऐसा कभी नहीं हुआ।

अविरल—मैं ऐसा पक्ष नहीं करा सकता, जिसमें प्रतिहात एक नर के बदले वृत्तरे की बलि दी जा रही हो।

हरिश्चन्द्र—मैं अपने पुत्र की बलि नहीं दे सकता। मैं उसके बिना एक क्षण भी अर्पित नहीं रह सकता, इसलिए यह मैंने निरन्तर किया है, आप पक्ष कराएँ अथास्य।

[ विरवामित्र का प्रवेश ]

विरवामित्र—इस पक्ष में नर-बलि का मैं पक्ष विरोध करता हूँ।

बनरुनि—मैं भी।

अथास्य—मैं इस पक्ष में हूँ कि यदि बलि ही बनी है तो राजा हरिश्चन्द्र अपने पुत्र की बलि दें, तभी देवता पक्ष-भाग स्वीकार करेंगे।

विरवामित्र—मैं किसी बलि के पक्ष में नहीं हूँ।

हरिश्चन्द्र—महर्षि, मैं आपकी बात मानता हूँ, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या देवता बिना बलि के प्रसन्न होंगे ? (श्रीधरणी का नाट्य)

विरवामित्र—नर-बलि अमानुषिक है, यह अपनाय आचरण है।

हरिश्चन्द्र—किन्तु मुझे तो देवता को प्रसन्न करना है। अपनी प्रतिहा पूरी करनी है, मुझे तो राय का पालन करना है, अतः आप इस



आप्त्य की बलि देकर बह करार्ये । विश्वामित्र महर्षि, मैं आपको यज्ञे  
बलिखा दूँगा ।

विश्वामित्र—बिना नर-बलि दिये देवता को प्रसन्न करना मेरा  
कार्य है ।

शुनश्लेष—मेरी रक्षा करो महर्षि, मैं निरपराध हूँ, पिता ने भन के  
लोभ से बलि के लिए बेच दिया है ।

हरिश्चन्द्र—ऋषि, मेरे यज्ञ की ऊँचा पूरा होनी चाहिए, जिससे मेरे  
सस्य की रक्षा हो सके, मेरा आग्रह है । बन्धु को प्रसन्न करने के लिए नर  
बलि देना आवश्यक है ।

अन्वास्य—अपने पुत्र की बलि दो तभी बन्धु प्रसन्न होंगे ।

विश्वामित्र—तुम यज्ञ प्रारम्भ करो अन्वास्य, मैं बन्धु को मन्त्रों द्वारा  
बुलाऊँगा, वे नर-बलि नहीं ले सकते ।

हरिश्चन्द्र—शुनश्लेष को बन्धु-वृक्ष से बाँध दो, यदि देवता चाहेंगे  
तो उसकी बलि ले आवगी । आहः धीरे कष्ट है ।

अन्वास्य—मैं शुनश्लेष को वृक्ष से बाँधने का विरोध करता हूँ, मैं  
यज्ञ नहीं कराऊँगा, यह आवश्यक है ।

विश्वामित्र—(क्रोध से) तुम हट जाओ मैं स्वयं यज्ञ कराऊँगा, मैं  
देवता को बलि के बिना प्रसन्न करूँगा, नर-बलि नहीं दूँगा ।

अन्वास्य—यज्ञ अपूर्ण होगा, देवता अप्रसन्न होंगे, और तुम्हारे ऊपर  
ब्रह्मदण्ड गिरेगा हरिश्चन्द्र । हम जाते हैं, यज्ञो अगिरस ।

विश्वामित्र—मैं स्वयं यज्ञ कराऊँगा, पर मैं अद्वैतिक अमानुषिक बह  
नहीं होने दूँगा, मैं इस यज्ञ का पुरोहित हूँ ।

हरिश्चन्द्र—मैं बन्धु को आवश्यक ब्राह्मण की बलि दूँगा, कोई शुन-  
श्लेष को वृक्ष से बाँध दे ।

ब्रह्मदण्ड—हम लोग किसी नर को वृक्ष से नहीं बाँध सकते, यह  
अनाय कर्म है ।

अजीर्ण—(सहसा प्रवेश करके) बहि मुझे सी गाये और दो, तो इसे खूब से बाँच वू।

[ कोलाहल ]

हरिश्चन्द्र—मैं सी गाये और वृगा, तुम अपने पुत्र को खूब से बाँच दो।

[ सब लोक नर-यज्ञ और भीष कहकर अजीर्ण को बिलकारते हैं ]

एक ध्वनि—पुत्र-पाठक, तुम्हें नरक में भी स्थान न मिलेगा।

ब्रह्मन्—पापी, नर-मांस-भक्षक ! ब्राह्मण-द्रोही ! अनार्य !

हरिश्चन्द्र—बाँधो अजीर्ण मैं सी गाये वृगा बाध दो।

अजीर्ण—( विश्वामित्र की ओर देखकर ) मैं पुत्र-पाठक नहीं हूँ

यह मेरा

हरिश्चन्द्र—बाँधो अजीर्ण, बरत में बिलंब हो रहा है, मेरे प्राण कष्ट में फूल रहे हैं, आः कितना कष्ट है।

सुमन्त्र—विश्वामित्र, तुमने मेरी रक्षा का बन्धन दिया था।

अजीर्ण—(हँसकर) अवश्य दिया होगा तुम रोष, क्योंकि, विश्वामित्र क्या करते हो, बोसो सी गाये मुझे देन की प्रतिज्ञा करते हो।

विश्वामित्र—(धुप)

अजीर्ण—बोसो विश्वामित्र, अभी समय है, सी गाये अधिक नहीं है, कबल सी, अम्बथा तुम्हारा

विश्वामित्र—(धुप)

सुमन्त्र—एक हरिश्चन्द्र है। जो अपने पुत्र की रक्षा के लिए वृमरे के पुत्र की बलि देने को तैयार है।

अजीर्ण—तुम-रोष, वृसरा भी पिता है जो अनार्य अमानुषिक ब्रह्म के पुत्र की रक्षा करना चाहता है। बोसो विश्वामित्र !

हरिश्चन्द्र—मूर्ख, यह अजीर्ण क्या कर रहा है ? मेरी कुटुम्बी तमभ मैं नहीं आया। अजीर्ण, तुम-रोष को खूब से बाँधकर सी गाये ले आओ। गाये बाहर काड़ी है, दैर मत करो।

अग्नीपति—मैं शुनःशेष को स्वयं से बांधे देता हूँ मुझे ली गावों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिए। शुनःशेष, बसो। (अग्नीपति शुनःशेष को स्वयं से बांधता है। शुनःशेष चिल्लाता है) शुनःशेष, तुम से अब भी मुझ में अन्धिका बस है, मैं आशा होने पर तेरा बंध भी कर सकता हूँ।

शुनःशेष—है पिता, भेटी रखा करो। (अग्नीपति कड़ककर स्वयं से बांधता है)

अग्नीपति—ते बंध गया, अब दू छूट नहीं सकता, अब बलि बनकर देवता को प्रसन्न कर, और स्वर्ग में जा। हरिश्चन्द्र भेटी गावें

हरिश्चन्द्र—गावें बाहर लड़ी हैं, लो जा जा।

[ विश्वामित्र धुक धमिलते-से जा रहे हैं जैसे किसी ने उन्हें बकड़ दिया हो। अमरवलि तथा अग्य लोग उनकी तरफ देख रहे हैं। ज्यपि बीरे-बीरे अंतर्गत लाम करके उड़ से उड़तर होते जा रहे हैं। ]

हरिश्चन्द्र—महर्षि विश्वामित्र, यज्ञ कराइये। मैं कष्ट से पीड़ित हूँ। बरुणदेव को प्रसन्न कीजिये।

अमरवलि—शुनःशेष को स्वयं से लोल हो, तमी यज्ञ होगा।

हरिश्चन्द्र—मैरा प्रबल मित्रक न कीजिये महर्षि। मैं कष्ट के मारे मरा जा रहा हूँ।

विश्वामित्र—मैं बिना बलि दिये ही बरुण को आवाहन करूंगा। अमरवलि, यज्ञ आरम्भ करो।

अमरवलि—(मंत्र पढ़कर कुपचाप) स्वाहा।

विश्वामित्र—इस में बरुण भुबी हव चाप मूहमस्तामवस्यु राचदे इति बरुणाय स्वाहा। बरुणदेव। मैं विश्वामित्र हरिश्चन्द्र-अमरवलि के बंध में आपका आवाहन करता हूँ। आप आकर यज्ञ का भाग ग्रहण करें।

अमरवलि—बरुणाय स्वाहा।

विश्वामित्र (घपेछाहल कठोर स्वर में) हे बरुणदेव, मैं विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के बंध में आपका आवाहन करता हूँ, आप आइये और यज्ञ-भाग लीजिये।

[ सब ब्राह्मण यज्ञकर्ता बार-बार मन्त्र पढ़कर स्वाहा करते हैं । कई बार यह भावुक्ति होती है ]

जमरन्नि—ब्रह्मदेव प्रसन्न नहीं हो रहे हैं विश्वामित्र महर्षि ।

[ फिर यज्ञकर्ता लोग मन्त्र पढ़कर स्वाहा-स्वाहा करके ब्रह्मण का आवाहन कर रहे हैं ]

विश्वामित्र—(धीरे भी कड़ोर स्वर में) मैं विश्वामित्र पुरोहित ब्रह्मण-देव को इस यज्ञ में भाग लेने के लिए आमन्त्रित करता हूँ । मैं आपसे, यज्ञ में भाग लेकर मेरे यज्ञमान का कल्याण करें, उसे कष्ट से उन्मुक्त करें ।

[ सब ब्राह्मण फिर पूर्वोक्त मंत्र मन्त्रपढ़कर स्वाहा-स्वाहा करते हैं । यह कार्य बार-बार क्रिया जाता है । ]

विश्वामित्र—ब्रह्मणदेव क्या मेरा पौरुहित्य असत्य है ? क्या आप नर-बलि ही सेवा करते हैं, यह अनार्य धर्म है, मैं आपको नर-बलि नहीं दूंगा, मैं विश्वामित्र गांधि का पुत्र हरिश्चन्द्र का पुरोहित आपको इस यज्ञ में भाग के लिए आवाहन करता हूँ । आप आइये और यज्ञ में भाग लेकर मेरे यज्ञमान का कष्ट पूरे ऋषिये ब्रह्मणदेव ! आइये ।

[ सब ब्राह्मण लोग फिर मन्त्र पढ़कर ब्रह्मणदेव का आवाहन करते हैं स्वाहा-स्वाहा कहते हैं ]

जमरन्नि—ब्रह्मणदेव अमसन्न हैं । महर्षे, उन्हें अपने लय-वस्तु से मुक्ताना होगा ।

विश्वामित्र—( जोर में गरकर ) आप बोलते क्यों नहीं हैं ? आते क्यों नहीं हैं ? मैं कुरावरोरुमन गांधि-पुत्र विश्वामित्र, इस यज्ञ के लिए आपसे मुखाता हूँ । आपसे आनन्द होगा । आइये, आइये आइये ब्रह्मण देव आइये । ऊँ ब्रह्मण्य स्वाहा । मन्त्र-माठ करो यज्ञकृताओ ।

[ ब्राह्मण लोग पूर्वोक्त मंत्र पढ़कर स्वाहा स्वाहा स्वाहा स्वाहा करते चले हैं । इसी समय बेजते हैं एक छाया आकाश से उतरती हुई दिखाई देती है, जो यज्ञ से दूर आकर स्थिर हो जाती है ]

छाया—विश्वामित्र, आम्ह मठ करो, मैं नर बलि लूंगा । हरिश्चन्द्र

ने प्रतिज्ञा की है, उसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने दो, सभी वह सब से बुरा सफ़ा है।

शुनःशेप—मेरी रक्षा करो, महर्षे, मैं निरपराध हूँ।

हरिश्चन्द्र—मैं नर-वश के लिए उद्यत हूँ, शुनःशेप रक्ष्य से बर्षा दिया गया है, देव प्रसन्न हों।

विश्वामित्र—मैं सतोगुणी देवता को नर-वश देना अनार्य कर्म मन्ता हूँ। मैं आपको नर-वश नहीं दूंगा, नहीं दूंगा।

आमा—तुम्हें नर-वश देनी होगी।

विश्वामित्र—क्या यह शुनःशेप बन्धुदेव की सन्तान नहीं है? क्या आप इसके पिता नहीं हैं, फिर कैसे एक पिता अपने पुत्र की वशि पावता है।

आमा—यह मेरी इच्छा है, किन्तु हरिश्चन्द्र को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी होगी।

हरिश्चन्द्र—मैं उद्यत हूँ देव, मेरा कष्ट बुरा कीजिये।

विश्वामित्र—देवाभिदेव, पहिले मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये। क्या मैं असत्य बंध रहा हूँ? क्या वैदिक विधान से यह कथाकर मैंने अनौचित्य किया है? मुझे विश्वास है आप बन्धु नहीं हैं कोई प्रसन्न राक्षसी राक्षि है। क्या आप मेरे इस पक्ष में नर-वश चाहते हैं? बोलो, बन्धुदेव, बोलो, उत्तर दो, यदि तुम बन्धु भी हो हो भी मैं तुम्हें नर-वश नहीं दूँगा, नहीं दूँगा। तुम बन्धु नहीं हो नहीं तुम बन्धु नहीं हो, कसे बंधो, नहीं मैं तुम्हें शाप देकर मध्य कर दूँगा।

अमरनि—(घट्टहास करके) यह बन्धु नहीं हैं। यही अरब है वह आपका न जाने कहां छुप हो गई?

विश्वामित्र—(घोर भी ध्वज कोष में डरकर) मैं केवल तपस्वी कौटिलिक विश्वामित्र और अन्तरिक्ष तथा अज्ञ-देवता देवाभिदेव बन्धुदेव का इस पक्ष के लिए आवाहन करता हूँ। बन्धु आप और मेरे द्वारा ही गद्द निराश्रित यह सामर्थ्य को ग्रहण करें। मन्त्र बोलो अमरनि!

( बसुन्दाय स्वाहा, बसुन्दाय स्वाहा ) मैं देख रहा हूँ, मेरे आवाहन-मन्त्र स्पर्श हो रहे हैं। क्या मुझे बसुन्दाय को अपने तपोबल से मुक्ताना होगा। साओ कुण्ड, मैं तपोबल से बसुन्दा को मुलाठा हूँ। ( तैज स्वर में ) मैं राम बंशी, कौशिक का प्रवीण, क्षीर कुशिक का पीत्र, तथा याचि का पुत्र, विश्वामित्र अपने सम्पूर्ण तपोबल से-

बसुन्दाय—(दूर से) ठहरो, ठहरो, विश्वामित्र ! मैं आ गया। मैं आ गया। ( आकाशवाणी होती है )

कमलिन—बसुन्दाय स्वाहा। आहा, बसुन्दाय आ गये ! अग्नि की लपटें आकाश को छूने लगीं।

[ अग्नि प्रज्वलित हो पड़ती है ]

बसुन्दाय—विश्वामित्र, मैं तुम्हारी बी गईं बलि का चर्पं प्रहय करता हूँ।

विश्वामित्र—देव, विश्वामित्र आपकी प्रशाम करता है।

बसुन्दाय—शुनःरोप, तुम मुक्त हो। हरिश्चन्द्र, तुम निर्बल हो। विश्वामित्र, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। नर-बलि अमुक्त कर्म है, मैं केवल तुम्हारी परोक्षा से रहा था। तुम बरतुत विश्वामित्र हो, मुझे नर-बलि नहीं चाहिए।

तब बाहुराज—अप हो बसुन्दाय !

विश्वामित्र—महारज, मेरे यजमान का रोग दूर होना चाहिए।

बसुन्दाय—(कोप से) हरिश्चन्द्र स्वार्थी है। अनोप्य है। अतस्य काटी है !

हरिश्चन्द्र—ओह मैं कष्ट से मरा जा रहा हूँ। नाच ! मेरी रक्षा करो ! रक्षा करो नाच ! विश्वामित्र !

विश्वामित्र—इत बड़ द्वारा आपका आवाहन केवल उसकी रोग मुक्ति के लिए या वह नीरोग होना चाहिए। मैं आपस प्रार्थना करता हूँ, आप पुत्र हैं, बोकिये।

बसुन्दाय—(अप)

अपवर्णि—बह क्या अग्नि शांति हो गई ?

विश्वामित्र—मैं कौटिक विश्वामित्र, अपने ब्रह्माम की ब्रह्मदेव से शीघ्र-मुक्ति की कामना करके फिर उनके आवाहन करता हूँ। हरिश्चन्द्र नीरोग हो, ब्रह्मदेव पुनः प्रगट होकर अपना भाग लें और मेरे ब्रह्माम को नीरोग करें। ब्रह्मदेव स्वाहा।

[ सब आवाजें फिर मंत्र द्वारा स्वाहा-स्वाहा करते हैं ]

हरिश्चन्द्र—मैं नीरोग हो रहा हूँ विश्वामित्र। मेरा कष्ट दूर हो रहा है।

[ आकाशवाणी होती है—बिल विश्वामित्र के द्वारा हरिश्चन्द्र नीरोग हो रहा है, उसी के ज्येष्ठ से हरिश्चन्द्र की तप की बलिदान और उसके पुत्र रोहित की मृत्यु होगी। विश्वामित्र, आग्रह मत करो। ]

अजीर्त—(सहसा प्रवेष्ट करके) अतो, शुनःशोपःअतो। अथ मैं तुम्हें और कहीं बेचकर बन पाऊँगा।

शुनःशोप—मैं नहीं आऊँगा। तुम मेरे पिता नहीं हो।

अजीर्त—मुझ, तुम्हें बात नहीं है मैं तेरा पिता हूँ। मुझे तेरे शरीर पर पूर्ण अधिकार है।

शुनःशोप—मैं तुम्हारे तप नहीं आऊँगा, पुत्र-वाली पिता। महर्षि ने मुझे प्राण-दान किया है, मैं उसी की सेवा करूँगा, वे ही मेरे पिता हैं।

अजीर्त—इसुनी उमा के पुत्र, शरावम (बला जाता है)

इसी समय सम्पूर्ण समा में—

पहला—क्या कहा ?

दूसरा—इसुनी उमा के पुत्र।

तीसरा—शंकर की कन्या का पुत्र।

चौथा—विश्वरथ का पुत्र।

पाँचवाँ—विश्वामित्र का पुत्र।

छठा—बह अजीर्त का पुत्र नहीं है।

सतवा—वह ब्राह्मण नहीं है !

पुत्रा—राघव !

दुसरा—राघव !

तीसरा—अनार्य !

[ इस तरह की घाथाओं उठती हैं ]

विरवामित्र—अधीगर्त करता है, अपन मृत पुत्र के बदले में लोपा मुद्रा के करने से इसने उमा के पुत्र को उठा लिया। उमा ने अपन पुत्र को मरा करके बलिप क्रिया। यदि ऐसा है तो यह मेरा पुत्र है। मैं आर्यों अनाथों के मिलनस्वल्प इसको पुन स्वीकार करता हूँ।

हरिश्चन्द्र—मैं आर्यों के इस प्रकार मिलने के पक्ष में नहीं हूँ। पुरोहित बलिष्ठ ठीक कर रहे थे। मैं विरवामित्र का पुरोहित-पद से त्याग करता हूँ।

[ कोलाहल होता है—विरवामित्र अनार्य हैं अनार्य हैं त्याग दें इनका त्याग करो सामाजिक बहिष्कार करो त्याग दो, विरवामित्र तुम बापी ही अनार्य हो अंधक हो निम्नजीय हो। ]

विरवामित्र—( आकाश की तरफ देखते रहते हैं )

[ सहुता लोपामुद्रा का प्रवेश ]

[ कोलाहल—देवी लोपामुद्रा देवी लोपामुद्रा, अपत्य की पत्नी विरवामित्र का सामाजिक बहिष्कार करो कोलाहल बढ़ता जाता है धरे बमबती लोपामुद्रा धार । ]

लोपामुद्रा—तन्म जनो, विश्वरय ही विरवामित्र हैं, इन्होंने तर करके देवों का दहन किया है, ब्रह्म-विधान बनाये हैं, हमारे समाज की अनार्य कदियों क प्रति विद्रोह करके उन्हें प्राणवान् बनाया है। हम लोग उन्हें अपना नेता मानते हैं और आर्य-अनाथों को मिलाकर स्नेह बढ़ाने में जो प्रयत्न उन्होंने किये हैं, उनसे आज तन्मर्या उधर प्रवेश में आर्य-अनाथ दोनों क प्रममाजन हो उठे हैं। देवता उत्र पर प्रहमन हैं, मैं विरवामित्र का सहज अमिन्धन करती हूँ। विरवामित्र, तुम मरान् हो !



विश्वामित्र—मैंने जो उद्देश्य दिखर किया है। मैं उस पर आजीवन चलता रहूँगा, कोई शक्ति मुझे उस-यक से विचलित नहीं कर सकती। मैं सत्पत्न्यस्य ईश्वर में विश्वास करता हूँ।

सोपामुद्रा—तुम जन्म हो।

हरिद्वक्त्र—विश्वामित्र, छोड़ मेरे साथ विश्वासपात किया।

विश्वामित्र—राजन्, मैंने नर-वस्त्रि न देखर मी अपने कल से बबक को प्रकल्पन किया और तुम्हें रोम-मुक्त किया। तुमने अज्ञानवश बिल अदिक पश्यि का आचरक किया उसमें मैंने संशोकन करके उसे वैदिक बनाया।

जमदग्नि—विश्वामित्र आप मरान् हैं।

विश्वामित्र—इस्युनी उमा के पुत्र, मैं सात्विक वृत्ति मंत्र-ब्रह्म होन की इच्छा के कारण शुनःश्रेय को मैं ब्राह्मण मानता हूँ और अजीगर्त को अजमाचरक के कारण राज, नरमही राजत। मैं जन्म से न किसी को ब्राह्मण मानता हूँ, न क्षत्रिय, न वैश्य, न शूद्र। कर्म से ही वह ब्राह्मण एवं राज बनते हैं। आचरक ही मरान् है, अनाचरक ही पतन का कारण।

सोपामुद्रा—विश्वामित्र, तम जन्म हो। तुम्हीं ने हमारे समाज में नवजीवन दिया है।

विश्वामित्र—प्रभो, मुझ में कल हो, मैं संसार को एक समान मरान् मानता हूँ—

“हृतेहर्ष इषा मित्रस्य मा बलुसा तर्वालि धृतादि क्षत्रीक्षत्राम् ।  
मित्रस्यार्थं बलुसा तर्वालि मृतादि क्षत्रीक्षेत्रे मित्ररमाहं बलुसा तमीक्षामहे”  
बल्लो वैशि, ब्राम्हमिग शुनःश्रेय, अभी हमारा कार्य शेष है।

[ विश्वामित्र के नीचे जमदग्नि, सोपामुद्रा, धूमवत्य इती रूप्य कल मत्र का पाठ करते बने बसे हैं। दूर तक आवाज धरती रहती है। ]

विश्वामित्र की जन्म हो।

विश्वामित्र की जन्म हो।

# शशिलेखा

( मध्य युग का एक चित्र )

## पात्र-परिचय

विनोदबचन

भिक्षु कौम्बिन्ध्यायन

प्रद्यम्न सेनापति

विमूर्ति

शशिलेखा

मञ्जुला

शाही प्रहरी घासि

[ प्राचीन काल में सम्वत् १००० का एक काल ]

[ एक रमली जिसकी बगल लगभग बाईस बरस और बरस बीस बरस की प्रतिमा, विद्यास वर्पल के सम्पन्न भूमिदार प्रसाधन में थी। रमली शशिलेखा पट्टिका पर बैठी है। सम्पन्न वर्पल में उसकी प्रतिवृत्ति लक्षित हो रही है। एक शाही उसके भूमिदार के लिए कपोलों पर सोमरेषु बुरकती है। दूसरी मस्तक तथा मुख पर बिजक पात्र से विष्णु देवाएँ एवं बिज निर्मात्र कर रही है। पहली शाही साम्राज्य ही बीरे-पीरे पंजा करके लड़ाने लगी। इसी समय एक और शाही प्रसाधन-वर्षिका से एनमाता निकालकर कण्ठ से रत्नहार, कजर में स्वयं-करघनी, पैरों में बड़ा-पैरानी नूपुर कुण्डल घासि पहनाती है। उसी काल में एक और शाही बीरता लेकर शहर-संघान कर रही है। रमली शशिलेखा सम्पन्न होकर शहर के उतार बड़ाव पर शरीर को हिलाती है। उसके पैरों की

गति बतलाती है कि अश्विनेजा बीला-बाबल की बलि के प्रसंग पर शरीर भंगिमा बिखा रही है किन्तु शृंगार-प्रस्तापन एवं अपने अतिमत्त सौन्दर्य के प्रति किसी बुरे धाया वर्णन में प्रतिबिम्बित हो रही है उससे भी बेखबर नहीं है। यथानियम शृंगार के बाद एक दासी स्वर्ण-यात्र में मग्न नाकर अश्विनेजा को बैठी है। अश्विनेजा मद-पान करती है और उसकी विकृतता के प्रसंग के साथ ही उसके शरीर को आनिमा एवं नेत्रों में मद-संचार होने लगता है। बीला बराबर बग रही है। प्रस्तापन समाप्त होता है। अश्विनेजा बड़े उपपान का बहारा लेकर बीला-बाबल चुनती रहती है। एक दासी पीछे काड़ी होकर पंखा भजती है। (समय—सायंकाल) कला में बहुत प्रकार के चित्र हैं जिनमें कुछ तम मूर्तियाँ भी हैं कुछ तैल चित्र भी जित्तियों पर लटक रहे हैं। छोटे-छोटे काष्ठफलकों पर पक्ष स्तम्भ रखे हैं कस्तूरी सुवासित घणवचन्य से साथ बस्तावरल प्रकृम्बित एवं मारक हो उठा है। कला काठी बिसाल विविध प्रकार के घासलों से मुक्त तथा सुवचि-सम्पन्न है। कला को देखने से अल होता है यहाँ कई प्रकार के उच्च मनुष्यों का आवागमन होता रहता है। अश्विनेजा नृत्य-संबोध-कला में निपुण महाराज किमोदबर्बर के दरबार की पायिका है। आज उसे महाराज के निमंत्रण पर रस को नृत्य के लिए जाना है इसीलिए यह सन्धरतर शृंगार का आयोजन हो रहा है।]

अश्विनेजा—(मुँह उठाकर एक और मद-यात्र लाने का आदेश देती है तथा ललसीन होकर वर्णन बेखाने लगती है) मंजुले !

मंजुला—(बीला-बाबल रोककर) आजा देवी !

अश्विनेजा—आज मुझे राज-दरबार में नृत्य के लिए जाना है न ?

मंजुला—( बीला रखकर पास जाती हुई ) क्या इतने मी सन्देश है !

अश्विनेजा—किन्तु उल्लाह नहीं हो रहा है, मंजुले !

मंजुला—राजादा है न, महाराज का अनुरोध

[ इसी समय एक दासी मद-यात्र लाकर बैठी है। अश्विनेजा पीकर ]

राशिसेखा—और मैं अनुरोध क्या है। माशों का अनुरोध क्या है, वह भिक्षु ?

मंजुला—पाप से बला नहीं मिच्छता देवि !

राशिसेखा—तू मूलती है, मदी की धार को बदलना होगा, वह भिक्षु मुझे मिलना चाहिए, मैं उसे नहीं त्याग सकती।

मंजुला—वदि ऐसा हो सकता

राशिसेखा—ऐसा ही होगा। मेरे प्रयोग में कमी थी, मैंने उसे बेमब से तुमाना चाहा, प्रेम से नहीं, लौन्दर्य से नहीं, वाचना से नहीं।

मंजुला—क्या आपको विश्वास है ?

राशिसेखा—हाँ मंजुला, मैं विश्वास करती हूँ मैं उसके पा सकूँगी, वह मेरा है।

मंजुला—किन्तु वह तो भिक्षु है, क्या राज दरबार की मठकी को एक लक्षरस, बेमब-हीन भिक्षु से प्रेम याचना करनी उचित है ?

राशिसेखा—प्रेम भिक्षु और राजा नहीं देलता। रूप का नाश भिक्षु बन में सबसे अधिक विघात होता है, क्या तू नहीं जानती ? आज मैं उसी के अग्रतिष्ठ लौन्दर्य की उपासिका हूँ।

मंजुला—क्या वह राज-दरबार के सभी पुरुषों से मुन्दर है ?

राशिसेखा—हाँ मंजुला, तू नहीं जानती। उस दिन उसके मुल राज लया में सबसे अधिक दीपितकन, सबसे अधिक निष्कण्ट, सबसे अधिक म्मेला और सबसे अधिक उद्दाम बीजन का पात्र बना हुआ था।

मंजुला—आश्चर्य है। महाराज के सामने भी --

राशिसेखा—(पयक से उठकर पुष्प-मुष्प उठा लेती है कभी उसे बूझती है कभी उसके रंग से बपल के सामने धरने रंग की तुलना करती है) वारी सभा उसके सामने ऐसे लय रही थी जैसे बीजन के सामने प्रौदल, महाराज स्वयं उसके अभिभूत थे। विहासन पर बैठे हुए भी वे एम लय रहे थे जैसे उसके आका पाकर अनन को धन्य लमभन के लिए उलुक हों।

मंजुला—अब सब वे कोई महारथ्य होंगे और महारथ्यों को बरा में क्रमा उचित नहीं है देवी ।

समितैसा—(अपनी बुन में) मैंने देखा, उनके प्रवेश करते ही महाराज सिंहासन से उठकर उनके होने के लिए आगे बढ़े और अपने पाठ ही उन्हें स्थान दिया । मानों राजसभा में एक भूकम्प आ गया हो । मेरे पैर रुक गये, नृत्य रुक हो गया, संगीत की ध्वनि मूक हो गई, उठ मोहक मूल ने मेरी तरफ एक तीव्र किन्तु मादक दृष्टि डाली, मनों कामन्धेय ने अणुम-बेह करण कर लिया हो ।

मंजुला—इतना रूप तो साधारण पुरुषों में सम्भव नहीं है, अब सब वे कोई असाधारण होंगे । कोई राजकुमार होंगे ।

समितैसा—(जती बुन में) उन्होंने सम्पूर्ण समा तथा स्वयं म्हा राजी पर प्रथम दृष्टि डाली । फिर मुझे से बहुत देर तक देखते रहे, मेरी आँखें संकोच और लज्जा से मुक गई । मैंने देखा, महारानी तथा उनके शक्तिर्षी कमी-कमी ऊँची दृष्टि उठाकर उस मित्रु की सम-मुखा का पान कर रही थी । और स्वयं (बक जाती है) मैं नहीं जान सकी कि मुझे क्या होम लगा मैं बरबस उद्य देखती रही ।

मंजुला—तो क्या महाराजा ने यह सब नहीं देखा ? राजसभा के लोगों और उठ तेजस्वी सेनापति ने कुछ नहीं कहा ?

समितैसा—(पुष्प-मुण्ड से एक कूल निकालकर उसे लुंकर हृदय से लपकती हुई) अम्हा के सम्भन गौर बर्ष, स्त्रिक की तरफ अमच्छता हुआ मल्लक, तुय के सागर-सी मादक, नीलाअण्ड में वारक-सी अमच्छती विद्याल आँखें, वह क्या मूलने वाली आदृष्टि है । पलकी नासिक्य बन्धिम मंगी रक्षिम अबर और उन सब के ऊपर सम्भीर तन्वर्षीनी मुक्यदृष्टि (बूझकर मंजुला के सामने होकर) नहीं मैं उनके बिना नहीं रह सकती, मुझे उन्हें पाना होगा । समितैसा के जीवन में अम्यप्य कमी नहीं आया ।

मंजुला—किन्तु

शरित्सेखा—किन्तु परन्तु कुछ भी नहीं! (तिन्नी से) मेरा यौवन, मेरी साकल्यार्थ व्यर्थ होना नहीं चाहती। (व्यथता से) मेरे रूप ने हारना नहीं चाहा। मेरा सौन्दर्य परास्त होने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ है मंजुले!

मंजुला—किन्तु वह क्या ठीक है?

शरित्सेखा—हाँ, उसे ठीक होना होगा। मैं जाऊँगी, उनके पास जाऊँगी, मैं यैनक्ष की तरह उस विश्वामित्र का रूप भंग करूँगी।

मंजुला—महाराज

शरित्सेखा—मुझे कोई नहीं रोक सकता महाराज भी नहीं। मैं पीछे लौटना नहीं जानती, मैं अभी ब्याऊँगी। मेरा रूप तैयार हो। आपको परिवारिक से कहो। (ब्यासती है)

[ एक परिवारिका का प्रवेश ]

परिवारिका—देवि कोशियुत्र व सुजीव द्वार पर बहन की प्रतीक्षा में प्रवेश की आशा चाहते हैं।

शरित्सेखा—(तत्काल) जा कह दे, अभी मैं किसी से नहीं मिल सकती। मैं स्वल्प नहीं हूँ।

परिवारिका—(जाती है) ओ आशा!

शरित्सेखा—देखा तुम्हें मंजुला, वह वसुजीव मेरे सौन्दर्य की भूल से संवस्य बेमन मेरे पैरों पर लुप्त देना चाहता।

परिवारिका—(सीवहर) देवि, वे आपसे अस्वास्थ्य का समाचार पाकर मगर के प्रतिद्वेष की बुलाने की आशा चाहते हैं।

शरित्सेखा—नहीं, कोई आश्चर्यकता नहीं है। जा लीजें उसे।

मंजुला—वह महाराज का प्रिय मामन है।

शरित्सेखा—मैं आज नश्य करने नहीं जाऊँगी, राजवत्ता मेरे शिर पर नहीं है। मैं मिलुषी बनूँगी, मंजुले!

[ परिवारिका लौटती है ]

मंजुला—यदि आशा हो तो वसुजीव की दूधरे कक्ष में रिताऊँ। आपका मन स्वल्प नहीं है। विद्याम करें तब तक।

अशिलेखा—आज मेरे कप में कोई भी प्रियेय नहीं कर सकता ।  
स्वयं महाराज भी नहीं ।

[ मञ्जुला सुन्न-सी रहकर ]

मञ्जुला—हम उनकी प्रजा हैं देवी ।

अशिलेखा—वे मेरे रूप के मिश्रारी हैं, मेरे संकेतों के शक्त हैं, किन्तु  
मे उक्त मिश्रु को पाना चाहती हूँ जिसने संसार को स्थिर-स्थिर कर  
हाला है वही मेरे जीवन का पात्र है । (ताली बजाकर) रथ तैयार हो ।  
(वरिधारिका आजा पाकर फिर बली जाती है । अशिलेखा वर्षण के सामने  
जाड़ी होकर अपने कप बदलती न समझती हुई बालों की ठीक करती है ।  
कञ्चुक संभालती है) मिश्रुक, मे हृदय का आसन तुम्हें बिलाने को आ  
रही हूँ । जीवन की उद्दाम शरिता में तुम्हें लीन स्नान करा देने को प्राय  
सम्पन्न कर रही हूँ । तुम्हें निरुक्त मत्त करना, हाँ । तारी सोन्दर्य का  
प्रतीक है तुमने स्वर्ण का एक आभारम मिश्रुक प्रेम को पान में जीवन  
केसे परम अमूर्त रत्न को स्वर्ण किया है । मैं तुम्हारे रूप की आत्मा  
की मिश्रारिण हूँ, मिश्रुक, लो मेरे जीवन का शान लो । मेरे सोन्दर्य का  
पान करा ।

वरिधारिका—रथ तैयार है देवि ।

मञ्जुला—क्या मैं भी आपके साथ चली ?

अशिलेखा—नहीं, मैं अकेली जाऊँगी । वह मेरे प्रेम की सम्पत्ति में  
मग्न होगा । लोचन के पावन पुष्पों पर मैं जाकर सोन्दर्य की शरिता  
ठंडेल दूँगी । मैं अकेली जाऊँगी वही रह ।

मञ्जुला—तुना है वे बहुत निर्जन स्थान में रहते हैं, आपका अकेले  
उक्त स्थान पर जाना

अशिलेखा—वे मेरे हृदय में हैं, मेरे साथ हैं, उनकी प्रतिमा मेरा  
माय-दशन करेगी मञ्जुले ! मैं जाती हूँ ।

मञ्जुला—उक्त भाव्य प्रतिम दिस कन्तु बाले वन में अकेली

अशिलेखा—वेम यह सब कुछ भी नहीं हैलथा, मैं जानती हूँ । वे तपस्वी

हैं निरीह हैं किन्तु वे मेरे प्रेम को नहीं टुट्टा सकते। मैंने अपने प्रेम को टुट्टा देने वाला प्राण एक कोई व्यक्ति नहीं देखा। यद्यपि मैंने अभी तक किसी से प्रेम नहीं किया है, फिर भी मेरे रूप की शक्ति, उसकी ओढ़कता प्रसन्न है, प्रिय है, मैं जाती हूँ। अपने हृदय की मँड लोकर मैं जाऊँगी। मैं रुक नहीं सकती, जैसे वह तपस्वी मुझे बुला रहा है, मैं नहीं दक सकती मंजुला ! (एक वय बाहर जाती है। मंजुला उसके मार्ग की मोर मुह करके देखती रहती है धीरे तक एक देखती रहती है जब तक उसके पंरों की प्रबलि बुलाई जाती है )

मंजुला—देवी शशिसेला का वह रूप तो कभी देखा न था। मालूम होता था जैसे हृदय की गति लोक देने वाला एक प्रखरन उनके रोमनाम से उठ रहा है, बाकी में हृदय के पवत स्वर मरते जा रहे हैं, उसका निरूप्य जैसे जाने वाली लम्बी बिन्नों को पीसकर धूर-धूर कर डालेगा। उनका मुख पर शोक, आश्रित, उन्माद की एक अमिद आभा अलस हो उठी है किन्तु किन्तु मुझे विरहास नहीं होता जैसे मुझे इसमें मन्व्य की मपंकरता-करता का आमास मिला रहा है। मुना है, महाराज इन पर रहने मुग्य हैं कि यदि शशिसेला जाहे तो राज्य भी समर्पित करन को तैयार है। किन्तु वह नहीं उनसे विमुख है, कहती है, प्रेम का सम्बन्ध हरय है, बाह्याम्बरस नहीं। मुझे क्या, अब ता देवी शशिसेला को करोती बही देखना होगा। बही चाहना होगा। ( बैठ जाती है मुग्य वादक त्रिमूर्ति का प्रवेश )

त्रिमूर्ति—मजुसे, क्या देवी नहीं है ?

मंजुला—नहीं, बही बाहर पारं है। करो क्या समाचार है त्रिमूर्ति ?

त्रिमूर्ति—समाचार अण्डे नहीं है। गाविका कुम्हलपरा ने देवी शशिदेवी के विरह महाराज क कान भरे द, उतने कहा है कि वह (देवी) अमिदम्बर पर मुग्य है। वह उसी के साथ भाग जाना चाहती है।

मंजुला—त्रिमूर्ति, क्या वह रहे हो ?



त्रिभूति—मैं अतएव क्यों बोलूँगा, मंजुसे !

मंजुला—उसे कैसे अत हुआ कि देवी भिक्षु कौशिकम्बावन पर मुग्ध हैं ?

त्रिभूति—क्या जानूँ, मैं तो अभी कुन्तलकेराव की परिचारिका से झुलकर आ रहा हूँ, क्या यह अतएव है ?

मंजुला—(अचम आनन्द में) कभी दुःखट्या हो रही है। त्रिभूति, क्या जाने क्या हो ?

त्रिभूति—(तरल भाव में) क्या ऐसी कुछ बात है, मैंने तो अस्ति मटककर हाथ दिखाकर बात करन वाली नन्दिनी परिचारिका से सुना और उन्हें सुना दिया। सुना है महाराज को भी समाचार मिल चुका है।

मंजुला—क्या महाराज ने भी सुना ? क्या वे यह नहीं जानते कि कुन्तलकेराव केवल उन्हें देवी शशिसेवा के अर्घ्य विरक्ति उत्सव करने के लिए ही यह सब अर्पण रख रही है ? निरक्षरी प्रतिबोधिता के समस्त महाराज से स्वयं देवी को प्रथम पुरस्कृत किया जा। तभी उन्हें यह बात हो गया कि उस गायिका ने महाराज की दृष्टि से उन्हें मिराने के किये प्रयत्न किये थे। वह उनसे ईर्ष्या करती है।

त्रिभूति—किन्तु वह तो तब है कि वे भिक्षु कौशिकम्बावन पर आसक्त हैं, वे उनके साथ माग जाना चाहती हैं। सम्भव है इन्हीं समय को लेकर उसने महाराज को यह कहा हो।

मंजुला—तुम बता सकते हो उस गायिका के अतिरिक्त महाराज के साथ और कौन था ?

त्रिभूति—सेनापति प्रद्युम्न, महाराज अत समय प्रसन्नोत्सव में वीर सेनापति के साथ राजनीति की बधा कर रहे थे कि किसी तरह यह गायिका बहा पहुँच गई।

मंजुला—सेनापति प्रद्युम्न, प्रद्युम्न ! वह खोजरही वीर, तुम्हें त्रिभूति, क्या तुम सेनापति से मेरे मित्राने की व्यवस्था कर सकते हो ? मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।

## शशिसेला

त्रिमूर्ति—सेनापति को मैं कहा पा सकता हूँ मनुला ! नहीं, वहाँ  
 तैनिङ्क लङ्ग लिये क्या मंजुसे है। मैं ठहरा साधारण मूर्दाग-बादक।

मंजुला—यह बहुत अशुभ समाचार है त्रिमूर्ति ! मुझे भीर प्रशुम्न  
 से इसी समय मिलना होगा, म तुम्हारे साथ चलींगी।

त्रिमूर्ति—किन्तु मैं तुम्हें कहा तो बाऊँ मंजुसे, मैं सरलबादक किसी  
 ! लङ्ग वान्न और मैं अशुद्ध, तुम तेवार हो। मैं अभी आवा।  
 (उठता है। इसी समय परिचारिका प्रवेश करती है और सेनापति के आने  
 की सूचना देती है। त्रिमूर्ति हठ खाता है। परिचारिका सेनापति को लेकर  
 प्रवेश करती है। मंजुला खड़ी होकर सेनापति का अभिवादन करती है।)

सेनापति—बेटो मंजुसे (इपर-उपर देखकर) क्या सुना क्यों है !  
 क्या शशिसेला नहीं है ?

मंजुला—आप बैठिये तो क्या देवी शशिसेला के अभाव में आपका  
 आयमन यहाँ नहीं हो सकता है ? (उसके पास बैठ जाती है तानी बजा  
 कर) मद-यात्र ला दासी !

सेनापति—मंजुसे, क्या तुम बता सकती हो शशिसेला कहाँ है ?

मंजुला—देवी का नृत्य तो रात को है न ?

सेनापति—किन्तु मुझे अभी उनसे मिलना होगा। मैं जानता हूँ।  
 (दासी मद-यात्र से रत्न-यात्र में मद उँडेलकर देती है। सेनापति पीकर)  
 मैं जानता हूँ (पीठ बादकर) एक घोर हो मनुला, तुम्हारा यह आरूराण्य,  
 (मंजुला की घोर देखकर) आज तुम कितनी सुन्दर लग रही हो मंजुसे !

मंजुला—(सेनापति की आँखों में आँसू डालकर मूककरती हुई)  
 क्या लक्ष्मण यह दासी (सेनापति के उत्तरोप का घोर पकड़कर)  
 आनन्दे कुछ सुनाऊँ ?

सेनापति—( एक घोर मद-यात्र पीकर ) तुम जानती हो महाराज  
 शशिसेला पर मुग्ध हैं।

मंजुला—जी, महाराज की हया है।

सेनापति—किन्तु आज महाराज बहुत बेचैन हैं। शशिसेला, तुना

है, महाराज के गुरु मधुसूत श्रीविष्णुनाथन पर आठक हो उठी है, यही कामने के लिए मुझे महाराज ने भेजा है।

संबुजा—वह झूठ है।

सेनापति—तो तब क्या है ?

संबुजा—देवी शक्तिसेना उठ मिथु के प्रति आठक नहीं है, वह इतना ही।

सेनापति—(उत्कण्ठकर) क्या ?

संबुजा—यह आप जानें।

सेनापति—तो कुन्तलकेला का आरोप क्या है ?

संबुजा—यह सब आपका काम है।

सेनापति—नहीं संबुजा, ठीक बताओ महाराज बहुत डुली हैं, उनकी दृष्टि में दो ही स्वर्णियों का आकाश है एक देवी शक्तिसेना और दूसरे श्रीविष्णुनाथन। पहली सौन्दर्य की ओर दूसरी शक्ति की आधिपत्याधी। दोनों स्वर्णों के दो द्वार हैं, दोनों महान्, दोनों जीवनमय।

संबुजा—तो महाराज शक्तिसेना के प्रति आठक हैं ?

सेनापति—वे उसे छोड़ नहीं सकते। उन्हें दिखाई देता है शक्तिसेना को छोड़ देने पर वे कर्मबिह्वल होकर नहीं रह सकेंगे। नर्तकी शक्तिसेना उनकी दृष्टि में उठ मर के समान है जो उन्हें जीवन में स्फूर्ति देती है, यदि देती है। उसके अभाव में बंजरग होकर वे संसार त्याग कर सकते हैं।

संबुजा—आप कैसे जानते हैं ?

सेनापति—इस छिपी-सी बात को जानने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। अन्तःपुर में महाराज के इस आचरण के प्रति और कुछ स्पष्ट है। और मुझना चाहती हो ?

संबुजा—यदि मुझसे कहने योग्य हो तो कहिये मैं सुनूंगी।

सेनापति—शुभ संचार है, महाराज शक्तिसेना से विवाह करना चाहते हैं। वह नर्तकी होते हुए भी

बंजुना—(प्रसन्नता बहाकर) शरितोला भी निश्चय है समाप्ति ।  
(एकदम उनकी मोड़ में फिर पड़ती है ।)

सेनापति—हाँ मिले, (सेनापति बंजुना के मास्तक पर हाथ करते हैं)  
मैं जाता हूँ । शरितोला को सूचना देना, श्रीविद्ययायन की अपेक्षा इतर  
का उभय महान् है । ( जाता है । )

[ प्रसन्न-प्रसन्न शिरा-भूषा में शरितोला प्रवेश करती है । उसके नेत्रों  
से शक्ति-ज्वाला पठ रही है, शरीर काँप रहा है । शक्तिवाँ जैसे बहकर  
जिस जगती हूँ, केवल बंजुना कुछ दूरी पर खड़ी शरितोला की घोर  
देखती खड़ी है निश्चय । ]

शरितोला—(घपने ही ध्यान में खड़ी हैरत जब खड़े के बाद । इस  
तकप हीसे तेजी से चल रही है) उसने मेरा विरस्कार किया । मेरे जीवन  
म विरस्कार किया । ( बीरे-बीरे स्वर बहता जाता है । ) मेरे शीन्द्य  
म विरस्कार किया, मेरे उद्दाम आत्मसमर्पण क नीचे लाठी हुए  
अभिज्ञानों को उच्छ्वसन मुझे निकाल दिया । मुझे नहीं मालूम  
था, इत शान्त मुद्रा में जीवन के प्रति, शीन्द्य की निष्ठा क प्रति इतनी  
पूजा क्षिती है । घोर कृपा, मैंने आज तक जो पाया वह मुझ मिता ।  
मेघ पादा जैसे उसे फेंक दिया, मरता दिया, किन्तु इत व्यक्ति न शीन्द्य  
की पवित्री में जिलाती हुई अमृतकन्दारिणी की मुशकित मकरन्द माला की  
घोर एक बार दृष्टि मरकर देला भी नहीं ! जैसे मैं दुष्कृत नरायण साधारण  
स्त्री होऊँ । मैंने कहा, देव ! मैं तुम्हारे कृपा कटाक्ष की भूल लेकर तुम्हारे  
पद धार हूँ । तुम कामदेव हो, मैं रति बनकर तुम्हारी पुरु मरकतान का  
रुवार करूँगी, मुझे वृष्टि हो, संसार की अप्रतिम सुन्दरी तुम स प्रलय  
की भिषा लेने धार है । शाय ! शीन्द्य तुम्हारे परधो में लोट रहा है,  
इसे स्वीकार करो । उतने शान्त मुद्रा में देला घोर गम्भीर बायीं में कहा—  
“मे विरस्त हूँ देखि, आत्म-सूच । तुम लोट जाओ, तुम अग्नि हो जितने  
काठ संसार जल रहा है ।” मैंने उत्तर दिया—“मर निमर नहीं किया  
का लक्ष्य ।” उतने कहा—“तम मद हो, और हतके काय ही उतने एक

दिग्भ्रम को संकेत किया, उठते मुझे आज्ञा से बाहर निकल दिया।

मंजुला—वह सुन्दर होते हुए भी लोन्डर्न की अतृप्ति से हीन है देखि, पापाण !

अशिलेखा—( मुड़कर ) हाँ, वह पापाण है, तुने ठीक कहा, वह पापाण है किन्तु उसे इसका बदला भोगना होगा।

मंजुला—वह क्षमा का पात्र है।

अशिलेखा—क्षमा ! मैं उसे क्षमा करूँगी ? नहीं, उसकी क्षमा मृत्यु है मृत्यु !

मंजुला—देखि !

अशिलेखा—मैं देखि नहीं हूँ। आज मेरे हृदय में अतिहिंसा की आग मड़क रही है। मेरा रोम-रोम तिरस्कार और अपमान से जल रहा है मंजुला !

मंजुला—सेनापति प्रसन्न पचारे ये।

अशिलेखा—(अनतुनी करके मन-ही-मन) क्या मैंने कितनी बड़ी मूल की। किन्तु मेरा हृदय व्याकुल है, उसकी छाया-मूर्ति में, जैसे उसकी पीतरागण के तिरस्कार ने प्रथम में और उसमें स्वबचान की लाई उत्पन्न कर दी है। नहीं, वह अब मृत नहीं है, मुझे उसे मूल जाना होगा क्या मूल उठूँगी ? (बुप चूकर) तिरस्कार किया उठने मेरा ! (भूमि पर बिगड कर कपकप-कपक कर रोने लपटी है। मंजुला उसके पास घाबर बैठ जाती है और तिर पर हाथ केरने लपटी है। बाहुर रज के घबरे का स्वर सुनाई पड़ता है। अशिलेखा संकेत हीकर सुपती है।) महाराज का रज।

मंजुला—महाराज पचर रहे हैं, देखि !

अशिलेखा—(उठकर) महाराज ! महाराज ! मुझे प्रधाकन-पद का मार्ग दिला ।

मंजुला—शीघ्रता कीजिये। (रोनी जाती है, इसी समय अशिलेखा महाराज घाते है)

महाराज—अशिलेखा नहीं है ! (बायें तरफ मुड़कर बैठ जाती है)

शशिसेखा

पहली बार आया है।

बासी—आपराध क्षमा हो, देवी अभी आ रही हैं।  
 [ कामन्त विनोदवर्धन छोटे-से राज्य का स्वामी है। यवनात्मक विद्वेषिय एवं विनासी है फिर भी उसमें बौद्ध धर्म के प्रति धन राग है। महत्त लीचिम्यायन की शिक्षा ने उसे किञ्चिन् धार्मिक बना दिया है। उसी के आग्रह पर महत्त ने नगर के बाहर धाराम म निवास करना स्वीकार किया है। विनोदवर्धन की धाम्य समयमें वेंनीस बंधू द्वारा धरीर, काशियान मुप-मण्डल राजकीय धाम्यपाला में पुनः मुद्द धरीर स्वाम-वर्धन बड़ी-बड़ी धार्मिक मठ से मरी तीरुल नातिका ताम्बूल वस्तु मुक्त तथा बेजने में मुन्दर है। शशिसेखा प्रवेश करके धाम्य मुक्तान से विनोदवर्धन का स्वागत करती है। ]

शशिसेखा—स्वागत है दब।

विनोद—आओ शशिसेखा आओ। मैंने नना है महाराज शशा स्वम्भ नहीं है, इनीशिय में स्वयं तम्हें देखन चला आया।

शशिसेखा—यह बासी कृता दुर्द महाराज दामी मर पात्र ला।

विनोद—तुम कितनी मुन्दर हो शशिसेखा और धाम्य । तुम्हारा धर्म भी मोहक हो उठी है।

शशिसेखा—यह आपकी मुक्त-माहकना है न्य धाम्य दामी हो ।

विनोद—नहीं शशिसेखा, तुम तपमय त्रैलोक्य-मु दरी हो

शशिसेखा—शानी स्वयं उरियन हा बन्ती ।

विनोद—मैंने आने का विशेष प्रयोजन है।

शशिसेखा—परिधि ।

विनोद—(एकान्त बैठकर) तुम्हें मालूम है राज्य का उपसधिकारी कार्य मरी है।

शशिसेखा—महाराज बीपासु हो।

विनोद—धरि भी एक उत्तराधिकारी तो बाटिय ही।

शशिसेखा—निःसन्देह ।

बिनोद—बबोठिपी कहते हैं इन रागिनों से सन्तान नहीं होगी ।

शशिसेखा—( बुद्ध प्रकट करती हुई चुप रहती है ) तो और विवाह ।

बिनोद—तुमने ठीक कहा, इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ ।

शशिसेखा—मैं देश-देशान्तर से सुन्दरी कम्पा ढूँढकर लाऊँगी ।

बिनोद—यह मेरे ही देश में है ।

शशिसेखा—फिर तो कोई बिम्बा की बात नहीं है । मैं देख सकूँगी महाराज ।

बिनोद—वह मेरे हृदय की देवी है, मैं उसी से विवाह ।

शशिसेखा—मैं शक्ति मर प्रयत्न करूँगी देव । क्याहने वह सीमाग्न शक्तिनी कौन है ?

बिनोद—तुम उसे जानती हो । वह मेरे ही नगर में रहती है । बत्ताओ, वह कौन है ?

शशिसेखा—मैं क्या जानूँ ? आपकी आज्ञा हो तो ।

बिनोद—वह तुम हो ।

शशिसेखा—(आश्चर्य से कञ्चुल होकर) महाराज ! मैं नतकी हूँ, राजनर्तकी ।

बिनोद—वह तुम हो शशिसेखा, मैं विधिपूर्वक तुमसे विवाह करना चाहता हूँ । मैं जानता हूँ तुम नर्तकी हो, किन्तु तुमने किसी से प्रेम नहीं किया है । तुमने किसी को शरीर दान नहीं किया है । तुम नर्तकी होते हुए भी निष्ठाप हो । गंगाजल की तरह निर्मल । बोलो, एक बार कह दो ।

शशिसेखा—महाराज ! क्षमा कीजिये ।

बिनोद—नहीं शशिसेखा । मेरे कई बार प्रयत्न करने पर भी तुम अविग हो । मैं तुम्हीं से परिचय करके शेष जीवन को सुखी करना चाहता हूँ ।

शशिसेखा—(चुप रहती है)

## शशिलेखा

बिनोद—बोलो प्रिये ।

शशिलेखा—मैं विवाह नहीं कर सकूंगी महाराज !

बिनोद—नहीं, ऐसा कहकर तुम मेरा हृदय मत तोड़ो । मेरी एकमात्र इच्छा, मेरी यही एकमात्र इच्छा है, तुम नहीं जानती, तुम्हारे नश्वर को देखकर मैं न जाने कैसा हो जाता हूँ । तुम्हारे सौम्य ने मुझे पर न जाने क्या कर दिया है, शशिलेखा !

शशिलेखा—मैं अपने को इतना माग्यवान नहीं मानती देव !

बिनोद—तुम्हें माग्य को मनाने के लिए पूर नहीं जाना होगा, प्रिये वैसे तुम्हें पट्ट-सक्षिपी बना दूंगा ।

शशिलेखा—प्रजाजन इतका विरोध करेंगे और आपको बाध होकर मुझ त्थायना होगा । मुझे मेरी स्थिति में ही रहने कीजिये प्रभो !

बिनोद—मैं जानता हूँ, प्रजाजन इतका विरोध न करेंगे । उनमें से किसी में भी इतका विरोध करने की शक्ति नहीं है ।

शशिलेखा—महाराज, मैं बतमान महारानियों की शोष पात्र बनकर अपना जीवन नरक नहीं बना सकती, मुझ धमा कीजिये ।

बिनोद—(हाथ पकड़कर) नहीं शशिलेखा यह नहीं हो सकता । तुम्हें मेरा अनुरोध, मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी होगी, बोलो बोलो, शशिलेखा, बोलो ।

शशिलेखा—महाराज ! आप मरे नहीं, मेरे सौम्य क उदासक है ।

बिनोद—क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहती हो ?

शशिलेखा—नहीं, किसी की कामरय नहीं है आ प्रानकी परीक्षा ले ।

बिनोद—तो तुम मेरा अनुनय स्वीकार कर लो देखि ।

शशिलेखा—मैं एक दुष्ट रूप जीसी नतकी हूँ महाराज !

बिनोद—नहीं, तुम एक लक्ष्मी स्त्री हो शशिलेखा ! तुम्हें पाकर कोर भी कस्य हो सकता है ।

शशिलेखा—किन्तु ।

बिनोद—नहीं, किन्तु-परन्तु की श्रेय आवश्यकता नहीं है, तुम्हें



पाकर मेरा जीवन सफल होगा, मेरा रास्य कृतार्थ हो जायगा ।

अश्विनेका—तुम्हें सोचने का समय थाविए ।

बिनोद—तुम मुझे कुसम मानती हो ?

अश्विनेका—(मुस्कराकर) यह आप अपना नहीं मेरी बातों का अपमान कर रहे हैं महाराज ।

बिनोद—मैं जानता हूँ प्रिये, मैं जानता हूँ !

अश्विनेका—राजी ! (ताली बजाकर) पेय सा ।

बिनोद—मैं तुम्हारे प्रेम का पेय चाहता हूँ, शशिकेला !

अश्विनेका—मैं समझती हूँ महाराज ! पर ।

बिनोद—कमल तुम्हारे स्वीकार करके का विकल्प है । मैं (केवल बीकर) तुम्हारा पेय मैं तुम्हारे समान तुम्हारे एवं मादक है । जो तुम भी पिने, आज मैं तुम्हें मिलाऊँगा, जो पियो ।

अश्विनेका—(पात्र मैली हुई) अमुगृहीत हूँ महाराज ! इत जीवन मैं मैंने किसी को प्रेम नहीं किया । जीवन का पुष्प बीरे-बीरे कुम्हलाने वाली शक्ति-रेखाओं की शक्ति अगम्य भर रह गया है । अभी कुछ ही दिन तो बीते, जब मैं महाराज के नगर में आई । इतने पूर्व निरन्तर विषमनात ने मेरे शरीर को, आत्मा को, समय की श्रुत कलाओं में बाँध रखा था । मैं बह्मचारिणी थी, वही मेरे गुदरेक की आका थी ।

बिनोद—तुम्हारे गुद का नाम क्या है शशिकेला ? निरुचन ही जित गुद से तुमने सिखा पाई है वे संशय और नृत्य दोनों में ही परम प्रवीण रहे होंगे । तुम्हारा ऐसा मोहक नृत्य और ऐसा मादक संशय तो मैंने कहीं नहीं देखा और न सुना ही है । तुम निरुचन ही सरस्वती का आवतार हो । तुम्हारा कमल राजकुल में हुआ और तुम्हारी माता केवल अपने स्वामी, अपने पति की बशवर्तिनी न होमे क कारण राजकोष का भाजन बनी । उतने एकमत जीवन बिताते हुए तुम्हें गुदरेक शिष्यस्वरूप से दीक्षा दिखाई ।

अश्विनेका—महाराज, आप यह सब कैसे जानते हैं ?

बिनोद—क्या यह अतन्त्र है ?

शशिसेखा—आश्चर्य है !

विनोद—उन्होंने तुम्हें इसी आशा से भेजा है कि तुम किसी योग्य व्यक्ति से विवाह कर लो तथा आजीवन इस नाव-संगीत शास्त्र का प्रचार करो ।

शशिसेखा—महाराज, आपने यह सब कैसे जाना !

विनोद—किन्तु अब तक तुम्हें कोई भी व्यक्ति विवाह योग्य नहीं देख पड़ा, नहीं न ? तुमने अपनी माता को समझा भेजा है, किन्तु मैं तुम से विवाह करने की प्रार्थना करता हूँ देखि !

शशिसेखा—मैं नहीं जानती थी कि आपको मेरा सब वृत्तान्त ज्ञात है ।

विनोद—तुम्हारे सौम्य ने मुझे सब कुछ जानने को बाध्य कर दिया है शशिसेखा । और राजा तो चार घण्टे होता है न, मैं इससे भी अधिक जानता हूँ ।

शशिसेखा—(जय से) इससे भी अधिक ! क्या मुझ में आपने कोई रोग देखा ?

विनोद—नहीं, तुम स्वष्टिक से भी अधिक स्वच्छ हो । बोलो, अब भी क्या तुम्हें कोई आपत्ति है ?

शशिसेखा—आपत्ति क्या होगी महाराज, यह तो मेरा लौमाग्य है ।

विनोद—मैं प्रसन्न हुआ देखी, मैं आज ही ।

शशिसेखा—इस विवाह-मंगल सूत्र से पहले मेरी एक प्रतिज्ञा है ।

विनोद—तुम्हारी प्रतिज्ञा अवरय पूर्ण होगी । प्रतिज्ञा मनुष्य की शक्त का विन्दु है तुम अपनी कामना पूरा करने में स्वतन्त्र हो ।

शशिसेखा—आप कबन देते हैं ?

विनोद—कनिय इससे अधिक नहीं कहते ।

शशिसेखा—क्या सब कनिय कनिय होते हैं महाराज ?

विनोद—( कड़े होकर ) जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सकता, वह कनिय नहीं होता शशिसेखा ! तुम मेरी परीक्षा मत लो ।

अश्विनेजा—मुझे विस्वात है कि अश्विपेश्वर महाराज मेरे सम्मुख प्रतिज्ञा कर रहे हैं किन्तु ।

बिनोद—क्या अब भी तुम्हें सन्देह है ?

अश्विनेजा—महाराज की यदि मुझ पर कृपा है तो सन्देह कैसा, फिर भी मैं चाहती हूँ यदि आप वचन पूरा न कर सकें ।

बिनोद—तुम मेरा अपमान कर रही हो शशिसेखा । तुम माँगो क्या माँगी हो ? जो कुछ मेरी शक्ति में है वह मैं तुम्हें दूँगा, सम्पूर्ण राज्य देश का स्वामिन् । वह क्या इससे अधिक भी फिर यह शरीर भी तो तुम्हारा ही है दिने ।

अश्विनेजा—मैं उपद्रव दूर देन । किन्तु प्रतिज्ञा-पालन में आप पीछे न हट सकेंगे, सोच लीजिये । मैं अपने अपमान का बदला चाहती हूँ ।

बिनोद—अपमान ! तुम्हारा किसने अपमान किया है ? किसमें इतना साहस है, जो तुम्हारा अपमान करे ? दिने, बत इतनी-धी बात ! यह तो तुम कभी भी कर सकती थीं ? वह समय वर नहीं है, अब तुम्हारे संकेतों पर शासन-सूत्र बसैगा । अब, किसने तुम्हारा अपमान किया है ? मैं अभी ठठका तिर अठकर तुम्हारे सम्मुख उपरिक्त करने की आज्ञा देता हूँ ।

अश्विनेजा—(काड़ी हँकर) तो वह मेरा अपराधी कौशिक्यायन है, मुझे ठठका तिर आशिय ।

बिनोद—(एकदम चौंकर) क्या कहा, कौशिक्यायन ? क्या सबकुछ महामान्य कौशिक्यायन ने तुम्हारा अपराध किया है ? नहीं ऐसा नहीं हुआ होगा, तुम्हें भ्रम हुआ है, वे महान् हैं ।

अश्विनेजा—मेरा अपराधी कौशिक्यायन सिद्ध है, मैं ठठका तिर चाहती हूँ ।

बिनोद—कौशिक्यायन, महान्त कौशिक्यायन, वे बीतराग सिद्ध, तुम्हारे अपराधी कैसे हो सकते हैं ? नहीं शशिसेखा वह अपनी प्रतिज्ञा सोम जो, मैं इतके बदले मैं सम्पूर्ण राज्य तुम्हें दे सकता हूँ । अपना

सबसे सुख सकता हूँ, किन्तु मेरे ही उन बीचा-गुरु का, जिन्होंने मुझे मुझ प्रवचन देकर मनुष्य बनाया, उसका सिर तुम चाहती हो ! वे मेरे गुरु हैं और गुरु न मी होते तो मी वह एक मित्तु तो हैं ही। नीतराम लम्बी तो हैं ही। उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? निश्चय तुम उन पर प्रभरस मुझ हो रही हो। जो व्यक्ति बन में एकान्त-साधना करता है, किसी से कुछ लेता-देता नहीं, वह तुम्हारा अपराधी कैसे हो सकता है ?

शशिसेखा—मैं जानती थी आप प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सकेंगे, वह आपके बग के बाहर की बात है।

बिनोद—(हँसकर) क्या तुम मेरी परीक्षा से रही हो नहीं शशि सेना तुम विवाह से पहले ही मुझे इतना बड़ा आघात नहीं होगी। यदि वह उदात्त नहीं है तो मैं समझता हूँ मैंने अपने हृदय में किसी अन्तरंग व्यर्थी विष को नहीं देखा है। मैं जानता हूँ तुम बाहर की तरह हृदय में भी स्वच्छ और सुन्दर हो। तुम्हारी आत्मा में कष्टानु नहीं है, तुम हृदय से भी बेटी सुन्दर हो जैसी बाहर से।

शशिसेखा—यदि आप नहीं पूरा करना चाहते तो रहने दीजिये।

बिनोद—तो क्या मैं भ्रम में रहा ! क्या मैं एक मारी क लोन्ड्रय में जगिन का रूप देना रहा हूँ ! ओपे ! यह मैंने क्या किया ? बिना लम्बे सोये प्रतिज्ञा कर डाली अब क्या करूँगा ? (दहलता चहता है) किन्तु अब मुझे प्रतिज्ञा पूरी करनी ही होगी। मैं क्षत्रिय हूँ, मैंने एक नारी को बचन दिया है। (एकदम पीछ मुड़कर) किन्तु क्या प्रतिज्ञा अधूरी रह जायेगी, मैं इस बचन दिया है, मुझे यह प्रतिज्ञा पूरी करनी ही होगी। यह कितना बड़ा पाप है शशिसेखा ! क्या तुम मुझे पाप से मुक्त नहीं कर सकती ?

शशिसेखा—क्षत्रिय हो बार नहीं बोलते, मैं तो ऐसा ही सुनती आई हूँ।

बिनोद—तम मेरा सबस्व लेकर मुझे मिलारी क्या हो, किन्तु प्रतिज्ञा पालन करने के लिए मुझे बाध्य न करो। शशिसेखा, मैं कहीं का नहीं रहूँगा। वह मेरे जीवन का सब से बड़ा आत्मशाह-काल होगा।

शक्तिसेवा—प्रतिष्ठा आत्मा से होती है और आत्मा-रत्न महापाप है म्हापाप !

विनोद—तुम इतना सब कुछ जानती हो और जानकर भी मुझे एक भिक्षु की इत्सा करने को बाध्य कर रही हो ।

शक्तिसेवा—मैं अपमानित हूँ, अपमान का बदला चाहती हूँ । मैं म्हापापनी बनने से पूर्व इस साक्षन को जो डाकना चाहती हूँ ।

विनोद—कैसा साक्षन !

शक्तिसेवा—अपमान का साक्षन, ठिरठकर का साक्षन, मैं देव की प्रकृष्टामिनी होने से पूर्व शुद्ध होना चाहती हूँ ।

विनोद—मैं नहीं समझ, तुम स्पष्ट कहो, भिक्षु कौशिकम्बामन ने तुम्हारा कौनसा अपराध किया है ? अपराध को दैतकर ही उठकी मात्रा निवारित होती है ।

शक्तिसेवा—किन्तु आपने तो प्रतिष्ठा की है न । न्याय करने का अधिकार तो आपका नहीं है ।

विनोद—तुम ठीक कहती हो, न्याय करने का अधिकार तो मैं प्रेम में खन्धा होकर पहले ही लो चुका हूँ ।

शक्तिसेवा—आप बरदान पूर्ण करने की प्रतिष्ठा भी कर चुके हैं ।

विनोद—प्रतिष्ठा ! एक और भीषण प्रतिष्ठा, दूसरी खोर तीव्र मुल, रात गुदरेव कौशिकम्बामन का बच । क्या सधमुच मुझे मरुत कौशिक न्यायन का बच करना होगा । नहीं, यह नहीं हो सकता । मैं पैला नहीं कर सकता । ( बहलता है । धूप होकर ) किन्तु क्या प्रतिष्ठा ज़खूरी रह

अधेगी ? क्या मैंने शक्तिसेवा को बचन नहीं दिया है ? न्याय करने का मैंने अधिकार नहीं है वह अधिकार मैं रख नहीं सका । मैंने प्रेम में

जाने होकर एक नारी के सामने अपना बिबेक लो दिया । अब मुझे बची करना होगा बिलके लिए मैं बाध्य हूँ । तो ( पन्मीरता से ) क्या बच करूँ ? कौशिकम्बामन का बच करूँ—उठ उपस्वी का, बिबेक मेरा कुछ नहीं बिगाका, बिबेक किसी का कुछ नहीं बिगाका, जो आधी रात

की तरह शान्त, सूर्योद्य की तरह भोला, बच्चे की तरह निष्पाप है, उतकच बच मुझे करना होगा ? सुनो ( मुह खेरकर ) शशिसेला, क्या सक्षुभ्र तुम ऐसा अनन्य हृदय मुझ से करना चाहती हो ? नहीं ऐसा न करो, वह स्थापाप है ।

शशिसेला—बह तो आप अपने से पूर्विये, महाराज ! मैं क्या जानूँ ? मैं तो उतक पापी कौण्डिन्यायन से अपने अपमान का बदला चाहती हूँ । मैं जानती थी यदि संसार में न्याय की आशा किसी स हो सकती है तो वह राजा ही से, किन्तु जब राजा ही बचन देकर पीछे हट जाय । क्षत्रिय को एक बार बह देते हैं उसको प्राण देकर भी पूरा करते हैं । क्षत्रिय—ओ ! कितना भ्रम हुआ । अब क्या उपाय है ? नारी, अितकच तिरस्कार हुआ, अपमान हुआ, जो कष्ट बचनों का विष पीकर भी जी रही है । अब उतक उदार का उपाय भी क्या है ? रहने दीजिये ।

विनोद—(स्वगत) "मैं जानती थी यदि संसार में न्याय की आशा किसी स हो सकती है तो वह राजा ही से, किन्तु जब राजा ही बचन देकर पीछे हट जाय—" यहाँ मैं राजा हूँ मैंने बचन दिया है । (प्रकट) शशिसेला ! क्या और किसी तरह मेरी परीक्षा नहीं ली जा सकती ? मेरी रानी, और सब कुछ तुम्हें दे सकता हूँ ।

शशिसेला—मैं और कुछ नहीं चाहती महाराज । मैं कबल उतक भिक्षु का तिर चाहती हूँ ।

विनोद—(बुप रहकर) 'उतक भिक्षु का तिर चाहती हूँ और कुछ नहीं चाहती ।' भिक्षु का तिर, भिक्षु का तिर ! (तोषकर) अम्हा तुम्हें भिक्षु का तिर मिलेगा, प्रदरी (ताली बजाता है प्रहरो घाली है ।) सनापति प्रपुम्न से करो कि भिक्षु कौण्डिन्यायन का तिर बाटकर हमारे सामने उपस्थित करें । ( हाथी 'ओ घाता' बहकर जाती है । इसी समय मिल कौण्डिन्यायन प्रवेश करते हैं । )

कौण्डिन्यायन—श्रीजिये महाराज ! यह मेरा तिर है, इस बाटकर अपनी राजमाता की कामना पूरा कीजिये !

विनोद—आप !

शशिदेवा—मिथु कौण्डिन्यावन ।

कौण्डिन्यावन—बदि मनुष्य के मुल के लिए मेरी आत्मा का बलि दान हो तो इतसे अधिक और क्या शुभ हो सकता है ! आपका कन्वाच हो । मेरा तिर उपस्थित है ।

विनोद—भगवन् ! मैं विचर हूँ (तलवार उठाते हैं)

कौण्डिन्यावन—आप प्रतिज्ञा-भाजन कौण्डिने महाराज ! ( तिर फुकाते हैं )

शशिदेवा—ठहरो, उन्हें अपना तिर फुकाते क्या नहीं होगा, मिथु !

कौण्डिन्यावन—आत्मा को कोई नहीं काट सकता । पुनः-मुल शरीर के बर्त हैं देवि ! मैंने नहीं तो अभी तक चीका है ।

शशिदेवा—किन्तु मुझे तो अपनी आत्मा से, अपने सौन्दर्य से मोह है, मिथु !

कौण्डिन्यावन—मोह पाप का कारण होता है मोह मनुष्य का शत्रु है ।

शशिदेवा—और सौन्दर्य ?

कौण्डिन्यावन—आत्मा का सौन्दर्य सबसे भेष्ट है । बही स्थिर है । शाश्वत है । दुःखदायी इस सौन्दर्य के मद में संसार में मुक्त होते हैं विषमतायें आती हैं, फल बढ़ते हैं । मैंने आत्मानस्य प्राप्त कर लिया है देवि !

शशिदेवा—तो क्या जो कुछ प्राप्त है वह मूठ है ?

मिथु—प्रत्यक्ष के द्वारा हमें अप्रत्यक्ष सौन्दर्य को प्राप्त करना होगा, वह अप्रत्यक्ष सौन्दर्य ही स्थायी है ।

विनोद—वह अप्रत्यक्ष सौन्दर्य क्या है मदस्त ?

मिथु—अप्रत्यक्ष सौन्दर्य आत्मा का प्रकाश है, जीवन की परम शक्ति है । जिसे प्राप्त करके मनुष्य संसार के दुःखी मानव को बर्दिता है ।

ममबान् बुद्धि ने यही किया। वही शास्त्रत कल्याण्य माग है।

प्रधिलेखा—यह मेरा बीबन, यह मेरा सीन्दर, यह रमणीयता, क्या तब भर्च होगी ?

बिजु—निरचव।

प्रधिलेखा—तुम क्या कह रहे हो बिजु क्या मैं ऐसी मुन्दर सदा न रहूँगी ? क्या मेरी प्रमिक्षापायें सदा बीबन के मद में स्नान करके बिर सीन्दर के मिरस्तर आस्वादन न करती रहूँगी ?

बिजु—नहीं, यह तुम्हारा भ्रम है।

प्रधिलेखा—भ्रम, नहीं, यह प्रमद्य का अपहाप है। मैं सदा ऐसी ही रहूँगी, सदा बीबन के गीत गाकर मैं अपने उत्तरंग सीन्दर के प्रसुयण क्यपे रल लकूँगी। मैं यही चाहती हूँ। बिजु !

बिजु—बह मृगतुष्या है, मृगमरीचिका है।

प्रधिलेखा—(लोककर) और तुम्हारा सीन्दर, कामदेव को परल करने वाला तुम्हारा सीन्दर ?

बिजु—मैं अपने सीन्दर के प्रति आसक्त नहीं हूँ।

प्रधिलेखा—तुम तो राजकुमार से भी अधिक मुन्दर हो।

बिजु—बह शरीर-सीन्दर अरवापी है। मैं आत्मा के सीन्दर की लोच में हूँ।

प्रधिलेखा—बह आत्म-सीन्दर क्या है ?

बिजु—बह अभाव से सिद्ध होता है, किन्तु शरीर-सीन्दर अरवापी है। मेरा तिर उरसिप्त है महाराज।

बिनोद—शशिलेखा ! क्या तुम अब भी चाहती हो कि महाभयस्य कीदिहभावन का शिरच्छेद किया जाय ?

प्रधिलेखा—(अपने घाय) मेरा सीन्दर अरवापी है, शरीर भ्रम है, मिष्या है, बीबन प्रमिष है, मही मैं विश्वास नहीं करती बिजु, मैं प्रमद्य में विश्वास करती हूँ। क्या तुम मेरा वास्तविक रूप मही देना पात ?

बिनोद—नहीं ! मैं तुम्हारा शिरच्छेद मही कर लकूँगा। मैं प्रतिज्ञा



संभ करना, धर्मिण्य से हारना स्वीकार करूँगा, किन्तु । शशिलेखा, तुम अपना यह बरदान लौट लो ।

मिथु—तुम अपना वास्तविक रूप देkhना चाहती हो, छो देखो वह है तुम्हारा वास्तविक रूप ।

[ स्टेज पर हल्का प्रखण्ड धा जाता है । अशिलेखा बैठती है उसके करीर से बीरे-बीरे एक-एक कंकाल निकलकर सामने गड़ा हो जाता है जो कड़कड़ करके हसता है । ]

अशिलेखा—(सामने देखकर) यह, यह मर्बकर कंकाल मेरा रूप है, नहीं, ओह, इयाओ इसे मिथु ! मुझे मय लग रहा है । मैं डर के मारे मरी जा रही हूँ । मैं इस रूप को नहीं देख सकती । ( धीरे धीरे बिल्लाती है बिल्लाती रहती है । )

मिथु—महाराज विनोदवर्धन, देखा तुमने शशिलेखा का रूप, जिस पर तुम इतने मुग्ध हो उसके विवाह करना चाहते हो ।

विनोद—मेरा जी संसार से उपरत हो रहा है प्रमो, मुझे मार्ग दिखाओ ।

अशिलेखा—इयाओ इसे, मैं मरी जा रही हूँ । ओह यह मेरे ही पास आ रहा है । मुझे लू रहा है । बचाओ ! रक्षा करो । ( बीरे-बीरे पुर्ब-बल्ला में आती है । )

मिथु—महाराज, मेरा स्त्रि उपरिष्ठ है, वह लीजिये ।

[ मिथु बैठते हैं दोनों उनके चरखों पर विरे हैं ]

अशिलेखा—मुझे अपनी शरय में ले लो । मुझे आत्मप्रखण्ड, वास्तविक शान्ति की ओर ले चलो प्रमो ।

विनोद—मुझे कल्याण-मार्ग दिखाओ मुखेदेव ।

मिथु—कल्याण होगा बल !

[ प्राचे-प्राचे मिथु की ध्विन्धापन धीर पीछ-पीछे दोनों हाथ जोड़े बने जा रहे हैं । पीछे लेपय में आवाज आ रही है । ]

बुद्ध धरमं मज्झिम्भि  
संभं धरमं मज्झिम्भि  
धम्मं धरमं मज्झिम्भि

# सौदामिनी

( सोमनाथ मन्दिर का मध्यकालीन चित्र )  
पात्र-परिचय

विजयार्थ	सौदामिनी
सुदेव	सुनयना
पामुपत	मन्दिरी
जयार्थ, भीमा भासुर	नाबिक प्रभाकर घादि

[ महुल के एक कोने में सौदामिनी और सुनयना बठी हैं । सामने मगर का मर्मन और मगर का कोसाहल मुनाई के रूहा हैं । मगाड़े घण्टे और पत्रियाल की ध्वनि आ रही है । सौदामिनी—१६ बर्य की सुबती— और उती कछ की उसकी सली सुनयना अपने विचारों में गुन-गुम है । कम्पा समय । ]

सौदामिनी—(एकाएक) यह कैसा कोसाहल है सुनयना ! बेस मारा मगर क्या कर रहा है ।

सुनयना—कोसाहल दो ही तरह दृष्टा है पुरी से या रंज से ।

सौदामिनी—उत्सव मनाया जा रहा है !

सुनयना—विजयपोस्तव ! हमारी शार का उत्सव कली !

सौवामिनी—(धूमकर लेती है) क्या मठसब ?

सुनयना—क्या यह भी बताना पड़ेगा । शायद तुम बहुत मीठी हो ।

सौवामिनी—ओह !

सुनयना—पतञ्जल की मूर्तु पर बसन्त का उत्सव हो रहा है । तुम्हारे पिता महाराज विजयार्क के पराभित होने पर राजा ने सुदेव प्रमास में उरुलास धानम्ब मनाने की आज्ञा दी है ।

सौवामिनी—तुने कैसे जाना ।

सुनयना—झर्री ने बताया । उसने एक बात और भी कही है ।

सौवामिनी—तब कह जात ।

सुनयना—बहुत फ़ठोर है ।

सौवामिनी—मेरा हृदय परपर हो चुका है ।

सुनयना—कल्ल घायकाल तक यदि महाराज—तुम्हारे पिता—ने अर्घीनता स्वीकार न की तो

सौवामिनी—( धौंककर ) तो क्या उनका बच किना जायगा ! (बिल्लाकर) बच कर दिना जायगा केवल इतकिए कि प्रमास के राजा सुदेव की अर्घीमता उन्होमे नहीं मानी । वे उसके अर्घीन नहीं होना चाहते !

सुनयना—इस लोग भी तो बन्धी हैं राजकुमारी !

सौवामिनी—मैं कधी नहीं रह सक्यी । गाठें कुसेंगी मुझे मुझे (भीतर-ही-भीतर विवहता की घुबल का अनुभव करती है ।)

सुनयना—(बन्धीरता से) कभी-कभी राजा होना बहुत बड़ा अर्घी-शाय हो जाता है । बाबल तो राज का ही बकते हैं न ।

सौवामिनी—सुन, समुद्र अब भी गरज रहा है । उसकी झहरें अब भी प्रमास के तयीं से उफ़रा रही हैं । नहीं, इतके पहले कि पिता का बच हो मुझे मुझ !

सुनयना—सुना है तुम्हें उठ स्थान पर से जाया जायगा जहाँ उनका !

वीरामिनी—नई बात नहीं है। बस कर !

[ पद-बाल सुनाई देती है ]

कोई आ रहा है। कौन होया ।

[ सुबेब की पत्नी नन्दिनी का कुछ सहायिकाओं के साथ प्रवेश ]

पहुली सखी—महारानी, यहीं हैं वे दोनों।

दूसरी सखी—सागर की लहरों की तरह बिन पर माग्य के अपने लगते हैं।

नन्दिनी—हूँ ! (स्वप्न से) क्यों, ऐसा लग रहा है यहाँ ?

[ वीरामिनी पीठ छेरेकर खड़ी हो जाती है ]

अब भी इतना गर्ब ! रस्ती बस जाने पर भी रेंठन नहीं गई, पीठ छेरे खड़ी है। हजर देख

पहुली सखी—गौरव की है म।

दूसरी सखी—सह गैवार। अरी देखती नहीं महारानी हैं।

नन्दिनी—माग्य के आकार में दुर्दिन की तरह इन दोनों का काम हुआ है।

गुनपना—मिरचय ही महारानी, पर लीमाग्य भी किली की बपोती करी है। जो फूल लिखता है वह नहीं जानता कि वह माखी के छार तोड़े जाने के लिए ही लिख रहा है।

नन्दिनी—(स्वप्न से) शायद तुम्हें मालूम नहीं कि इत राजमार्ग के अन्त में एक बीड़क तपन अयल भी है।

वीरामिनी—उसमें मनुष्य का रुचिर पीने वाले कर्बुर सिंह रहते हैं, जिनकी दादों में लून लग चुका है।

नन्दिनी—आहार उदा ल्याये जाने के लिए ही बनाया गया है।

वीरामिनी—किन्तु मूगया तो सिंह की भी होती है न !

नन्दिनी—जो भी हो तुम्हारा भाग्य मेरे मुट्ठी में है जानती हो।

गुनपना—रहते नक्षत्र में आकार की बूँद लीरी के सुले मुल में गिरकर मोतो बन जाती है और समुद्र में लारी पानी महारानी !

गन्धिनी—(उत्तेजित होकर) तो मैं कपटी पानी हूँ क्यों ! (धीरे से बरकर) तुम दोनों ने भी अपने पिता को तरह मरने को डानी है। अच्छी बात है बहो होगा। बसो।

पद्मी लक्ष्मी—देखो कितनी डीठ है यह। महारानी के सामने भी बोलती जाती है।

सुनयना—यदि मरना ही है तो कौन रोक सकता है।

गन्धिनी—(लौटकर) मैं रोक सकती हूँ यदि ठेरी लली मेरी पाठी होना स्वीकार कर ले।

सुनयना—सूर्य की किरणों को पियारी में बन्द करके नहीं रला जा सकता, महारानी।

पद्मी लक्ष्मी—एकले, सूर्य की किरणों को तो देलो।

बृहती लक्ष्मी—मरने के पहले बोधे के पल निकल आते हैं।

गन्धिनी—बाहरी भी यह फूल इतनी बहरी न मुरझाता। पर जब तुम लोगों को मरना हो है। मुनो कान खोलकर सुन लो, कन्न सावंधल को तुम्हारे पिता का बंध किया कबमा। उठके बाह। (लक्ष्मी के) बसो, उत्सव को विलम्ब हो रहा है।

पद्मी लक्ष्मी—हाँ बन्धिये, मगधान् की आरती का र - गया है।

[ जाती है ]

सीतामिनी—मुनो रानी, कोई भी बका नहीं है न कोई खोया। यह आश्चर्य की बात है कि तुम

गन्धिनी—(लौटकर) आश्चर्य ही विजयार्क की कन्या को मेरी दासी बनाएगा।

सीतामिनी—कल को आश तक किली में नहीं जाना है। हो सक्य है इतक

गन्धिनी—जो आश को ठीक-ठीक जानता है वही कल को भी जानता है। सीतामिनी। तेरे पिता का बंध निश्चित है और तेरा (लौटके लक्ष्मी है)

सौरामिनी—दर्र की बालिँ सघार्ध को ठक लेती हैं। अमिमान में मनुष्य भी मुनगा दिगारई देने लगता है नम्बिनी ।

बहुनी सबी—महारानी का नाम ।

बुलरी सबी—गैवारिन ।

नम्बिनी—( बाँत पीसती हुई सहायिका के हाथ में बेल छीनकर काड़-काड़ मुनयना और सौरामिनी को पीवती है ) ले ले, और से । कल ५ दिन दूर नहीं है केवल बार प्रहर की बात है ।

[ बाली है । सौरामिनी और मुनयना बिरने के बार घुम-घुम ]

सौरामिनी—( कोष की भाप छेकती हुई पीछे देखती रहती है ) मनिनी ।

मुनयना—मान अचिद्धर के मर से कूटता है । इत पुबेल का इतना ताहत ।

सौरामिनी—मद का बिप मनुष्य को पामल बना देता है । एक बार तो बी में भाया (कोष का घूट पीकर)

मुनयना—(घाँसों में घाँसु भरकर) भाग्य की बात है ।

सौरामिनी—भोती क्यों है ? (बली तरफ देखती रहती है)

मुनयना—( सौरामिनी से बिचरकर रोती हुई ) मद भी देवना क्या था ।

सौरामिनी—(घाह भरकर) न जाने क्या-क्या देवना पड़ेगा लती । (बिर स्वरुप होकर) पराजित को सभी कुछ लहना होता है किन्तु ताहत गेने की आवश्यकता नहीं है । मुम लगता है जिस यह मेरे लिए कुछ करने की एक प्रेरणा है । मैं करूँगी ? देवूँगी क्या होता है । (बहुतने लकती है) देवूँगी मैं बन्धी नहीं रह सकती । मही रह लकती । पाहती है मैं इतकी दासो हो जाऊँ ।

मुनयना—इतस पूष ।

सौरामिनी— (बुप)

मुनयना—बह मुम स दररो भी दे ।

सौभागिनी—(लौचकर) मुझ से क्यों, फिर कोई आ रहा है, कौन होगा ? (लौचकर) मेरे भविष्य का निमाच हो रहा है। प्रत्येक नई मन्त्री मया सन्देश ला रही है।

सुनयना—तुम्हारे सौन्दर्य से डरती है। अरे प्रवृत्ति है।

[ बुड़ी स्त्री लकड़ी लिये जाती है ]

स्त्री—( लकड़ी खनीव कर मारकर ) ठीक, अब ठीक है। ये क्या सोच रही हो ?

सुनयना—कुछ भी नहीं। क्या सोचते ?

स्त्री—आज भगवान् सोमनाथ के मन्दिर में उल्लव मनावा जा रहा है।

सुनयना—क्यों ?

स्त्री—(घट्टहास करके) अरे, इतना भी नहीं जानतीं ! भगवान् द्वीप की विजय के उपलक्ष्य में आज भगवान् का श्रावितिक हो रहा है। आज ठठका अन्वितम दिन है।

सुनयना—अच्छा !

स्त्री—महाराज और महारानी भी वहीं गये हैं।

[ बन्दे-अभियाग मयाई के साथ अय सोमनाथ भगवान्, अय-अय महामेव, हर-हर महामेव की आवाजें सिक होती हैं । ]

जो पूजा होने लगी । अथ स्तुति होगी, फिर नाच ।

सुनयना—कौन नाचेंगा ?

स्त्री—द्वेष-दासिर्वा ।

सुनयना—वे कौन हैं ?

स्त्री—मन्दिर में कुछ ऐसी कन्याएँ हैं जो निरय चाककाल भगवान् के सामने माचती हैं। उनका यही अम है।

सुनयना—धीर भी कोई नाचता है ?

स्त्री—मन्वित में मरकर समो माचते हैं। समी कलिन करते हैं। तुम्हारे अयय द्वीप में मन्दिर नहीं हैं ! हाँ, अथ तुम्हारा उचमें क्या है !

सौदामिनी

बह तो अब महाराज का है। क्या तानकाश विजवाले के बच के बाद पूरी तरह बह महाराज का हो जायगा।

सौदामिनी—(पूछकर) चुप रहो।

स्त्री—(हँसकर) बुरा लग रहा है। बुरा तो लगेगा ही। बुरा लगने की बात ही है। क्या करें बिचारी! (हँसकर) हा हा हा बह मी नूब है हम से बड़ती है चुप रहो। क्यों चुप रहें! (तेजी से) महा हमारे चुप रहने से क्या होता है! माग में जो कुछ चित्ताकर साई हो वह तो मुमठना ही पड़ेगा बेटी।

[ लकड़ी डेककर घूमती है, फिर बककर ]

मुन्ने, यह सब मसतल्लुकी मात्रा है। जो बह करते हैं वही होता है। महाराज के ऊपर देखा प्रसन्न हैं। जो चाहते हैं वह हो जाता है।

मुनयना—हमने मगवान् का कौनसा अपराध किया है।

स्त्री—अपराध, कुछ अपराध किया ही होगा। तभी तो इतक मुगठ रही हो। राजकुमारी होते हुए भी नहीं तो कहीं महारानी बनती। इतनी मुम्बर, जैसे हीरे की कनी। ऐसी तो एक मी स्त्री तारे प्रमास में दिवा लौकर हूँ दे मी न मिले। क्या नाम है 'सौदामिनी!' (हलती है)

मुनयना—(बौंठकर) क्यों हँसती है!

सौदामिनी—तू क्यों बोलती है मुनयना!

स्त्री—सो और पूछो जैसे हम कोई पामल हैं। 'तू क्यों बोलती है मुनयना!' मत बोल, का माक में। हमें क्या! हमने तो सोचा, साधो दुनिया है बिचारी, दान्तनास ही पूछ लें। मत बोलो हमें तो महारानी को आशा थी कि हमें सोहे को खंबीतों में बँककर रखे। हमने ही क्या बँकने की क्या जरूरत है, कोई माग चोदे ही जाबंगी।

[ चप्पे-बड़ियालों की घाबाब घौर तेज होती है ]

अब खुश होगी, अब बसें, द्वार बन्द कर दें। मरो पड़ा बही।

[ जाने लगती है ]



जानती हो किटना बुक है राजकुमारी को । बिचारीपुंके मिठा मारे जा रहे हैं ।  
राज पाट लज झूट गया । आज तुम्हारी बन्दी हैं । कल रातक इन्हें भी

स्त्री—(लौटकर) हम क्यों बुरा मानेंगी ! हमारे जाने कोई मरे; कोई  
जिने । हम तो यहाँ रक्षा के लिए हैं । कोई बन्दी यहाँ आता है उस पर  
पहर देती हैं ।

सुनयना—मही, नहीं, हमारा तो माग फूटा है ही । फिर कोई हम  
पर क्या श्रेय करे ? न जाने कल क्या हो ?-कोई भी साथे हैं । फिर कल  
वह फूट-सा शरीर न जाने क्या होगा ? ( धाँसू भर आते हैं ) जिसकी  
मुसकान पाने को बड़े-बड़े ठरसते हैं आज वह

स्त्री—अरे ! रोती क्यों हो ? रोने से क्या होता है जब तो जो होना  
होगा, होगा ही । ( धाँसू भरकर ) किठनी दुःखिमा है बिचारी ! ओह ! हमारा  
भी किठना बुरा काम है । हमी इत बन्दीपर पर पहर देती हैं । किसी  
का भी तो बुक मही बटा-सकती । मगवान् से मा ना करो । वह चाहे  
तो क्ली से भी ममुष्य बच सकता है ।

सुनयना—तुम ठीक कहती हो मा । पर मगवान् के दर्शन कैसे हों ?  
कैसे उनसे प्रार्थना करें ?

स्त्री—बही से प्रार्थना करो और क्या । बेसे तो मही, नहीं ! मैं  
भी बेसी पागल हूँ !

सुनयना—( जलज होकर ) क्या कोई उपाय उनक दर्शन करके  
प्रार्थना करने का नहीं है ? कभी रात थी राजकुमारी की । बही-बही दूर से  
सोग उनके दर्शन को आते हैं । जाहती थी मरने से पहले एक बार  
सोमनाथ मगवान् के दर्शन कधे । मुना है जो बहा अभिसाया लेकर  
आता है वह पूरी होती है ।

स्त्री—तो तो है ही । मेरा ही लकड़ मासु के मुक से बचा है ।  
साम ने काट लिया था । मैं उसे हाँ गई और मन्दिर के सामने बंधक  
पटक दिया । रोने लगी । रोते-रोते प्रार्थना करती जाती थी । मन्दिर के  
स्वामी पशुस्त म्हाराज आ गये, बेसे तादात् शिव ही था यने हों ।

जाते ही बोले, क्या है ? मैंने रोते हुए पुनः भी तरफ संकेत किया—'साँप ने बरसा है।' तत्काल एक झींझपि मँगाकर कहा—'बोटकर पिता दे। अब, ठीक हो जायगा।' थोड़ी देर में निप उठर गया। हजारी के कंधे पर वर होते हैं।

सुनयना—भगवान् सोमनाथ का प्रताप ही ऐसा है।

स्त्री—तुम्हें देखकर बड़ा दुःख हो रहा है पर मैं क्या कर सकती हूँ बेटी ?

सुनयना—क्या हम एक बार भगवान् के दर्शन नहीं कर सकते। मरने से पहले एक बार यदि ऐसा हो सकता माँ।

स्त्री—महारानी भी तुमने बोधित कर दिया। नहीं तो उसी गुहा पर सवे तर्पण से जा सकती थीं।

सुनयना—'गुहाग्र' सुरंग।

स्त्री—हाँ, महलों से एक माय मीठर ही-मीठर भगवान् सोमनाथ के मन्दिर को जाता है ठीक गमगाह तक। महाराज प्रायः उसी स्वर्ग से सोमनाथ के दर्शन करने जाते हैं।

सुनयना—यदि तुम्हारी हया हो जाय तो हम दोनों भी मरने से पहले एक बार दर्शन कर लें।

स्त्री—(बोटकर) भैरी कुत्ता ! छिब ! छिब ! मैं क्या कर सकती हूँ ! (बोटकर) बस तो वह गुहा इतके बाहर ही है। पर बड़ा कड़ा परदा लगा है बेटी। पत्तों को जाओ, रात हो रही है। फिर भी किसी बात की आवश्यकता हो तो मुझ से कहना। मुझ से तुम्हारा दुःख नहीं देखा जाता। पर क्या करूँ ? (बली जाती है)

सुनयना—(उदात्त मुद्रा में) अब कीर उदात्त नहीं है लम्बी ! पिता का बंध निश्चित है। व इत रात्र के सामन घाम-सम'सु नहीं करेते। मैं उनका स्वभाव जानती हूँ। अविष केवल एक बार ही भरता है।

सौदामिनी—घाम-सम'सु का अर्थ है रात्र का कर-दाता बनना और मृत रात्रा सुरेव की दाती बनना। पिता की मृत्यु के बाद मैं भी

बीरिंगी नहीं सुनयना !

सुनयना—किन्तु एक समय तो सुरैव तुम्हारी छवि में बस गये व रावकुमारी !

सौवामिनी—आज मैं उससे पूजा करती हूँ। वह मेरे पिता का कातक है। मेरे दुर्भाग का विधाता। मुझे स्मरण है जब हो वर्ष पूर्व मैं अपनी प्रादिशी नौका में बख-बिहार कर रही थी और एकएक लहरें ठेक हो उठीं। प्रचंड पवन के झोंकों से हमारी प्रादिशी डगमगाने लगी—मुझे पार आ रहा है उठ समर

[ पर्वत गिर पड़ता है। रंजमंच पर झेंबेरा है। हवा के झोंके। बाली की चमक। लहरों का तेजी से पड़ना। लहर का वर्जन बढ़ना। बालों की कड़-कड़ की आवाज। एक बड़ी पछली का बिस्ताकर नाव की घोर बौड़ना। घोर लम्बे बहें घोर मात्तों को सम्हालकर मत्तान्तों का बिस्ताते हुए प्रहार करना। मारो-मारो। तु ह बर मारो तु छल जेंबाल। तु बौड़ बला। बौड़ तेजी से नाव को बौड़ा। पूर्व की घोर, बस्ती कर जानू, बीमा, बार घोर मार। घोरपुल पछली का बिस्ताना। हवा का तेज होना। लहरों की ज्व-ज्व। ]

बहुला नाविक—जाव बगम्मा रही है। छेद होगया है। तुधन, तुधन

हुतरा नाविक—लहरें प्रादिशी में भीतर भर रही हैं। पानी, पानी, पानी भर रहा है।

कई नाविक—मछली भाग गई। तूँ बें बें लो। लरिंरो मौक्य को समुद्र में फेंक दो। (बिस्ताले-बीछने की आवाज) बबरामो मत्त। उब कुमारी और महारानी को नौका में बैठा हो। बैठिये, बैठिये। बस्ती करो। घरे पाल छोड़ बौड़ लेकर छोटी नौका में कूर पड़ो। मछली भर गई। माय गई। (ज्व-धन की आवाज) क्या हुआ !

[ सौवामिनी का बिस्ताना ]

सौवामिनी—मों ! मों !

बहुला नाविक—झोकिये, झोकिये, झोकिये। आप मी वह आवंगी।

मद्धली है ककी मद्धली । छोड़ खिजिये, सौदामिनी छोड़ दो । आपने को क्याओ । जल मर रहा है इस नाब मे । कूय पकिये, कूदिये राजकुमारी ! बाब हूबी का रही है । 'गुहूप-गुहूप' ।

सौदामिनी—हाय माँ ! (रोती है) मा को मद्धली खींच ले गई ।

भीमा—उगे अब समय मही । बीरब परे ताइस से काम हो बेटी ! लहरें फिर मी बढ़ रही हैं । मगवान् सोमनाथ ने जाहा छो पहुंच जावरो ।

सौदामिनी—बढ़ बका जल-पोत आ रहा है । उसे, उसे बुलाओ मीमा । पर बका हमारा है बढ़

भीमा—(फूली हुई साँस से) उठने हमें बेल सिया है । बढ़ इती ओर आ रहा है । दरो म्ठ बेटी, मैं प्राण रहते दुग्दारी रक्षा करूँगा । बेसे द्रुम मी तेरना जानती हो । समुद्र की बेटी हो न । ( लहरों का तेजी से बढ़ना )

सौदामिनी—सर्पिणी नौका कितनी दूर चल सकेगी मीमा ! लहरें इस निर्बल नौका के टुकड़े-टुकड़े किये दे रही हैं । हाय मा

भीमा—ताइस म्ठ हाणे बेटी । सर्पिणी हूब जाव छो तेरने शगमा । मुनिबध बाँध हो कलकर ।

सौदामिनी—मैं तेबार हूँ मीमा ! सर्पिणी में जल, जल मर रहा है । जल मर रहा है हूबी हूबी ।

भीमा—(फूली साँस से) कोई बात नही । को ६ बात नही ? तेरो हेरो ।

सौदामिनी—(बानी में धव-धव करती है) बलो, बलो ! बलो बरो

[ दूर से जलती करो जलती करो दोनों बूढ़ रहे हैं । रही एक पुप भी । जलती करो वे बह रहे हैं । सब केवल लकी के बेसा रिबाई वे रहे हैं । बकड़ो, बकड़ सो । कुछ जल चुप्पी । यह है काई लकी है ।

सुरेव—(पह-बाप) कोई खी है ? देखो सोंव है ? मर तो नहीं गई ?  
छहरों के कारख मुच्छिद्य हो गई है ।

पहला मन्नाह—बन चायेगी महाराज ! अमी इसके भीतर का बल  
निकासते हैं । बच चायमी ठक्य करो । (पंजे से पानी निकालने की  
प्राथा) ठीक है, ठीक हो रही है ।

सुरेव—दूसरा आदमी क्या हुआ ?

दूसरा मन्नाह—बह ठीक है । बह तो नाबिक है महाराज ! बह मर  
नहीं सकता । यह नाबिक-कन्या नहीं है हरीसिप छहरों के धपके नहीं यह  
सकी । हम लोग ठीक समय पर पहुंच गये नहीं तो, नहीं तो

सुरेव—यह कौन है ? ठापाख्य स्त्री नहीं है ।

पहला मन्नाह—अबख छीप की कन्या दिखाई देती है ।

सुरेव—अमी पैतनज नहीं आई ।

पहला मन्नाह—कुछ समय लगेगा । ठक्य हो रही है । कन्या पच  
की रात है । यहां हम प्रभास से दूर आ गये हैं महाराज ।

सुरेव—हा, हां, सोद बखो । मैं मगबान् की शबनारती से पूव पहुंच  
जाना चाहता हूँ । बह कन्या ठीक हुई ?

दूसरा मन्नाह—बो आशा । (लहरों की जल धप)

सौदामिनी—(बबखकर) मैं कहा हूँ ? मैं कहा हूँ ? मरके बना हो  
समा था ?

सुरेव—बरो मत्त, दम सुरक्षित हो सुन्दरी !

सौदामिनी—मीमा मीमा, मीमा कहा है ?

पहला मन्नाह—मीमा बच बना है, दम महाराज की सुनसाया में  
हो केयो ।

सौदामिनी—कौन महाराज ?

सुरेव—मेरा नाम सुरेव है सुन्दरी ! मैं प्रभास का राजा हूँ । जेक  
करो । ओह

सीधामिनी—आप ! ( घाँसें जोसकर घनको बिपती रहती है । )

सुरेश—सबराओ मत तुम स्वल्प हो आओगी सुन्दरी ! बिपाठा भी क्या मोझी है ! ( धीरे से ) न जाने कहाँ क्या दे दे ! कुछ नहीं जाना जा सकता ।

सीधामिनी—(घाँसें बन्द करके) मीमा ! मीमा !

सुरेश—(मस्ताह से) देखो मीमा को बुलाओ । (सीधामिनी से) मुझ से कहो सुन्दरी, मैं तुम्हारी आशा पासन को प्रस्तुत हूँ ।

सीधामिनी—(रोकर) मेरी माँ, राममाता !

सुरेश—क्या हुआ तुम्हारी माँ को !

सीधामिनी—मुझे डर लग रहा है । मुझ भय लग रहा है । जेस यह मद्दली

नाबिक—(घाकर) मद्दली इस कन्वा की मा को पकड़कर ली गइ महाराज !

सुरेश—यह कौन है ?

नाबिक—विजयपार्क की पुत्री । मीमा ठीक हो रहा है । मैं देखूँ ।

सुरेश—भवश के विजयपार्क की पुत्री । ओह तमी-तमी । हा आओ । बहुत दिनों से मुन रस्ता था । आब, कितना रूप

सीधामिनी—(पठकर बठ जाती है) कितना भयंकर दृश्य था मेरा हृदय अभी तक करि रहा है ।

सुरेश—मम की मुद्रा में मी कितना आश्चर्य है । आब मेरी आँखें क्या दुर । तुम्हारा क्या नाम है सुन्दरी !

सीधामिनी—सीधामिनी ।

सुरेश—सीधामिनी ! ब्यर्थ नाम है । मेरे अंग अंग में उतक प्रवाह होने लगा है ।

सीधामिनी—( सुरेश को देखकर नीची निगाह कर लेती है ) मुझ

सुरेश—अब हम, देखो नाबिक, इन्हीं अन्धकार पहुँचा दो। हम कुली नौकर पर प्रभाव डालेंगे। तुम आओ।

सौभागिनी—अच्छा कल्पवाद।

पहला मन्त्र—महाराज। वह नौकर निराल है, कमजोर है और समुद्र में तूफ़ान आ रहा है।

सुरेश—आज्ञा पावन हो। यह इली नौकर में आगयी। आओ सुन्दरी, हमारी नौका तुम्हें अन्धकार तक पहुँचा देगी। आओ। मेरा नाम सुरेश है।

[ वहाँ पिछा है। पुनः रंजित का पूर्व कथ ]

सौभागिनी—वह समय जैसे मेरी आँसों की ज़ाया बन गया है। महाराज सुरेश की वह आकृति आज मो मेरे हृदय-पट्ट पर अंकित है।

सुनयना—तो क्यो, उन्होंने तुम्हें निष्काम जीवन-दान किया।

सौभागिनी—अपनी आकृति मेरे मन में अंकित करके। आज सोपत्नी हूँ मनुष्य इतना निर्दयी भी हो सकता है।

सुनयना—उन्होंने तुम्हें नहीं पहचाना।

सौभागिनी—उन्होंने मुझे जीवन में प्रथम बार सुन्दरी कहकर पुकारा, मैं उनकी छवि देखकर विस्मृत-सी हो गई, बहुत देर तक मैं सोन्ती रही, कितना अचानक होता कि वे मुझे देखते रहते और मैं

सुनयना—अब कोई उपाय नहीं है।

सौभागिनी—मैं जीवन से हारना नहीं जानती सुनयना। मुझे विश्वास है, हमें वहाँ से निकलना होगा।

सुनयना—(सात लेकर) यदि ऐसा हो लगे सखी

[ प्रहरी का प्रवेश ]

सखी—आग रही हो, क्या सुरा लगावार है।

सुनयना-सौभागिनी—(अचरित्कर दोनों) क्या

सखी—क्या कहें।

सुनयना—(बात जानकर) क्यो क्या बात है माँ।

सखी—तुम मुझे माँ मत कहो। मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ। मैं तुम्हारा

कोई मला नहीं कर सकती । ( भरे हुए गले से ) कितनी बुरी बात है ।  
महारानी तुम्हें दासी बनाना चाहती हैं, यदि तुम दासी बनना पसन्द  
नहीं करोगी तो तुम्हें मन्दिर की देव-दासी बना दिया जायगा । मा  
फिर

सुनयना—मा फिर

रानी—तुम्हारा बच । मन्थ लोटकर नहीं जा सकती ।

सौदामिनी—मुझे मर जाना स्वीकार है, पर दासी मैं नहीं बनूँगी ।

रानी—मगवान् सोमनाथ तुम्हारी सहायता करें । उन्हीं की प्रार्थना  
करो ।

सुनयना—मुझे मां, क्या हम एक बार मगवान् का दर्शन कर  
सकती हैं ?

रानी—नहीं, कोई उपाय नहीं है ।

सुनयना—उध गुहा-गुह से मां, तुम्हीं हमारा उद्धार कर सकती हो ।

रानी—मैं मारी जाऊँगी

सुनयना—हम दरम करके दुरन्त लोट आयेगी, तुम्हारा बड़ा उप  
कार होगा ।

रानी—मैं अचला स्त्री हूँ । (बकलर) अचला, अस्वी लौटना, कोई  
देले नहीं ।

[ बुद्ध परिवर्तन ]

[ पागुपत क बैठने का स्थान । रात्रि का तिस्रोय प्रहर । व्याघ्र  
धीर मुक-बध का बावपीठ । ]

मुद्देव—महां तो कोई नहीं है भासुर ! क्या मुद्देव होने लसे गये ?

भासुर—स्वामी रात्रि में नहीं लोते देव । देलूँ क्या ?

मुद्देव—हां, उनस एक आबरवक परामश करना है ।

भासुर—( इधर-उधर घूमकर ) स्वामी पधार रहे हैं । (सङ्गमें की  
जावाज)

मुद्देव—महात्मा का रहे हैं । प्रणाम करता हूँ मुद्देव !



पाशुपत—नमः शिवाय, नमः शिवाय ।

सुदेव—गुरुदेव, मेरे मन में वक्र संर्ष हो रहा है। ( चक्र )

बिजबाई

पाशुपत—बिजबाई ही संर्ष का कारण है ।

सुदेव—हा, गुरुवर !

पाशुपत—उसको दूर दूर विना जा रहा है ।

सुदेव—(बुप)

पाशुपत—वह शिव-भक्त है वस्तु !

सुदेव—(बुप)

पाशुपत—दुन्दारी तरह शिव-भक्त । बय और पराजय का शिक हैं राजन् ।

सुदेव—राज्य की समृद्धि के लिए यह आवश्यक है ।

पाशुपत—(हँसकर) आवश्यक है, वह क्या है ?

सुदेव—कड़ी-गाह में ।

पाशुपत—कारागार में ।

पाशुपत—वह उद्यत है, उसने प्रमादपति का अपमान किया है, उसने राजा का तिरस्कार किया है ।

पाशुपत—वह भीरु है ।

सुदेव—(वचनित होकर) गुरुदेव ।

पाशुपत—मैं अनन्ता हूँ वह उद्यत है, किन्तु वह भीरु है । उनके द्वारा भयवान् सोमनाथ के बेबल का कार्य सम्पन्न होगा ।

सुदेव—मैंने उसके बच की आज्ञा दे ही है । फल चाहे-फल उसका बच किया जायगा ।

पाशुपत—हूँ ।

सुदेव—मैं क्योर्तिष्ठिग भगवान् सोमनाथ की प्रविष्टा के लिए

पाशुपत—तुम एक निमित्त हो सुदेव, भगवान् स्वयं अपना कार्य करते हैं । मनुष्य कितना लघु, कितना दुष्ट, वह विश्व उनकी कीलामात्र

है। हम निरीह प्राणी

सुरेश—मेरी आज्ञा है आसपास के देशों को पराकृष्ट करके शेष साम्राज्य की स्थापना करूँ।

वासुपत—उसमें तुम्हारे दप-लालसा की आगि खिरी है।

सुरेश—बह आग्नि, भगवान् की महिमा का प्रदीप होगी। विजयाक अक्षयः

वासुपत—नहीं होगा ?

सुरेश—(चिस्ताकर) गुडदेव !

वासुपत—विजयाक भगवान् का सबक है।

सुरेश—बह बिद्रोही है ! (काँपने लगता है।)

वासुपत—श्रेय भव करो सुरेश ! भविष्य तुम्हारे हाथ में नहीं है !  
उठका संभालन छोड़ घोर करता है।

सुरेश—यदि बह मेरी अधीनता स्वीकार करे

वासुपत—तुम मानते हो तुम भी किसी के अधीन हो।

सुरेश—मैं अपना स्वामी । भगवान् ने मुझ अवतार दिया है कि शेष साम्राज्य की स्थापना करूँ।

वासुपत—( क्लिप्तचित्तताकर हँसते हुए ) ऊपर खीबार में देखने लगते हैं।

सुरेश—क्या देख रहे हैं गुडदेव, ओह द्विजकृमी कितनी अधीरता स रत, खीबार पर घूम रही है।

वासुपत—देखो !

सुरेश—देख रहा हूँ गुडदेव !

वासुपत—अभी एक मर द्विजकृमी आन बास्ये है उसी के लिए अधीर है।

सुरेश—धर्राँ स ! (आश्चर्य में भरकर)

वासुपत—पुष्पोद्धारों के साथ मुनूर प्राग्ध से भगवान् के लिए कर्मों का उद्योग था रहा है।

सुरेश—गुरदेव ! आप

[ एक धामात्मा। जय हो गुरदेव । ]

पाशुपत—नम शिवाय, नम शिवाय । माम्पुर, देखो कोन है ?

माम्पुर—गुरदेव ! (बाहुर जाता है)

पाशुपत—मनुष्य कितना दुग्ध है सुरदेव, वह बहुत कुछ ध्यानना चाहता है, करना चाहता है, पर कुछ भी नहीं जानता, कुछ भी नहीं कर सकता ।

पाशुपत—(होकरती लिये धाले हुए) गुरदेव, बल्लमीपुर के म्हाएव ने निर्मल नील कमलों की यह येकरी मगवान् पर बवाने के लिए भेजी है ।

पाशुपत—बल्लमीपुर के म्हाएव ने, महाँ रस हो, सोलकर धर्भना गृह में ही आओ । (खोलता है)

माम्पुर—(बीककर) क्षिपकली नील-कमल में ।

सुरेश—(बीककर) क्षिपकली !

पाशुपत—(हँसकर) वही नर क्षिपकली है, जिसके लिए हीमार की क्षिपकली अधीर थी, किन्तु धमी और रोव है

सुरेश—क्या गुरदेव !

पाशुपत—बहुत दिनों का भूसा मगवान् का नाम इनकी श्लीवा कर रहा है ।

सुरेश—कहाँ ?

पाशुपत—वह नीचे कोन में । वह ऊपर को लपका और वे दोनों

सुरेश—गुरदेव !

पाशुपत—मनुष्य कुछ नहीं जान्ख राजन् ।

सुरेश—धपराय क्या हो ।

पाशुपत—बास नम होने पर ही लहरहाये वृद धम्मे आगते हैं ।

सुरेश—किन्तु राजनीति में क्या निरलता का वृहरा नाम है । माग्य पर निरवात निरिप्यता है । धर्म राजा की सीमा का बन्धन है कितमें

उत्तम पराक्रम अपने भीतर की दृढता के अर्थ में काम जाता है गधेद्वय ।

पाम्पुत—किन्तु मनुष्य राधा स भी बधा है बुदेव । देवता होने के लिए मनुष्य बनना आवश्यक है ।

बुदेव—मैं विकाराल नहीं होना चाहता । मगवान् न तो काम मुझे मीस दे, वही पूरा करना चाहता है विक्रपाक का बंध शयमाश्राय का विस्तार ।

पाम्पुत—(हँसकर) मूय स्वतन्त्र हो ।

बुदेव—उत्पट विक्रपाक के बंध द्वारा ही भयल की प्रजा मुर्खी रह सवगी । मगवान् की प्रतिष्ठा के लिए प्रयास का मूय अमकना ही चाहिए ।

[ एक व्यक्ति हड़बड़ता हुआ आता है ]

भासुर—गुरुदेव, गुरुदेव, रक्षा करो ।

बुदेव—(बौलकर) क्या हुआ ?

भासुर—अपत्य की प्रजा बिड़ोही हो उठी, उतने इमार सब से नेंकों को मारकर मगा दिया ।

बुदेव—कैम ? (घड़े होकर)

भासुर—विक्रपाक के छोटे भाद अयाक ने मैग्य संगठन करके कल रात अचानक द्वार पर आक्रमण कर दिया । नारे बौर पुनर मार दिये । हुम् मोग मय शेर बरहा कर सिंग गये । वही सना बध दल-बल के साथ प्रभाग की ओर आ रही है ।

बुदेव—इतना लव हो गया और, और मुझे समाचार मी नहीं मिला ।

[ दूसरे व्यक्ति का प्रवेश ]

व्यक्ति—महाराज, धारण की मना न अलपानों न प्रभाग के लथे का पैर लिया है ।

बुदेव—मझे आशा हीमिय । (घड़ का कोलाहन बड़ना है)

पाम्पुत—अप जिन व अप जिनव आधा मल्ल ? ( बुदेव तथा

जातुर जाते ह । बड़े होकर) मनुष्य कितना तापु प्राणी है और उसका दर्प कितना बड़ा है कदाचित् यह अपने रूप के शिल्प को देखा सकता । (युद्ध के नवाड़े बबते हैं । तीरों की बलसनाहट कई भासे चलने की आवाज ) युद्ध का कोलाहल बढ़ता है, बढ़ता ही रहता है । (हलकर) शैव साम्राज्य का विस्तार, अपनी दबो हुई साक्षसा का विस्तार । नमः शिवाय, नमः शिवाय !

[ पाशुपत आक्रमे पहने घूमते हैं ]

पाशुपत—(घूमते हुए) मनुष्य के अभिमान का इतनी जल्दी उत्तर मिलेगा, इतने शीघ्र । कदाचित् जो कुछ उसके हाथ में नहीं है उसे भी वह पा लेना चाहता है । (हलकर) हा हा हा हा तुम्हारी माया देव ! सब तुम्हारी ही माया है !

संसारकमिमिताय संसारकविरोधिने ।

नमः संसारक्याय निःसंसारय इन्द्रिये ।

सर्व सत्त्वैव भावानां सन्मोहि द्वितीय स्थिति ।

तामससंध्य तृतीयस्मै ममविषयाय इन्द्रिये ।

घाटन्नाय संसृताय गप्ताय प्रकटारमते ।

सुप्तमायातिदुर्गाय ममविषयाय इन्द्रिये ॥

अब शुभो, नमः शिवाय नमः शिवाय इस अष्टम दीप के समान तुम्हारे जनोर्दिसिग का प्रकट विश्व-संसार में स्थापित है देवाधिदेव ! अर, दुःख !

पहला—गुल्लू, मैं तो अभी-अभी आया, आया बड़ी बिलघुल्लू बात हुआ ।

पाशुपत—(जैसे सब आते हैं) क्या हुआ ?

पहला—ऐसा तो कभी नहीं हुआ था, कभी नहीं देखा था । विचित्र ! परम विचित्र !

पाशुपत—(हँसकर) भगवान् के निकट अठममव, विचित्र कुछ भी नहीं है फिर भी करो न ।

बसत—मैं जब मन्दिर के गंग में निशीथ-पूजन के लिए पुसा तो क्या दखता हूँ, क्या देखता हूँ कि वो किन्नरिया भक्ति मग्न होकर नृत्य कर रही है।

पाम्पुसत—असम्भव कुछ भी नहीं है वस्तु।

बसत—नहीं महाराज पिशुले शारद का स मे लगातार निशीथ-पूजन करता आ रहा हूँ। रात्रि में मेरे या भगवान के अतिरिक्त मन्दिर में कभी कोई नहीं रहता। किन्तु आज तो वे देवियाँ हमारा देव गणित्या नहीं कोट और ही थीं, उनमें स एक का रूप पिशुली की तरह प्रकटमान ऊग की तरह स्निग्ध का। मुझ लग रहा है जेत वह कल्पना थी वह एक स्वन था।

पाम्पुसत—यह मूर्ति के शारद खोतिस्त्रिगों में प्रतिद्व आर प्रमत्त ख्यो त्रिस्त्रिग है वस्तु, यहाँ पर स्वग के देवता और गन्धप अण्तराएँ आर किन्नरिया भी देव-दरान के लिए आते हैं हो लकता है य ही हा।

बसत—(लोचता हुआ) हो सकता है गुस्त्य। किन्तु वे अण्तराएँ नहीं थीं, इतना निश्चित है। आकृति उनकी मातुश हा थी। फिर भी जब भक्ति स गद्गद् होकर मे प्रार्थना करत लगी तब उनकी बाकी मानुषी ही थी, बोली इसा देश की भावाकृति स्त्रियों की और मिश्रलता कल्पाओं की।

पाम्पुसत—हूँ!

बसत—इतना सुन्दर नृत्य, इतनी पुसकित कर दने वाली शायना, लयात् लक्ष्मी के लम्पन गुण-द्विषि। तभी से मैं विरिमत हूँ। आय त्रिका लत्र है भयवन्।

पाम्पुसत—मैं कुछ भी नहीं हूँ वस्तु, मैं देव का एक तुम्हातिपुसद् दान हूँ। तुम डीक करते हो, मे अण्तराएँ नहीं, भूमि-कल्पार्थे हो दे, दुग की मारी, राग्य अष्ट आर अस्तापार-गीकित भवख हीर की कल्पार्थे।

बसत—हाँ मुझार प्रार्थना करत एक दमन जाने देना कोलादल हुआ

जातर जाते हैं। लड़े होकर) मनुष्य कितना लालु प्राणी है और उसका दर्प कितना बड़ा है, कदाचित् वह अपने रूप के शिखर को दबा लफटा। (गुड़ के लबाड़े बजते हैं। तीरों की समतलछ्दर, कई भासे चलने की आवाज) गुड़ का कोलाहल बढ़ता है, बढ़ता ही रहता है। (हँसकर) शैव साम्राज्य का विस्तार अपनी वशो हुइ काहसा का विस्तार। नमः शिवाय, नमः शिवाय।

[ पाशुपत दाढ़ाऊ पहले घूमते हैं ]

पाशुपत—(घूमते हुए) मनुष्य क आदिमान का इतनी बकरी उधर मिलेगा इतने शीघ्र। कदाचित् जो कुछ उसका हाथ में नहीं है उसे भी वह पा लेना चाहता है। (हँसकर) हा हा हा हा तुम्हारी माया देख ! सब तुम्हारी ही माया है।

सत्सारीकनिमित्ताय सत्सारीकविरोधिने ।

नमः सत्साररूपाय नि सत्साराय आम्भवे ।

सह सत्सेन सावानां अम्भोर्हि द्वितीयै स्थितिः ।

साम्भवेभ्यः सतोपस्य नमस्त्रिभ्राय आम्भवे ।

साठम्भाय लुङ्गाय वप्टाय प्रकटसम्भवे ।

लुङ्गायार्तिवुर्गाय नमस्त्रिभ्राय आम्भवे ॥

अय आम्भो, नमः शिवाय नमः शिवाय इत आम्भ शीप के समान तुम्हारे वरोधिलिंग का प्रकाश विरह-ब्रह्मायुध में भ्राप्त है देवाधिदेव ! अरे, तुम !

पहला—गुड़ब मैं तो अमी अमी धाया आब बको बिसाह्वर बात हुइ ।

पाशुपत—(जैसे सब जानते हैं) क्या हुआ ?

पहला—ऐसा तो कमी नहीं हुआ था, कमी नहीं देखा था। विचित्र ! परम विचित्र !

पाशुपत—(हँसकर) भगवान् के निकट असम्भव, विचित्र कुछ भी नहीं है फिर भी कहो न।

वस्त—मैं अब मन्दिर के गंग में निरीप-पूजन के लिए गुवा तो क्या देलता हूँ, क्या देलता हूँ कि दो किन्नरिया भक्ति-मग्न होकर व्रत कर रही ह।

पाशुपत—असम्भव कुछ भी नहीं है वस्त ।

वस्त—नहीं महाराज पिछले बारह वष से मैं लगातार निरीप-पूजन करता आ रहा हूँ । रात्रि में मेरे मा भगवान् के अतिरिक्त मन्दिर में कभी कोई नहीं रहता । किन्तु आज तो वे देवियाँ हमारे देव गणिका नहीं कोर्षे और ही थीं, उनमें से एक का रूप बिकली की तरह प्रकटमान ऊंग की तरह तिमिर था । मुझे लग रहा है जैसे वह कल्पना थी, वह एक स्वप्न था ।

पाशुपत—यह सृष्टि के बारह ज्योतिर्लिंगों में प्रसिद्ध और प्रमत्त जो तिस्रिय है वस्त, यहाँ पर स्वर्ग के देवता और गायत्र अष्टराए और किन्नरिया भी देव-दशन के लिए आते हैं हो सकता है व ही हा

वस्त—(सोचता हुआ) हो सकता है गुस्से से । किन्तु वे अष्टराए नहीं थीं, इतना निश्चित है । आहत उनकी मानुषों हा थीं । फिर भी जब भक्ति से गद्गद् होकर य प्रार्थना करम लगी तब उनकी वाणी मनुषी ही थी, बोली इती देश की भावाकृति स्थियों की और निरदलता कथाओं की ।

पाशुपत—हूँ !

वस्त—इतना मुन्दर नुस्ब, इतनी पुलकित कर दन वाली प्रार्थना, वाचात् सचमी के समान मुल-दुखि ! तभी से मैं विस्मित हूँ । आप त्रिक सत्र हैं भगवन् ।

पाशुपत—मैं कुछ भी नहीं हूँ वस्त, मैं देव का एक मुम्तातिपुत्र दान हूँ । तुम ठीक कहते हो, वे अष्टराए नहीं, भूमि-कन्वामें ही हैं, तुम भी भारी, रास्य अत्र और आत्माचार-भीकित अकल दीन की कन्वामें ।

वस्त—हाँ गुदर प्रार्थना करते एक हमन जान केना कोलाहल हुआ तो एक बोली—'दिवाधि'व ! हमारा ठकार करो, हमारी रक्षा करो ।"



उठी समय वृत्ती ने कहा—“मगवान् ने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली है। मुझे, भयब्र से प्रमाथ पर आक्रमण के लिए सेवार्य का गर्ई है। यह उर्गी का गजन है।” वे एक दम अन्तधान हो गईं। मैं यह सब कुछ भी नहीं समझ पाया। तभी से मैं विन्तित हूँ, विरिमत हूँ, अकित हूँ। आब पूजन में भी मन नहीं लगा। मैंने सोचा—यह सब आपसे निवेदन करूँ।

पामुपत—मनुष्य कुछ सोचता है किफाछा कुछ और। इसमें भी कस्याक दिस्तार् देवा है।

अवत—आपकी वासी सत्य है। मगवान् ! हमारे म्दारान म्दान और सोमनाथ मगवान् के उपासक हैं।

पामुपत—मनुष्य किठना सुर्वल प्राची है।

[ नेवध्य ने कोलाहल बढ़ता है। मुख का बर्जन बिस्ताहृत, ललकारें सुनार्ई देती है। कोलकार और कोलाहल से धाकास मुख उठ्वा है। नारो कादो बढ़े बसो बढ़ी पही ललय है। की बर्जकर ध्वनि बढ़ती जाती है। दरवाजों के टूटने अतने लोपों के चागने पिरल-जठने के स्वर सुनार्ई देते हैं। कुछ देर तक वही होता रहता है, अभी ललय एक स्त्री का ऊँचा स्वर सुनार्ई देता है। ]

स्त्री—सेनिको, यह मुख कबल प्रमाथ के रूपठि मुदेव से है। प्रमाथ के नागरिका, नासर्गो, पुवर्गो और तिवर्गो से कुछ भी न कहा आब। नमर में किसी को भी क्या न दिवा आब। किसी के साथ दुर्म्येवहार न हो। किसी को भी पीका न पहुँचार आब। हमारा मुख कबल मुदेव से है, केवल मुदेव से। साबधान किसी को क्या न हो।

कुछ धावावे—अवरय, अवरय। इन अपने महाराज विअपार्क का बदका मुदेव से लेंगे। मुदेव ने हमारे रूप को विन्वस्त किमा है, मुदेव बन्दी है, कल सुर्वोदय के साथ इतक निर्वाय होगा।

अवत—क्याचित् यही स्त्री को, पेसा ही उठका स्वर था मुदेव।

पामुपत—आओ आब तुम से पूजन न हा सभगा। आओ मल, आओ।

भक्त—ओ आशु गुदेव !

[ चले जाते हैं । पर्दा गिरता है । बग्यो गुदेव घोर लौदामिनी । रात्रि का सभय । सपुत्र का गर्जन दूर से सुनाई दे रहा है । नगर में कोलाहल की ध्वनि । ]

सुदेव—( वर्ष से ) मुझ बहाँ क्यों आया गया है ? बन्दीगृह दूर नहीं है ।

लौदामिनी—अबला का पराक्रम दिखाने के लिए । जिसे आपने बन्दी किया था ।

सुदेव—यह मेरे दुर्भाग्य का पराक्रम है तुम्हारा नहीं ।

लौदामिनी—आपने गर्भ की पराजय नहीं मानते ?

सुदेव—गर्भ पराजित होना नहीं जानता । यदि वह अन्तर्ग हो, वास्तविक हो ।

लौदामिनी—आपको स्मरण है आपने एक बार मेरे प्राणा की रक्षा की थी ।

सुदेव—ऐसी छोटी बातें याद रखने का मेरा स्वभाव नहीं है ।

लौदामिनी—अभिमान की गति सदा ऊपर से नीचे को होती रहती है । जब कि नष्टता नीचे से ऊपर को जाती है महाराज !

सुदेव—तुम महाराज कहकर मेरा अपमान मत करो । मुझ बन्दी-गृह में आओ । मेरे बंध की आज्ञा हो । वस !

लौदामिनी—उसका निर्णय पिता करेंगे ।

सुदेव—तो तुमने मुझे क्यों रोक रखा है ?

लौदामिनी—क्यों ! आप अबल राजा ही हैं मनुष्य नहीं ।

सुदेव—मनुष्य से ऊपर !

लौदामिनी—यानी उसे तिला-मूली देकर ।

सुदेव—तुम क्या कहना चाहती हो मैं नहीं जानता । मुझ मालूम है तुम्हारे पिता किसकी होकर मेरा बंध करेंगे । मुझ इतका धार दुःख नहीं है ।

सौदामिनी—महाराज सुदेव ! मैं केवल सैनिक सौदामिनी नहीं हूँ। मैं स्त्री हूँ।

सुदेव—किन्तु मैं जो हूँ वहीं रहकर मरना चाहता हूँ।

सौदामिनी—आपको नाद है वह शिम

सुदेव—उस दिन को बीते बहुत समय हो गया। वह सब स्वप्न है। उसको नाद करने से कोई लाभ नहीं।

सौदामिनी—किन्तु मैं राजा को भी मनुष्य मानती हूँ। उसके भी हृदय होता है। वह भी मनुष्यता का सम्मान उपासक होता है। उसका कल निर्बल की रक्षा के लिए है दूसरों को पीड़ा देने के लिए नहीं। यदि आपके भय से आपके सम्बन्ध होते तो (मगर मैं कोहलुन सुनाई बता हूँ)

सुदेव—माझूम है मेरी प्रजा पर आत्याचार हो रहे हैं पर आज मैं तुम्हारा बन्दी हूँ। (सोचता है)

सौदामिनी—नया सोच रहे हैं महाराज ?

सुदेव—वह, जिससे अब कोई लाभ नहीं है।

सौदामिनी—(हँसकर) लाभ न होने पर भी सोच रहे हैं। मैं जानती हूँ बुराई मनुष्य का स्वभाव नहीं है। वह कृत्रिम है महाराज।

सुदेव—जैसे आज मैं कृत्रिम महाराज हो गया हूँ। जैसे सब स्वप्न हो गया है। तुम सच कहती हो गर्व अपने परिश्रम में ऊपर से नीचे को चलाता है। आज मेरी प्रजा दुखी है। सब ध्वंस हो गया है। मेरी आकाशा के महल भी नीचे हिल गए हैं।

सौदामिनी—इसका कारण शायद वृद्ध नहीं है।

सुदेव—मेरा अपमान मत करो सौदामिनी ! मेरे हृदय में हन्ड हो रहा है।

सौदामिनी—(ताली बजाकर) महाराज को बन्दी-गृह में ले जाओ सैनिक कल हनका निर्बाध होगा। जो आधो, आधे।

सैनिक—जो आज्ञा ! जसिये।

सौदामिनी—क्या तोष रहे हैं ?

सुरेव—तोष रहा हूँ मनुष्य का अन्त क्या इसना करियर है ? मम तो नारी हो ।

सौदामिनी—यह आपक उरयुक्त नहीं है । अग्निमान की नींव पर लालसा, महाराजाका का स्वप्न महल लड़ा करने के प्रयत्न में जो विवेक की मूल्य का विरसकार कर देता है उसके मूल्य से पुण्य और नारी का नाम मुनकर हँसो जाती है । लगता है जैसे यह उसका अपना मन मरी है ।

सुरेव—नर यदि बदला है तो ठठरता भी तो है । बहा में आब या था हूँ अपने में ।

सौदामिनी—तो आब आपकी आँसुं लुनी ? यह मेरा सामान्य है ।

सुरेव—और मेरा दुभाग्य ।

सौदामिनी—रह-रह कर जैसे आपको छोड़ दीम उठती है ।

सुरेव—रह-रह कर जैसे जो- मुझ तमाये मारकर गिरा रहा है । यह ठीक ही हुआ कि मरने से पूर्व मैं अपनी वास्तविकता को जान सकूँ ।

सौदामिनी—मैं आपको छोड़ सकती हूँ । आह्वय पहले आइये ।

सुरेव—सुरेव न तब कुछ सीन्हा है पर अबरता नहीं सीन्ही ।

सौदामिनी—तो मैं आपको सामने निरस्त नहीं हूँ । मुझ में बदला लोबिर ।

सुरेव—देखो हूँ तुम्हारी राजमायिक आँसुं का दशन भी कम शक्ति नहीं है सौदामिनी !

सौदामिनी—(घाह भरकर) इन शस्त्रों का अन्त मधुरता के आकान्य में समाप्त होता है महाराज !

सुरेव—किन्तु अब हम एक दूसरे के शत्रु हैं । बलो मैत्रिक ले बलो मुझे !

[सैनिक के साथ बसे आते हैं । सौदामिनी बक राड़ी बगती रहती है । बसकी घाँसे में घाँस टपकने लगते हैं । राजमार्ग में बहूत से लोगों की

उपस्थिति के स्वर । दूर बघ्टे-बघियाल लगाड़े स्तुति के स्वर तुम पकते हूँ । धीरे-धीरे बन्द होते हैं । एक धोर से सुनयना धोर हुतरी धोर से सौदागिनी धाली है । ]

सुनयना—मैं तुम्हें ही खोजती फिर रही हूँ सौदागिनी । कहाँ की अब तक ? रात के दूसरे प्रहर से तुम्हारा कुछ भी पता नहीं लग रहा है ।

सौदागिनी—हाँ सुनयना, प्रभास पर आश्रमस्थ के बाद से लगातार भूमना पक रहा है । मैंने सब लाख-लाख जगहों पर सैनिकों का खरा बैठा दिया है । युग के प्राचीर, बड़े-बड़े द्वार सैनिक बन्दूके सभी जगह हमारी सेनाएं नियुक्त हैं । राजा सुदेव की सेना बन्दी कर ली गई है ।

सुनयना—तुम्हारा ही काम था कि प्रभास पर भवस्थ का भयडा लह राने लगा । भला महाराज कहाँ है ?

सौदागिनी—( चली धुन में ) पायलों की चिकित्सा का प्रबन्ध कर दिया गया है । जो लोग मरे गये हैं उनका शवा की व्यवस्था कर दी है । ( धपती धुन में धमी हा धमी ।

सुनयना—महाराज कहाँ हैं, तुम्हारे पिता ? क्या उन्हें बन्दी गह से छुड़ा लिया गया है ?

सौदागिनी—सुदेव बहुत बहुर राजा हैं । यह द्वार-जीत भी समुद्र की लहरा की तरह है जो हवा के साथ बदलती रहती है । एक बार तो हम द्वार ही बसे थे कि मैंने उस धंधेरे में सवे हुए सैनिकों को उसाहित करते हुए भयकर धावा बोला दिया । उसमे सुदेव के हाथ पैर फूल गये । हठी बीच मैंने उन्हें बन्दी कर लिया । सैनिक बिलरकर भाग गये ।

सुनयना—तो तुम मुझ भूमि में भी गई था । तुम्हारा वह कम निस्फुल नवा है लकी । महाराज कहाँ हैं ?

सौदागिनी—बहुत दिनों बाद रास्त्र उठाये । बहुत दिनों बाद लकना पका धनबाहे भी । ( हसकर ) पिता कहीं-गुह में ढँध रहे थे । मैंने उन्हें जगाया तो धनकाकर बोले, 'क्या सावकाल की बजाय प्रत-काल ही

मेरा क्या होगा। कुछ बात नहीं। मैं मरने से नहीं डरता, बल्कि।' जब मैंने कहा कि प्रभाव पर भयभीत हो गया है और इसके साथ ही साथी परिवर्धित सम्पन्नता से उनका मुक्त स्थिति उठा। फिर वे एकदम चुप हो गये। धीरे-धीरे उनकी आंखों से आँसू टपकने लगे। जैसे मगधान् लोमनाथ की प्रवृत्ति से विभक्त हो उठे हैं। बोले वे कुछ भी नहीं। इसी समय मुखे को पिता के स्थान पर बन्दा कराफ हम लौट आये।

सुनयना—कुछ उठी जगह बन्दी हुए। सुमन उम्हें आ

सौदामिनी—मुखे मुझे देखते ही विस्मित हो गये। बोले, मुझे बन्दी कर लो सौदामिनी। इसके बाद काका जवाक ने उम्हें बन्दी गह में डाल दिया और बाहर से द्वार बन्द कर दिये। उनमें भीतर बकल दिया मनयना, जैसे पशु को बाटे में बन्द कर दिया जाता है।

सुनयना—और तुम देखती रही

सौदामिनी—हा, पर

सुनयना—पर क्या, तुम्हें अच्छा नहीं लगा ?

सौदामिनी—पुर ?

सुनयना—बोली सन्धी !

सौदामिनी—क्या बोली, क्या कहें ? (घाह भरती है)

सुनयना—परि तुम जाओ तो

सौदामिनी—(उत्तम होकर) मैं कुछ नहीं चाहती। न कुछ नहीं समझती। न जाने मुझ वैसे क्या रहा है ? (सुनयना से विचलित) मुझ कुछ नहीं समझता सुनयना ? तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ ?

सुनयना—मैं जानती हूँ। मैं जानती हूँ पर अब क्या हो सकता है ? पिता विचलित

सौदामिनी—पिता तभी से गुम-सुम हैं। वे मरत होत क बार लीये लामनाथ के मन्दिर में चले गये। वर से बही हैं। मैं उन्हें सुन्दर क बात बोलूँगी हूँ।

सुनयना—और क्या बयान ?

सौदामिनी—य भी उन्हीं के पाठ हैं। उनका करना है कि जिस मान पर मुझे आपका बच कराना चाहता था उन्हीं स्थान पर, उन्हीं समय मुझे भी फाँसी पर चढ़ाया जाय।

सुनयना—फिर ?

सौदामिनी—तभी सं मैं पागल-ती हो गई हूँ।

सुनयना—अग्निनी।

सौदामिनी—अग्निनी उन्हीं बम्बई बन्दी के बहाने हम लोग बन्दी किये गये थे। अब वह पुर है। मुझे देखते ही उसने पीछे पेर ली।

सुनयना—तो तुम ने कुछ कहा।

सौदामिनी—क्या करती ?

सुनयना—अब प्रभास पर म्हााराज निकपाक का राज ब हो जायेगा।

और मुदेव

सौदामिनी—( सेत्री से ) सुनयना, अगर कोई मेरे मन की बात समझ सकता। राजनीति ने प्रेम को हरा लिया है। शायद इसके आगे नहीं जाती।

सुनयना—इसके मन भी नहीं होता। वह निर्दय है, निर्जीव है।

सौदामिनी—क्या कोई उपाय नहीं है ?

सुनयना—यह दो देशों की शत्रुता का प्ररन है। दो राज्यों के बीच क्या बंधन है। दो राजाओं की आकांक्षा, सासना वैभव की लड़ाई है, ऐसी कौन जीता है ?

सौदामिनी—(चौकी हँसी हँसकर) राजनीति की रानी या मैं। आज बहुत दुखी हूँ। अतिथर भी मीठ-ही-मीठर जैसे हार रही हूँ सुनयना।

सुनयना—महाराज को यह माहूम है कि राजा मुदेव ने तुम्हारे प्राण बचाए हैं।

सौदामिनी—जाने उन्हें माहूम है या नहीं ! जाने, सली क्या होगा !

सुनयना—धीरज बरो। गुफदेव तुम्हारी सहायता करेंगे। मे

विकारक है।

सौदामिनी—सुनो हमारे मैनिका का बच-भोप मुन्नार र रहा है।  
शास्त्र रामा का निर्याय होगा। मैं जाती हूँ पिता मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।

[ दस्य-परिवर्तन ]

ब्याक—यही बच-रपल है। मुदव को दसद देने का समय हो रहा  
है। महाराज बिजबाक अभी नहीं आये।

सैनिक—ब्याक, महाराज बिजबाक मगवान् के दशम करने गये  
हैं। आठे ही होंगे। पूजन शामद समाप्त हो रहा है।

ब्याक—मुदेव को बच-रपल म हो आओ बिलसे उठक आन और  
मर बिजबाक को मियम करने में विलम्ब न हो। अवरधी को उन समय  
उपस्थित रहना चाहिए।

सैनिक—बन्दी उपस्थित है, वह अपनी मस्यु की प्रतीक्षा कर रहा है।

[ कौलाहल—आ गये आ गये बच हो ! बिजबाक की बच हो !  
पबल-भरेय की बच हो ! ]

[ बिजबाक का प्रवेश ]

बिजबाक—(कड़कती हुई आवाज में) भाइया ! यह भाग्य का खेल  
है कि प्रभाव क राजा मुदेव के हाथों आज मेरा यहा बच किया जा रहा  
था (रुककर) किन्तु देव का विधान कि मारने वालों क मास्य का निराय  
मरन वालों के हाथ में आ गया जो बिजबाक कल तक प्रभाव की बीपेरी  
कोठरी में पड़ा अपनी मासु की प्रतीक्षा कर रहा था आज मुदव उस  
कोठरी में बन्द कर दिये गये।

आवाजे—मुदेव आत्याचारी है।

बिजबाक—हाँ, मुदेव आत्याचारी है, उन्होंने भयस्य और की निरीह  
प्रस्य पर बिना अरण्य आत्याचार किया। और केवल अपनी प्रभुत्व बढ़ाने  
के लिए भयस्य पर आक्रमण किया, और मुझ बन्दी कर लिया, मेरी कस्य  
का अपहरण किया आज मेरे बच का दिन था। यही तो बच रूपक है न।

आवाजे—जी, मुदेव का बच होना चाहिए। वह पारी है, वह दसद



के योग्य है।

बिजपाई—हाँ, वह पापी है, तबने निरीह प्राणियों की केवल अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए हत्या की। इतत युद्ध में सद्मों प्राणी मारे गये। मैं उनको दण्ड दूँगा। वह पापी है, वह हत्यारे हैं राजा का काम स्थाप करना है, उन्होंने अन्याय किया है, वह राजा नहीं हैं। बोलो मुझे कुछ कहना है।

मुद्देव—मैं कुछ नहीं कहना चाहता।

बिजपाई—ठीक है तुम कुछ नहीं कहना चाहते। इतक अर्थ वह है कि संसार के लोगों को कमी सुख की नींद न सोने दिया जाय। संसार में सदा हत्याकाण्ड भयता रहे, मनुष्य सदा एक दूसरे के गले काटते रहें। भगवान् के निर्मित इन प्राणियों का निरन्तर संसार होता रहे, भयों।

मुद्देव—मुझे कुछ भी नहीं कहना है, जो कुछ दुर्घटें बण्ड देना हो हो।

बिजपाई—मैं अवश्य बण्ड दूँगा। और किसी को कुछ कहना है।

पहली आवाज—मुद्देव अपराधी है।

दूसरी आवाज—वह शान्ति-विशेषक है।

तीसरी आवाज—उसने मुद्देव पाशुपत की आज्ञा का तिरस्कार किया है।

पहली आवाज—वह दण्ड-योग्य है।

दूसरी आवाज—वह बच के योग्य है उसका बच होना चाहिए।

तीसरी आवाज—हाँ हाँ।

पहली आवाज—अवश्य ! अवश्य !

दूसरी आवाज—अवश्य ! अवश्य !

तीसरी आवाज—देर न कीजिये।

[ 'दूहरो दूहरो, मुझे भी कुछ कहना है' क्यूँती हुई एक स्त्री बड़ घाती है। ]

स्त्री—हटो, हटो ।

बिजयाक—तुम कौन हो ?

स्त्री—मैं महाराज सुदेव की पत्नी हूँ मेरा बच करो मुझे रबड़ हो ।

सुदेव—(कड़ककर) तुम्हें कितने बुझावा महारानी ? तुम जाओ ।

स्त्री—नहीं, मैं आपसे पहले मरूँगी ।

सुदेव—नहीं नहीं तुम जाओ अपना पिता के घर चली जाओ मैं ही दरद भोगूँगा, मुझे मरन हो, जाओ नन्दिनी ।

नन्दिनी—आप से पहले मेरा अधिष्ठाता है, पहले मैं मरूँगी ।

बिजयाक—मैं दोनों को दया दूँगा । तुमन (नन्दिनी से) सीदा मिनी और उसकी सन्धि को पाग था उस अपमानित किया था ।

[ पत्ता-बिड़ोड़ के साथ बमरते हैं । कानाकूती नहीं नहीं ]

पत्ता—(धीरे से) फिर भी एक स्त्री को दया देना बुरा बात है ।

सुतरा—अभिषमिनी है ।

सुतरा—शेर पाप स्त्री को दया नहीं दिया जाता ।

बिजयाक—(कड़ककर) तुम रक्षा को पति का अनुगमन करना चाहती है, उस अधिष्ठाता है उस कोर नहीं रोक सकता । मैं प्रमाद के रूपसे सुदेव को दण्ड दता हूँ और किसी को कुछ करना है ।

[ बप्पी ]

माहूम होता है किसी को भी सुदेव को दण्ड देने में आपत्ति नहीं है । असाक, तुम्हें कुछ करना है क्योंकि तुमने ही हमारा प्रथम बचाव है ।

बिजयाक—मैं भी सुदेव को दण्ड देने के पक्ष में हूँ ।

बिजयाक—मैं दण्ड दूँगा, क्योंकि मैं इस समय म्याय के सिद्धान्त पर हूँ, मगवान् म मुझे । म्याय करने का अवसर दिया है मैं म्याय करूँगा, किन्तु महाराज सुदेव, क्या आप कह सकते हैं हममें कभी सारथ्य अहित किया, फिर आपन क्यों इस छोट से द्वीप पर अहाँ के साथ म्यायन का स मुन्-शान्ति स रहते आ रह स, आश्रय किया । आपका म्याय

हमारा सदा से सद्भाव बना चला आ रहा था। मैं एक बार आपको दण्ड देने से पूरा सकार्य देने के लिए कहूँगा, क्योंकि मैं इस समय न्याय सिंहासन पर हूँ।

सुदेव—(अपने ध्यान में मग्न किन्तु आबता-ठा) मैं साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। साम्राज्य विस्तार के लिए जो और तृपति करते आ रहे हैं वही मैंने किया था।

बिजयार्क—दूसरों के रुधिर पर निरीह प्राणियों की हत्या करके साम्राज्य-विस्तार करना चाहते थे आप, शान्ति भंग करके दूसरों का राज्य छीनकर साम्राज्य बढ़ाना चाहते थे आप। मैं पूछता हूँ राजा रक्षक है या मरक ?

सुदेव—(बप)

बिजयार्क—(हंसकर) आप आप कुप हैं। हम भी शिवोपासक हैं सुदेव। क्या शिव के मर्त्यों की हत्या करके आप साम्राज्य बढ़ाना चाहते थे ?

सुदेव—(बप)

बिजयार्क—मनुष्य का निर्बल प्राणी है, कभी-कभी अचानक स्वकित भी बुरा काम करने लगते हैं, उस समय उनके मन की नियन्त्रिता उन पर छा जाती है। सुदेव उसी प्रकार के अपराधी हैं मैं उनको दण्ड दूँगा या मृत्यु-दंड।

सौदामिनी—महाराज !

बिजयार्क—हाँ ! क्यों सौदामिनी, तुम्हें क्या कहना है ?

सौदामिनी—महाराज ! आप राजा होने की अपेक्षा पिता भी हैं, वही मैं कहना चाहती हूँ।

बिजयार्क—(छोचते हुए) मैं पिता भी हूँ ! मैं पिता भी हूँ। किन्तु मैं इस समय न्याय-सिंहासन पर हूँ। कल तक दण्ड व्यवस्था सुदेव के हाथ में थी, उन्होंने मेरे बप करने की आज्ञा ही थी। किन्तु पश्चात्ताप सबसे बड़ा बंध है। मैं तुम्हें निरन्तर पश्चात्ताप करने का दण्ड देता हूँ। तुमने

मेरी इस कृपा के एक बार प्रत्यक्ष बजावे य। नहीं ! नहीं ! भवग्य का एक प्रजा के, यह मा मुझे मालूम है। (उत्तर) इसलिए यह कृपा, भवग्य की एक प्रजा और विजयार्थ की पुत्री को, मैं तुम्हें खापता हूँ। सीवामिनी मेरे हृदय का आलाक है, उसे मैं तुम्हें समर्पित करता हूँ। सुदय को इस प्रदय करो। (कृपा का हाथ बन्द कर सुदय के हाथ में देता है) इस प्रदय करो नन्दिनी, तुम्हें इतना ही दण्ड देता हूँ कि तुम इस अपनी कृपि बहन मानो। साक्षात् की लिप्ता राजा के लिए एक पाप है। इसमें अरुणचरो प्रार्थियों की इत्सा होती है फिर भी यह स्थिर नहा रह पाता। तुम आजीवन साक्षात् की सुर्य पर विचार करत रहो नहीं तुम्हारा दय है। तुम्हारी सुर्यका का दण्ड। तुम्हारे अवशिस्त का प्रस्ता का सात यह सीवामिनी है, इस प्रदय करो सुदेव।

सुदेव—तुम इतने महान् हो विजयार्थ।

नन्दिनी—मिठा विजयार्थ !

[ पागलत का प्रवेश ]

वामुपत—सुदेव ! देना अरुण-भक्त विजयार्थ का।

विजयार्थ—आज्ञाप तुम्हें देव ! प्रस्ताम करता हूँ। आपन मरा निगाव मुना।

वामुपत—मैं तुम्हें बधाई देता हूँ बस ! नम शिवाय नम शिवाय।

विजयार्थ—प्रयाक भाद आज से अरुण ही व क अधिकारी तुम हो।

व —महापत !

विजयार्थ—नहीं, तुम ही अरुण क राजा हो। तुम्हें देव, नम दीक्षा पारिये। मैं स्वास केना खादता हूँ।

वामुपत—आधो बस, यही जीवन का परम साध्य है। नम शिवाय, नम शिवाय ! लोमन्वय भगवान् का यही आदर है। बलो यत्त ! पठि की अमुगामिनी बन्ते।

सुदेव—राजा का यह मो एक स्म है ! पर मैंने आज ही जाना।

वाचस्पति—उक्त होने से पूर्व प्रकृति मनुष्य है, जिसमें अनन्त गुणों का महाभार है। मनुष्य बन्ने सुदेव ।

सुदेव—छोटा मिनी, आधो, पिता विष्णुका और गुरुदेव को प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लें ।

[ समाप्त ]

